॥ प्रस्तावना ॥

प्रिय भारतनिवासियो ! मुझको यह लिखने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि वर्त्तमान समय में श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपजी महाराज के व्याख्यानों में क्या विशेष रस है। आपकी प्रेमरस मय मधुर वाणी कई सहस्र मनुष्यों को एक वारगी मुग्ध करदेती है, यद्यपि इस समय बहुतरे उपकारी जन अपने उपदेशों से देशका उपकार कररहे हैं तथापि आपके उपदेशों का तो प्राचीन महर्षियों के समान कुछ निरालाही ढंगहै। आपके व्याख्यान वैदिक धर्म के गहन विषय औ गुप्तरहस्यों से मिश्रित बड़े २ विद्वान, विज्ञानविद् (Scientific) दर्शनज्ञ (Philosophers) और मोक्षाभिलाषियों को आश्चर्य के समुद्र में डालनेवाले हैं।

मुम्बई, कलकत्ता, करांची, केटा [विलूचिस्थान] लाहौर, दिल्ली, अलवर. जम्बू, आदि बडे२ नगरों में दस २ पन्द्रह २ सहस्र मनुष्य आपके व्याख्यानों को चित्र के समान एकटक लगाये श्रवण करते देखे गये हैं। जिन्होंने एकबार भी आप का अमृतमय वचन श्रवण किया होगा वे इस मेरे लेख को कदापि मिथ्या न समझेंगे। किसी ने कहा है " हाथ कंगन को आरसी क्या है "।

आप के व्याख्यानों को इस हंसनाद पुस्तक द्वारा आप के सम्मुख उपस्थित करता हूं पढिये औ एकाग्र चित्त हो विचारिये, यद्यपि इस में व्याख्यानों के पढने औ उनको प्रत्यक्ष कानों से श्रवण करने में पृथिवी औ आकाश का अन्तर है तथापि मुझे पूर्ण आशा है कि धर्मानुरागी सज्जन इनको पढ़कर अलभ्यलाभ उठावेंगे।

इस प्रथम खण्ड में केवल पांच व्याख्यान प्रकाशित किये गयेहैं, शेष अगले खण्डों में वर्णन किये जावेंगे ॥

चन्द्रदत्त शास्त्री

राजपण्डित रियासत अलवर राजपूताना

भिन्न २ स्थानों में श्री १०८ स्वामी हंसस्वरूपजीमहाराज के व्याख्यानों के श्रवणकरने के पश्चात् धर्मानुरागी विद्वज्जनों ने जिन प्रशास्तिपत्रों द्वारा आपकी स्तुती की है उनमें से कतिपय तत्तद्विद्वज्जनमनोरञ्जनार्थ मुद्रित कियेजाते है ॥

॥ श्रीः ॥

[हंसस्वरूप षट्कम्]

यदीयवाक्पटुत्वमस्ति लोकचित्तकर्षकम् ।
कथं न गूढवस्तु तत्प्रकाशने स्फुटं भवेत् ॥
जडाजडाः पपुः समं यदीयभाषणामृतम् ।
नमोऽस्तु ते विशालधीविराजमानमस्करिन् ॥१॥

कलत्रपुत्रसंगजं विहाय सौख्यमस्थिरम् ।
पुराणधर्मकीर्त्तने मनोन्यधाय्यहर्निशम् ॥
पदं कषायलाञ्छितं मिषन्नयस्यसार्थकम् ।
नमोऽस्तु ते विशालधीविराजमानमस्करिन् ॥२॥

क्रियायुतं प्रमाणजं यदीयतत्वदर्शनम् ।
तनोति निश्चयं दृढं विशंकितस्यसत्वरम् ॥
जिताश्च येन नास्तिका भजन्ति योगसाधनम् ॥
नमोऽस्तु ते विशालधीविराजमानमस्करिन् ॥३॥

न शास्त्रमेव केवलं भृशं विलोडितं परम् ।
व्यबोधि लोकवृत्तमिष्टहेतुसिद्धये त्वया ॥
इयं श्रुतं फलाय भूरि कल्पते न संशयो ।
नमोऽस्तु ते विशालधीविराजमानमस्करिन् ॥ ४ ॥

भवन्ति साधवो भुवि स्वसिद्धये कृतश्रमा ।
विलीयते तदात्मसु स्फुटं तदीयगौरवम् ॥
त्वया तु लोकसंश्रयार्थमादृता विरक्तता ।
नमोऽस्तु ते विशालधीविराजमानमस्करिन् ॥ ५ ॥

क्षेत्रेऽस्मिन्रघुनाथपादकमलद्वन्द्वांकिते निर्मले ॥
बीजं ज्ञानमयं न्यवापि सुदृढं हंसेन यद्भिक्षुणा ॥
सस्यत्वं प्रतिपादितं कृषिकवद्यत्नेन विद्वज्जनैः ।
विद्याक्षुच्छमनं तनोतु तदिदं दिक्षु प्रतिष्ठां नृणाम् ॥

काशिनाथ बलवन्त पेंडसे ॥ ६ ॥
सिटी मैजिस्ट्रेट
नासिक पंचवटी

———:0:———

॥ ॐ ॥

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य हंसस्वरूप गुरुचरणकमलयुगल

शतशो नतिततयः संतु सर्वेषां सभासद्गणानाम् ॥

मत्तमयूरी ।

मायातीतं ध्वस्तविमोहं स्वमहिम्ना । शुद्धं बुद्धं निर्मलमेकं सुखरूपं ॥ वृंदारूणां मोक्षदमंदारमुदारं । ब्रह्मानंदं श्रीयतिराजं प्रणमामि ॥

भुजङ्गप्रयात ।

भवध्वांतविध्वंसमार्तण्डमीड्यं । परं दर्शयंतं परं धाममार्गम् ॥ प्रपंचोपहृच्चेतसां मानुषाणां । सदाऽहं मुदा हंसरूपं नमामि ॥१॥ शरण्यं हि यत्पादपद्मं गतानां । भवोद्धारणायैव पृथ्वीं पुनातुम् ॥ सदा संचरंतं तदाकाररूपं । सदानन्दकन्दम भजे हंसरूपम् ॥२॥ चतुर्वर्णधर्मोन्नतिं संविधातुं । परेशः स्वयं हंसरूपेण भूतः । हितं ज्ञानबोधेन पापं हरन्तं । भवध्वंसकं हंसरूपं भजामि ॥ ३ ॥

मालिनी ।

तपन इव सतेजाः सच्चिदानन्दरूपः । स हि हरिरूपकृत्या जात एव प्रजानाम् ॥ सदयहृदय एष ब्रह्म-

भूतःसदाऽहं। सविनयममलं तं हंसरूपं नमामि ॥

रथोद्धता।

भो जना भजत सत्पादांबुजं। सानुकंपहृदयस्य वर्णिनः॥ सर्वभूतलनिवासकारिणो। यूयमिच्छथ भवक्षयाय चेत्॥

इंद्रवज्रा।

हंसस्वरूपेण प्रसादभूतं। ज्ञानोपदेशामृतमर्पितं यत्॥ ये श्रद्दधानाश्च निषेवयंति। धन्याः सदा ज्ञानपदा भवन्ति॥

उपजाति।

शरत्सुधांशुप्रतिमप्रकाशं, कृपातपत्रं भवतां पवित्रम्। अस्मत्समानां स्वपदाश्रितानां। स्वच्छायया तापमपाकरोतु॥

शार्दूल विक्रीडित।

भो स्वामिन् यतिराजरूप नृहरे, हंसस्वरूपेश्वर। प्राप्तोऽहं शरणं भवच्चरणयोः कारुण्यतः पाहि मां॥ दासेऽस्मिन् शरणागते हितकरः सौख्योपदेशोऽधुना कार्योऽभ्यर्थय इत्यहं गुरुपदे नान्यत्प्रभो कामये॥

उपजाति।

मदीयहृन्निर्गतपद्मभृङ्गाः। सुस्वादितुं ज्ञानपराग-

मोदम् ॥ विशन्तु तत्पादसरोजयुग्मम् । हंसस्वरूपस्य यतीश्वरस्य ॥

अनुष्टुप् ।

गोविंदसूरिपुत्रेण काशीनाथद्विजेन वै ।
उपासनीत्युपाख्येन प्रणयाश्रुगुणेन च ॥
पद्यप्रसूनमालैषा ग्रंफिता चित्तशुद्धये ॥
श्रीमद्धंसस्वरूपस्य गुरोः कण्ठे समर्प्यते ॥

अमरावती
विरार

———:0:———

॥ श्रीः ॥

॥ आनन्दनपत्रम् ॥

सच्छास्त्रतत्वार्थविचारचारुताशालीनवक्तृत्वानिरस्तसंशयम् । योगागमज्ञानविधूतकल्मषं हंसस्वरूपाख्यगुरुं सभाजये ॥ १ ॥ व्याख्यानकाले मधुरैः सुधोपमैरासारतुल्यै र्वचनै र्मनोहरैः ॥ विश्वोपकारैकपरायणं सदा हंसस्वरूपाख्यगुरुं सभाजये ॥ २ ॥ यत्पादपङ्केरुहमाश्रिताञ्जनान्समाश्रयन्ते नहि दुःखराशयः । तापत्रयोन्मूलनवाक्यभूषितं हंसरूपाख्य गुरुं सभाजये ॥ ३ ॥ वैदेशिकानां विपरीतभावनावाक्यै र्विपर्यस्तमते र्जनस्य वै । अज्ञानपङ्के पतितस्य तारकं हंसस्वरूपाख्यगुरुं सभाजये ॥ ४ ॥ अव्याजमाधुर्यसुधासारित्पातिद्रोणीपातिज्ञानगुरुं शुभप्रदम् । विज्ञाननिष्ठापरितुष्टमानसं हंसस्वरूपाख्यगुरुं सभाजये ॥ ५ ॥

चन्द्रदत्त शर्म्मा
राजपण्डित अलवर
[राजपूताना]

———:0:———

॥ ॐ ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकहंसस्वरूपस्वामि
पदारविन्दप्रशस्तिः

सोहं च हंसश्च समानवाच्यौ इति स्म वेदान्तविदो वदन्ति । हंसे स्वयं धर्मरहस्यमद्धा प्रवक्तरि स्यात्स्फुटमेव सर्वम् ॥१॥ हंसेति सूर्यापरनाम रूढं हंसप्रकाशे च कुतस्तमःस्यात् । किमत्र चित्रं यदि नास्तिकोपि जातानुतापो भवति प्रबुद्धः ॥ २ ॥ श्रुतिप्रणीते च पुराणधर्मे, श्रद्धां जनानां शिथिलां समीक्ष्य । तां वै द्रढीकर्तुमनाः परेशो हंसस्वरूपं विससर्ज भूमौ ॥ ३ ॥ हंसस्वरूपाभिधयोगिमूर्तिं विलोक्य धन्याः कति सन्ति जाताः । निपीय तद्वागमृतं कियन्तः पुनः स्वधर्मेऽतितरां रमन्ते॥ ४ ॥

आगाशे गणेशशर्मा ।

धुलिया खान्देश ।



———*:⌒:*———



नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

हंसनाद

{ वक्तृता १ }
{ *Lecture 1* }

विषय—भूमिका

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

त्वरितनिहतकंसं योगिहृद्याब्जहंसं
यदुकुमुदसुचन्द्रं रक्षणे त्यक्ततन्द्रम् ।
श्रुतिजलनिधिसारं निर्गुणं निर्विकारं
हृदय ! भज मुकुन्दं नित्यमानन्दकन्दम् ॥

प्रियसभासदो ! आज बड़े आनन्द की वार्ता है कि सनातनधर्म

की उन्नति निमित्त यह सुन्दर सभ्यमण्डली इस सभाभूमि में सुशोभितहुईहै जिसे देख मेरी यह छोटी जिह्वा कुछ कहने के लिये उत्सुक होरहीहै, आशा है कि सभ्यगण इसकी टेढ़ी सीधी वाणी को एकाग्रचित्त हो श्रवण करेंगे।

प्रिय सज्जनो ! सनातनधर्म की कोमल २ अमराइयां जो कलिरूप पतझड़ऋतु के आनेसे सूखतीजातीथीं आज हमारे सभासदों की श्रद्धारूप बसन्तऋतु को देख फिर नवीनप्रकार से पुष्पित होनेचाहतीहैं।

सनातनधर्म के सरोवर में हरि के यशोरूप जल की न्यूनता के कारण जो दया औ क्षमा रूप मछलियां व्याकुलहो फिरतीथीं आज हमारे सभासदों के उत्साहरूप घोर घमण्ड मेघमण्डल को उमड़ेहुए देख फिर कल्लोलें मचानेचाहतीहैं।

प्रिय सभासदगण ! आज प्रथम दिवस होने के कारण मेरी इच्छा किसी विशेष गम्भीर विषय वक्तृता करने की नहीं है इसलिये मैं इस समय केवल भूमिकामात्र कथन करताहूं जिसमें भारतदेश की दुर्दशा औ उसकी अवनति के कारण, नवीनप्रकार की शिक्षा से सनातनधर्म में नानाप्रकार के उपद्रवों का प्रवेशकरजाना, औ औरभी अनेक प्रकार की बातें जो बुद्धिमानों के विचारने योग्य हैं, संक्षिप्त रीति से अपने प्रिय सभासदों को श्रवण कराताहूं जिससे सनातनधर्मानुरागियों को अगले दिनसे सनातनधर्म के गम्भीर विषयों पर व्याख्यान श्रवण करने की पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न होगी ॥

आज मैं प्रथम इस सभाभूमि में यह देखलानेचाहताहूं कि यह हमारादेश जो किसी समय सम्पूर्ण पृथिवीमण्डल में शिरोमणिथा, जिसके बल, बुद्धि, विभव, विद्या, पराक्रम की समता कोई दूसरा देश नहीं करसकताथा आज किस दुर्दशा

को प्राप्तहै— प्रिय सभागदगण! यह वही भारतमाता है जिसकी गोद में भीष्मपितामह समान वीर, अर्जुन सदृश योद्धा, युधिष्ठिर से धर्मात्मा, महाराज दशरथ औ जनक से न्यायकारी विराजमान थे जो तनक भी अपने कानों से यह सुनतेथे कि कोई नवीन कपोलकल्पित मत हमारे धर्म को किसी स्थानमें आक्रमण कररहाहै शीघ्र कटिबद्ध हो हाथ में धनुषबाण ले वहां पहुंच प्राण देने को तय्यार होतेथे। यह वही भारतमया है जिसके क्रोड़ में गौतम, कणाद, वशिष्ठ, कपिल, याज्ञवल्क्य, भृगु, अंगिरा, यमदग्नि, पराशर, व्यास, वाल्मीक, शंकराचार्य्य, रामानुज, इत्यादि शोभायमान थे जो कहीं थोड़ीभी भी यह सुधि पातेथे कि अमुक नवीनमत हमारे भारत के किसी कोने में सनातनधर्म के नाश निमित्त चेष्टा कररहाहै शीघ्र उस स्थान में पहुंच अपनी विद्या, तेज, पराक्रम के द्वारा उसे ध्वस्तकर फिर अपने सनातनधर्म को निरूपण करतेथे। आज वही भारतमाता अपने धर्मरूप वृद्धपुत्र को गोद में लिये मस्तक को नीचे झुकाये शोक का आंसू बहारहीहै औ पीट २ कर यह कहरहीहै कि हाशोक! हाशोक!! वे हमारे रक्षक वशिष्ठ, शंकराचार्य्य, भीष्म, युधिष्ठिर, इत्यादि कहां गये जो मेरे एक बुन्द अश्रु को नहीं सहसकतेथे, अब मैं फूट २ कर रोरहीहूं उनही महाशयों की सन्तान इस मेरे छातीपर बूट (अंगरेजी जूता) पहने खटखटारहीहै। किन्तु मेरे अश्रु पोंछने केलिये इनमें कोई भी पुरुषार्थ का अञ्चल नहीं फैलाता।

प्रियसभासदगण! अब आपलोग विचारकरेंगे कि जो देश किसी समय ऐसी उन्नति को प्राप्त था अब किन कारणों से ऐसी दुर्दशा में पड़ाहै—यदि इस दुर्दशा के सब कारण भिन्न २ कहेजावें तो वक्तृता विस्तार होजावेगी औ मेरे सभासदों के समय की अत्यन्त हानि होगी इसकारण मैं संक्षिप्तकर दोचार मुख्य कारणों को कहसुनाताहूं श्रवण कीजिये।

भारत की दुर्दशा के मुख्य कारण

[१] महारानी संस्कृतभाषा का रूठकर भारत से मुंह मोरलेना।

[२] संस्कृत न पढनेसे अपने धर्म की वार्ताओं औ वेद पुराणादि ग्रन्थों में अरुचि होजानी।

[३] गुरुप्रणाली का भ्रष्ट होजाना।

[४] सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म का छूटजाना।

[५] कर्म, उपासना, ज्ञान का लोपहोजाना।

इत्यादि इत्यादि।

ऊपरोक्त कारणों में से प्रथम कारण के श्रवणकरतेही बहुतेरे इससमय के नवशिक्षित युवक (New enlightened young) यह कहपड़ेंगे कि "भाई! जब २ कोई वक्ता (Lecturer) व्यासगादी (Platform) पर आखड़ाहोताहै तब २ यही कोलाहल मचाने लगताहै कि हा संस्कृत! हा संस्कृत!! अरे भाई! संस्कृत में क्या रखाहै? यह तो एक मरीहुई निर्जीव भाषा (Dead Language) है, इसके पढ़ने से क्या कार्य्य सिद्ध होसकताहै? व्यर्थ इस भाषा के निमित्त इतना हलचल मचाना क्यों?"।

प्यारे नवशिक्षितो! यह आपका कथन ठीक, किन्तु आप पूर्णप्रकार विश्वास रखें औ जानेरहें कि यदि कोई सब से उत्तम मुख्यभाषा इस पृथ्वीमण्डल पर है तो संस्कृतही है जिस से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की भाषायें बनीहैं, जैसे दासियां अपनी ठकुरानी की सेवा में चारों ओर से खड़ीरहतीहैं उसीप्रकार और सब भाषायें इस महारानी संस्कृतभाषा की चारोंओर हाथबांधे खड़ीरहतीहैं,

फिर यह संस्कृतभाषा और सबभाषाओं की माता है जिससे लैटिन, ग्रीक, जर्मन, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, सब निकलीहैं, उर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्थानी की तो क्या गिनतीहै, सभासदों की प्रतीति निमित्त यहां मैं थोड़े शब्दों का उदाहरण देकर स्पष्टरूपसे देखलाताहूं कि उक्त भाषायें संस्कृत से कैसे बनीहैं—

संस्कृत	लैटिन	ग्रीक	जर्मन	अंग्रजी	अरबी	फ़ारसी
मातृ(माता)	मेतेर	मीतर	मुतेर	मदर	×	मादर
पितृ(पिता)	पातेर	पातीर	वातेर	फ़ादर	×	पिदर
भ्रातृ(भ्राता)	फ्राटेर	॰	ब्रुदर	ब्रदर	॰	बिरादर
सूनुः	×	हिओस	सोह	सन	॰	×
दुहितृ,(दुहिता)	+	थाइगेटीर	तौकतर	डौटर	॰	दोख़तर
स्वादः	स्वविस	हिदिस	स्यूस	स्वीट	॰	॰
हृषः	कुर्सस	॰	हौस	हौर्स	॰	॰
अस्ति	॰	+	॰	॰	॰	अस्त
अल्ला	॰	॰	॰	॰	अल्ला	॰
आपः	॰	॰	॰	॰	॰	आब
अलम्	॰	॰	ओल	ओल	अल	॰
अन्नम्	॰	॰	॰	॰	॰	अन्न
अन्तः	अन्ते	अन्ति	एन्डे	एन्ड	॰	॰
अन्तकालः	॰	॰	॰	॰	इन्तकाल	॰
अक्षा	॰	॰	॰	॰	इक्षा	॰
त्रि[त्रयः]	त्रेस	त्रेइस	द्रेइ	थ्री	॰	॰
गौः	॰	कुह	काउ	॰	॰	गाव
रविः	॰	॰	॰	॰	रब	॰
नेम	॰	॰	॰	॰	नीम	नीम
सग	॰	॰	॰	सग	॰	॰

कलमः* ० ० ० ० क़लम ०

प्रिय सज्जनो ! मैं संस्कृतभाषा का महत्त्व आप के समीप इतनाहीं देखलाकर नहीं चुप होजाऊंगा कि ऊपरोक्त थोड़ेसे शब्द इस भाषा से निकलेहुए देखपड़तेहैं वरु इस से भी विशेष शक्ति इस संस्कृतभाषा की यह है कि अन्य किसी भाषा के गद्य अथवा पद्य कैसे भी क्यों नहों वे वाक्य के वाक्य ज्यों के त्यों इस भाषा में बनजावें और उनके तात्पर्य्यार्थ भी समीप २ ज्यों के त्यों मिलतेजुलते देखपड़ें, यदि इच्छा हो तो एकाग्रचित्त हो श्रवणकीजिये ।

جہان اے برادر نہ ماند بہ کس

फ़ारसी— जहान ऐ बिरादर नमानद बकस ।

संस्कृत— जाहान ए वीरादर न मानदो वाकस्य

دل اندر جہان آفرین بند و بس

फ़ारसी— दिलन्दर जहानाफ़रीं बन्दोबस ।

संस्कृत— धैर्य्यं धर जाहान आपरेण बद्धो वा वशः

قرص خورشید در سیاہی شد

फ़ारसी— क़ुर्स खुर्शीद दर सियाही शुद ।

संस्कृत— कुःसा करसदर्शीयाहिसुधा ।

---

* इसके दो अर्थ हैं, एक लिखने का क़लम औ दूसरा जो वृक्ष से काटकर क़लम लगातेहैं ।

कलते कलयतिवा अक्षरं प्रकाशयतिजनयतिवा—कल धातोः । कलिकर्द्दोरमः उणादि ४ – ८४ – इति अम प्र० । स्वनामख्यातलिपिसाधनवस्तु इति जटाधरः । स्वनामख्यातशालिधान्यविशेष इति कालिदासः । रघु० ४ – ३७ ।

आपादपद्मप्रणताः कलमाइवतेरघुम्
फलैःसम्वर्द्धयामासु रुत्खातप्रतिरोपिताः

अब श्रोतागण विचार कर देखें कि फारसी के प्रायः सब पद संस्कृतही से बने देखपड़तेहैं इसीकारण मुझको फारसी से संस्कृत बना कर देखलादेने में कुछ भी परिश्रम नहीं हुआ और इनके अर्थ में भी भिन्नता नहीं हुई, तात्पर्य्यार्थ दोनों का एकही रहा—यदि जी चाहे तो आप अर्थ भी सुनलीजिये—उधर फारसीवाले दोनों पदों का अर्थ है कि "हे भाई! जहान अर्थात् संसार किसी के साथ नहीं रहता इसकारण अपने दिल को उस संसार उत्पन्नकरनेवाले ईश्वर के साथ बांधो और बस" (फारसीवाले इसको समझेंगे) अब उसी का जो संस्कृत कियागयाहै उसका अर्थ भी सुनिये—

संस्कृत में—[जाहान*] जहां वार २ जावें अर्थात जहां प्राणी वार २ जाकर जन्मते मरतेहैं ऐसा जो संसार सो (ए वीरादर) हे वीरों से आदर कियेजानेवाले अर्थात हे उत्तमवीर (न मानदः) नहीं मानदेनेवालाहै (वाकस्य) किसी भी पुरुष का, तात्पर्य्य यह कि जहानकी सम्पत्ति किसी को मानदेनेवाली नहींहोती इसलिये कहा है कि हे भाई जहान किसी के साथ नहीं रहता इसकारण (धैर्य्य धर) धीरज धारण करो क्योंकि (जाहान) यह जहान (आपरेण) उस ब्रह्म के साथ (बद्धः) बंधाहुआहै औ (वशः) उसी के वशीभूत है। देखिये पद के पद और उनके तात्पर्यार्थ भी समीप २ समानही रहें॥

फिर तीसरे पद का फारसी में अर्थ है (कुर्स खुर्शीद) सूर्य्य की गोलाकार मूर्त्ति (दरसियाही शुद) श्यामता में चलीगई अर्थात्

---

*जाहेति जाहातिना यत्रेति यङ्लुगन्तात् गत्यर्थकात् 'हा' धातोः [करणाधिकरणयोश्च] इति सूत्रेण अधिकरणे ल्युट् प्रत्यये कृते [युवोरनाकौ] इति सूत्रेण युस्थाने अनादेशे कृते (जाहान) इतिपदं निष्पन्नम्॥

सन्ध्याकालहोगया—

अब उसी वाक्य का अर्थ संस्कृत में भी सुनलीजिये :— [करसदर्शी] किरणैः सीदति रसमिति करसत् तं पश्यति या सा करसदर्शी अर्थात् किरणों से जो भूलोकादि के रसों को शोषण करे वह करसत् अर्थात सूर्य, उस सूर्य को जो देखे वह करसदर्शी अर्थात् पृथ्वी, अब अर्थ यह हुआ कि [सा कुः] वह पृथ्वी [या] जो थोड़ीदेर पहले करसदर्शी थी अर्थात् सूर्य को देखतीथी तात्पर्य यह कि जिस पृथ्वी पर पहले दिनथा सो अब (हि) निश्चयकरके (सुधा) सुधाकर नाम चन्द्रमा से आक्रान्तहुई अर्थात् सन्ध्याकाल होगया । अब देखिये इनदोनों के तात्पर्यार्थ भी समानही हैं ।

फिर अङ्गरेजी में देखिये—

I am the monarch of all I Survey.

आइ ऐम दि मौनर्क औफ़ औल आइ सरवे— अंग्रेज़ी

अहमादिमानार्कोऽफालैः सर्वैः :— संस्कृत

अंग्रेजी वाक्य का अर्थ = मैं उनसब वस्तुओं का राजाहूं जिसे मैं देखरहाहूं ।

संस्कृत का अर्थ—[अफालैः सर्वैः] इन सब अखण्ड वस्तुओं से जो मेरे सामने देखजातेहैं [अहं आदिमानार्कः *] मैं आदिमानार्क अर्थात् राजाहूं ।

अब लैटिन भाषा की ओर भी दृष्टि कीजिये—

Latin—Tempora mutantur nos et mutamur in illis.

---

* आदिमानार्कः— मान के सूर्य नाम अत्युत्कृष्ट मानवालों में आदि अर्थात् प्रथम = राजा ॥

लैटिन— तेम्पोरा म्युतैन्तर नौसेत म्युतैमर इन इलिस (जिसका अर्थ यह है कि " समय का परिवर्तन होताजाता है औ उसके साथ २ हमलोग भी परिवर्तित होतेजातेहैं ") ।

संस्कृत— तम्परम्मित्यन्तरन्नश्यति मर्त्यानांनः आलि सह

अर्थ— [आलि] हे सखि [मर्त्यानांनः] हम मनुष्यों का [तंपरंमित्यन्तरम्] वह परम उत्कृष्ट मितियों का अन्तर अर्थात् मुहूर्त्त, प्रहर, इत्यादि [सह] हमलोगों के साथ २ [नश्यति] नाश होता है, तात्पर्य्य यह कि जैसे २ समय का परिवर्तन होताजाताहै हमलोग उसके साथ २ परिवर्तित होतेजातेहैं ।

अब थोड़ा ग्रीक यूनानी को भी सुनिये—

Greek— Ariston metron= The middle course is the best. The golden mean.

ग्रीक— एरिस्तन मेत्रन= अर्थ— मध्यमार्ग उत्तम है । अथवा यह उपाय अति उत्तम है ।

संस्कृत— एरीस्थानि मित्राणि— अर्थात् [री] गति के [स्थानानि] स्थान अर्थात् चलने के स्थान [मित्राणि] मित्र हैं अर्थात् उत्तम हैं । [एः] हे सखे

अब अरबी को भी तो ज़रा देखिये—

بسم الله الرحمن الرحيم

अरबी— बिस्मिल्ला अररहमानररहीम ॥ जिसका अर्थ है कि " आरंभ करताहूं मैं उस परमात्मा के नाम से जो

क्षमा करनेवाला है औ क्षमा करानेवाला है " ॥

संस्कृत— विस्मयेऽल्ला अह्नमाना रह्मानः ।

अर्थ— [विस्मये] मैं देख २ कर आश्चर्य करता हूं [अल्लाः] परमात्मा की शक्तियों को जो [अह्नमानाः] पूज्यमाना हैं औ [रह्मानः] पापों को छोड़ देनेवाली हैं अर्थात क्षमा करनेवाली हैं ॥

अब इन वचनों को सुनकर भी बहुतेरे नवशिक्षित यह कहेंगे कि हां इतनी बात तो अवश्य हम मानते हैं कि संस्कृत प्राचीन भाषा और सब भाषाओं की माता है किन्तु संस्कृत में किसीप्रकार की सारगर्भित विद्या नहीं है जहां देखिये वहां गप्पें भरी हैं, जैसे— अगस्त्य का समुद्र पान करजाना। राजासगर के पुत्रों के खोदने से समुद्रों का प्रगटहोना। हनुमानजी का द्रोणाचल को एकवारगी उत्तर हिमालय से उठाकर दक्षिण लङ्का लेजाना। कुम्भकर्ण का शरीर चार योजन का होना। ऐसी २ असंभव बातें गप्प भरीहुईहैं, कोई न्याय (Science) पदार्थविद्या (materialism) आत्मविद्या (Spritualism) कपालविद्या (Phrenology) सामुद्रिक (Phisiology), गणित (Arithmetic) भूगोल (Geography) इत्यादि कुछ भी नहीं हैं,

सचहै प्यारे नवशिक्षितो! सचहै! अब मेरे सभासद्गण विचारलेवें कि इनकी ये बातें कैसी बिना सिर पैर की हैं—अरे भाइयो नवशीक्षितो! यदि आप थोड़ा भी परिश्रम करके अपनी संस्कृतविद्या के ग्रन्थों को देखें तो उसी क्षण आपको ज्ञात होजावेगा कि जिन विद्याओं का आप संस्कृत में अभाव बताते हैं वे विद्या ऐसी पूर्णरीति से संस्कृतभाषा की वाटिका में प्रफुल्लित होरहीहैं कि जिसका वर्णन मेरी इस छोटी सी जिह्वा से नहीं होसकता, यहांतक कि इसी संस्कृत की वाटिका से अन्यदेशीय (Foreigners) उक्त सर्व विद्याओं का कलम काटकर लेगयेहैं। दे-

लिये आप तो यही कहेंगे कि [जब हम अङ्गरेजी पढ़तेहैं तब हमको यह ज्ञात होताहै कि चन्द्रमा में प्रकाश सूर्य से आताहै, स्वयं चन्द्र का अपना प्रकाश नहीं है, फिर हम यह भी जानलेतेहैं कि विद्युत में आकर्षण है अथवा विद्युत चमकीले पदार्थ की ओर बहुत वेग से दौड़कर जा मिलती है" । हमको अब अङ्गरेजी में Mr. Mesmer* की निकालीहुई मिस्मेरिज्म (Mesmerism) विद्या से यह बोध होता है कि हमारी अंगुली औ जिह्वा के अग्रभाग में विद्युत का निवास है जिसे हम एक रोगी के शरीर में पास कर उसे रोगरहित करसकते हैं । भला ये बातें संस्कृत में कहां है?] ! तो मित्र नवशिक्षितो! यद्यपि इस समय इतना अवकाश नहीं है कि मैं इन विषयों पर भिन्न २ व्याख्यान (Lecture) दूं क्योंकि आज मैंने भूमिकामात्र हाथ में लीहै तथापि सर्वसाधारण पुरुषों के बोध निमित्त मैं उक्त विषयों के संस्कृत में होने का संस्कारमात्र देखलादेताहूं, बुद्धिमान इसी थोड़े में समझजावेंगे ।

देखिये आपने जो प्रथम सूर्य चन्द्र के प्रकाश के विषय में कहा सो संस्कृत में यों लिखा है कि —

तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो
दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ।
तदितरदिशिबालाकुन्तलश्यामलश्री
र्घटइव निजमूर्त्तेः छाययैवातपस्थः

अर्थात् यह जो (पियूषपिण्डः) अमृत का गोला चन्द्रमा है उसका (दिनकरदिशि) सूर्य की ओर जितना अंश रहता है उतना (तरणिकिरणसङ्गात्) सूर्य की किरण के संग से (चन्द्रिकाभिश्च-

* A German physician (B. 1733—D. 1815) who brought mesmerism into notice.

कान्ति) ज्योति से प्रकाशित रहता है और उसके (इतरादिशि) दूसरी ओर (वामाकुन्तल) स्त्री के काले बाल के समान (श्यामलश्रीः) श्यामताई से सुशोभित रहता है, जैसे (आतपस्थः घटः) धूप में रखाहुआ घड़ा धूप की ओर आधा प्रकाशित है और आधी ओर उसके छाया रहती है। अब कहिये ! फिर आपने यह बतलाया कि अंग्रेजी पढ़कर हमलोग विद्युत के आकर्षण का वृतान्त भली भांति जानतेहैं, सो सुनिये—— जिस विद्युत के वृतान्त को अंग्रेजी पढनेवाले दस २ वर्ष अपने मस्तिष्क को थकाकर पांच २ सौ हजार २ मासिक पाकर औक्सफोर्ड अथवा कलकत्ते कालिज के प्रौफेसर (Professor) बन कर जानतेहैं, वह विद्युदाकर्षण किसीसमय संस्कृत विद्या में एसी फैली हुईथी कि आजतक भी हमारे घर की पानी भरनेवाली लौंडियां जो ग्रामों में केवल एक रोटी औ दो पैसे मासिक पातीहैं भलीभांति जानती हैं, यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि जिस गंभीर आशय को बड़े २ प्रौफेसर (Professor) जानतेहैं उसको ये दोपैसे की पानेवाली लौंडियां कैसे जानतीहैं, तो सुनिये मैं आपको सुनाताहूं।

आजतक हमारे देश में यह प्रणाली है कि जब ये लौंडियां बाहर से जलका घट भरकर मकान के भीतर घुसतीहैं और देखतीहैं कि आकाश में घनघोर घटा लगीहुईहै और बिजलियां चमकरहीहैं, घटा अत्यन्त प्रचण्ड शब्दों के साथ गरजरहीहै, और मकान के आगन में कांसा फूल, पीतल, सोने, चांदी इत्यादि के पात्र (वर्तन) पड़ेहुए हैं तो देखते के साथही यह शोर मचातीहैं और कोलाहल करतीहैं कि हटाओ ! हटाओ !! इन पात्रों को घरमें छिपाओ ! ऐसा नहो कि इनपर बिजली गिरकर इनको चूर २ करडाले। अब बताइये कि इन मूर्ख दासियों को किस प्रौफेसरसाहब ने विद्युत के आकर्षण की चाल बताई ! प्रियसभासदगण। यह उसी संस्कृतविद्या का संस्कार है जो आजतक दासियों के मुख में प्रगटरूप से देखाजाताहै, विद्वानों की तो क्या कहनी है ! फिर आपने कहा कि

अंग्रेज़ी में मिस्मेरिज़्म (mesmerism) विद्या पढ शरीरों में विजली दौड़ा हम रोगियों को अच्छा करलेतेहैं क्योंकि हमारी अंगुली और जिह्वा के अग्रभाग में बिजली का निवास है ! तो प्यारे नवशिक्षितो ! नवीन प्रकाशवालो ! मिस्मेरिज़्म (mesmerism) जिसे आप बहुत दिनों के परिश्रम के पश्चात् जानतेहोंगे वह हमारे यहां गलियों में मारी फिरती है, क्योंकि यहां की साधारण स्त्रियां भी जिनको आप इधर उधर मार्ग में फिरती देखतेहैं इस विद्या को भलीभांति जानतीहैं । देखिये जबकभी किसी स्थान से छोटा बच्चा खेलते २ गिरजाताहै और उसके किसी अङ्ग में चोट लगजातीहै तो चट स्त्रियां अपनी गोद में लेकर अपनी जिह्वा से फूंक उसे चंगा कर देतीहैं अथवा जब कोई पुरुष अथवा बालक रोगग्रस्त होजाताहै तो हमारे देश के देहाती झाड़फूंक करनेवाले अथवा कोई साधु वा ब्राह्मण उस रोगी के समीप जा हाथों से मस्तिष्क की ओर से नीचे को उतारा करडालतेहैं और ऐसा करने से रोगी रोग से मुक्त होजाताहै । अब बताइये कि यह बल वा भेद हमारे देशियों को मिस-मरसाहब ने बताया कि संस्कृत विद्या का प्रभाव है । मैं जानताहूं कि जब से यह बात भारत में प्रसिद्धहै उस समय मिसमरसाहब का जन्म भी न रहाहोगा । (देखो टिप्पणी पृ० ११)

अब हमारे नई रौशनीवाले नवयुवक यह कहपड़ेंगे कि हां साहब ! संस्कृत विद्या में कुछ ये गंभीर २ बातें भी हैं किन्तु संस्कृत पढनेवालों में एक बड़ी मूर्खता यह है कि इस विद्या के विद्वान कङ्कर, पत्थर, आग, पानी, गाय, बैल, सूर्य, चन्द्र, नदी, नद, पुतले पुतली, सब को ईश्वर कह मस्तक झुकातेहैं ! प्रिय सभासदो ! हंसी आती है इन नवीनप्रकाशवालों पर जो विना समझेबूझे "गांव न गांव में तेरा मेहमान" बनजातेहैं, कहावत प्रसिद्ध है कि "चले न जाने आंगन टेढो" "विच्छू का मंत्र न जाने मणियारे सर्प के मस्तक

पर हाथ धरे ", जिन नवशिक्षितों को यह भी नहीं ज्ञात है कि धर्म किस पशु का नाम है वे धर्म के ऐसे गंभीर तात्पर्य्य को क्या समझें ! प्रिय श्रोतागण ! प्रतिमापूजन अथवा तीर्थ इत्यादि के विषय तो मैं पूर्ण अवकाश पाकर किसी दूसरे दिन कहूंगा आज मैं सभासदों के बोध निमित्त यह देखलादेताहूं कि जिस कङ्कर, पत्थर, घास, पत्ती, इत्यादि की पूजा को हमारे नईरोशनीवाले हमारे धर्म की मूर्खता बतलातेहैं उसी कङ्कर इत्यादि की पूजा को मैं अपने सनातनधर्म का सब से प्रथम और पूर्ण होने का सिद्धान्त औ उपपत्ति अर्थात् सबूत बतलाताहूं ।

देखिये हमारे धर्म की एक छोटीसी बात भी (Childish for the children and philosophic for Philosophers) बालकों की दृष्टि में तो खेल और बुद्धिमानों की दृष्टि में अत्यन्त गंभीर औ गूढ़ तात्पर्य्य की प्रगट करनेवाली है

देखिये मैं छोटी २ बातों से गम्भीर आशयों को प्रगटकर देखलाताहूं श्रवणकीजिये ।

आपलोगों ने अवश्य देखाहोगा कि प्रायः हमलोगों के घर की स्त्रियां हाथ में थाल लेकर दधि, दूर्वा, गोचन, पुष्प इत्यादि के साथ गंगापूजन को जातीहैं औ पूजन के अन्त में गंगातट को लाल सिन्दूर से टीका इत्यादि कर जब घर को लौटतीहैं तब मार्गमें दायें बायें दोनों ओर के भिन्न २ वृक्षों को अर्थात् अश्वत्थ [पीपल] बबूल, पाकर, रसाल इत्यादि को भी उसी अपने लालसिन्दूर से टीकती चलीजातीहैं, यहांतक कि गैया के गोबर अथवा खेतों के बड़े बड़े मिट्टी के ढेलों को भी टीका करदेतीहैं । फिर एवम्प्रकार टीका करतीहुई जब अपने गृह पर पहुंच द्वार के भीतर प्रवेश करतीहैं तब द्वार की दोनों ओर की भीतों को भी उसी लालसिन्दूर से टीकदेतीहैं,

किसी ने कहाहै कि —

अपने २ करथपे लिखिपूजें त्रिय भीत।
सुफल फलै मनकामना तुलसी प्रेम प्रतीत॥

ऐसे देहली की दीवाल टीकतीहुई जब गृह के भीतर आजातीहैं तब अंगनाई में जो तुलसी के पौधों की वेदिका बनीरहतीहै उसकी चारों ओर भी उसीप्रकार टीका करदेतीहैं, पश्चात् शयनगृह में प्रवेशकरतीहुई खट्वा (चारपाई) के चारों पौवों को और दीपक जलाने के स्थानों को भी उसी लालसिन्दूर से टीकदेतीहैं।

अब हमारे नवीनप्रकाशवाले विचारकरें कि ये स्त्रियां जो गङ्गापूजन को गयीथीं, भला गङ्गा को तो पूजन के तात्पर्य से टीका दिया अब क्या घर की ओर लौटतीहुई पगली होगयीं वा कुत्ते ने उनके मस्तिष्क को काटखाया कि दायें बायें इन तुच्छ पदार्थों के टीकने में इतना परिश्रम करतीरहीं। यहां आप को अवश्य यह कहनापड़ेगा कि न ये पगली होगयीं न कुत्ते ने इनके मस्तिष्क को काटखाया, वरु इन स्त्रियों के इस व्यवहार ने उस पूर्व ब्रह्मविद्या के संस्कार को प्रगट कर विचारकरनेवाले बुद्धिमानों को यह स्मरण कराया कि भाइयो! ब्रह्मज्ञानियो! ब्रह्मविद्या के अभिलाषियो! यदि आप कभी इस मार्ग होकर चलें तो अपने दायें बायें सब पदार्थों में लालसिन्दूर का चिन्ह देखकर उन ऋचाओं औ श्रुतियों का स्मरण करें जिनको किसी समय हमारे सर्व साधारण अपने मुखसे उच्चारण करतेथे। वे ये हैं, " सर्वखल्विदंब्रह्म " " तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत " " ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् " अर्थात जितनी वस्तु टीकीगयीहैं वे सब निश्चयकरके ब्रह्महीं हैं अथवा वह ब्रह्म सर्व पदार्थों की रचना कर आप उनके समान बन उनमें प-

वेशकरगयाहै अथवा जोकुछ रचना इस संसार में देखपड़ती है सब में वह ब्रह्म निवास कररहाहै ॥ फिर फ़ारसीवालों को यह पाठ पढ़ादेतीहैं कि

که بچشمان دل مبین جز دوست
هرچه بینی بدانکه مظهر اوست

के बचश्माने दिल मबीं जुज़ दोस्त
हरचे बीनी बदां के मज़हर ओस्त

अर्थात् दिल की आंखों से उस दोस्त (प्राणप्रिय) को छोड़ और किसी को मत देखो, जोकुछ देखतेहो सब उसी श्यामसुन्दर की सत्ता है ।

फिर उर्दूवालों को यह जनादेतीहै कि—

یارکو میں نے جابجا دیکھا   کہیں بندہ کہیں خدا دیکھا
صورت گل میں کھلکھلا کے ہنسا   شکل بلبل میں چہچہا دیکھا
کہیں ہے بادشاہ تخت نشیں   کہیں کاسہ لئے گدا دیکھا
کہیں عابد بنا کہیں زاہد   کہیں رندوں کا پیشوا دیکھا
کرکے دعوے کہیں انا الحق کا   برسر دار وہ کھنچا دیکھا
دیکھتا آپ ہی سنے ہے آپ   نہیں کچھ اسکے ماسوا دیکھا
بلکہ یہ بولنا تکلف ہے   ہمنے اسکو سنا ہی یا دیکھا

وہ گل ہی کونسا کہ بھلا جسمیں بو نہو
وہ دل ہی کونسا کہ بھلا جسمیں تو نہو
جو کچھ کہ تھی تمنا وہ حاصل ہوئے مگر
اب دل کو آرزو ہے کہ پھر آرزو نہو

फिर अंग्रेजीवालों को यह बतलादेतीहैं कि—

There is no vacuum but God.

देयर इज़ नो वैकुअम बट गौड ।

अर्थात् कोई स्थान ब्रह्म से शून्य नहीं है ।

पूर्वोक्त उर्दूपद्य हिन्दी अक्षरों में लिखेजातेहैं ।

१. यार को मैंने जाबजा देखा, कहीं बन्दा कहीं ख़ोदा देखा
२. सूरते गुलमें खिलाखिला के हंसा, शक्ले बुलबुलमें चह चहा देखा
३. कहीं है बादशाह तख़्तनशीन, कहीं कांसा लिये गदा देखा
४. कहीं आबिद बना कहीं ज़ाहिद, कहीं रिन्दों का पेशवा देखा
५. करके दावा कहीं अनलहक़ का, बर सरेदार वह खिंचा देखा
६. देखता आप है सुनहै आप, नहीं कुछ उसके मासिवा देखा
७. बल्कि यह बोलना तकल्लुफ़है, हमने उसको सुनाहै या देखा

वह कौनसा है गुल कि भला जिसमें बू न हो,
वह दिल है कौनसा कि भला जिसमें तू नहो ।

जोकुछ कि थी तमन्ना वह हासिल हुई मगर
अब दिलको आरज़ू है कि फिर आरज़ू नहो ।

अरबी वालों को यह पढ़ादेतीहै कि—

कुल्लो शैयनक़दीरन

अर्थात् वह ब्रह्म सम्पूर्ण विश्व के पदार्थों में अपनी सत्ता से व्यापरहाहै औ सर्व का अनुशासिता अर्थात् आज्ञा करनेवाला औ सर्व का शिक्षक है ।

अब भलीभांति देखलीजिये कि स्त्रियों का सिन्दूर से यों टीका करना बच्चों औ नवशिक्षितों की दृष्टि में तो खेल है किन्तु ज्ञानियों की दृष्टि में अत्यन्त गम्भीर तत्त्व है जिसको पूर्व के महर्षियों ने हज़ारों वर्ष तपस्या कर प्रकाशितकियाहै, इसी प्रकार और सब सनातनधर्म की छोटी २ बातों को जिन्हें आप हमारी मूर्खता कहते हैं समझने के लिये आपको दस बीस वर्ष किसी गुरु की सेवा में जाकर पढ़ना चाहिये ॥

प्रिय नवशिक्षितो ! हमारे देश में ऐसे २ अनेक आचरण देखे जातेहैं जिनको देख आप हंसेंगे औ Superstition औ Prejudice अर्थात् मिथ्याभिमान, मिथ्याज्ञान, मिथ्यामति, मिथ्याविश्वास औ मूलरहितआचार अथवा दुराचार बतावेंगे किन्तु आप दृढ़ निश्चय राखिये कि जब आप कुछ दिन किसी महात्मा की सेवा में सच्चे अन्तःकरण से प्रवृत्त हो सिद्धान्तवाक्यों को (religious axioms) श्रवण करेंगे तब आप से आप ज्ञात होजावेगा कि हमारे देश के आचरण एक से एक उत्तम से उत्तम तत्त्वों की सूचना करानेवाले हैं ।

अच्छा लीजिये मैं दोएक बातें और आपको श्रवण कराताहूं पक्षपात छोड़ विचार की दृष्टि से अवलोकन कीजिये ।

देखिये आप तो हमारे देशियों को दूर्वा, औ पीपल, गाय औ सर्प की पूजा करतेहुए देख हंसते होंगे किन्तु यह हंसने की बात नहीं है, इनमें क्या सूक्ष्म विचार औ गूढ़ तत्त्व है सो सुनिये ।

हमारे आचार्यों ने वनस्पतियों में सब से छोटी दूर्वा (दूब) औ सब से बड़ा अश्वत्थ [पीपल] की पूजा करवा सर्वसाधारण को यह शिक्षा देदीहै कि दूब से लेकर पीपल तक जितनी वनस्पतियां इस विश्व में वर्तमान हैं सब में परमात्मा की उस अद्भुत सत्ता को नमस्कार

करें जिस से सहस्रों प्रकार के भिन्न विचित्र रंग रेखा से सुशोभित भिन्न २ प्रकार के गंधों से सुगंधित अन्तःकरण के प्रसन्न करनेवाले पुष्प समय २ पर प्रफुल्लित होतेहैं औ जिस लता में भिन्न २ प्रकार के सुस्वादु औ मिष्ट फल जैसे आम, अंगूर, सेब, दाख, किशमिश इत्यादि समय २ पर फलकर हमारे आहार होरहेहैं, तात्पर्य यह कि हम भारतनिवासी ऐसे निरे मूर्ख नहीं हैं कि सीधे २ इन वृक्षों के डाल पातियों को ईश्वर कह मस्तक झुकाया करतेहैं वरु हम परमात्मदेव की पूर्वोक्त अद्भुत शक्ति को इन वनस्पतियों में दूब से पीपल तक व्यापक जान नमस्कार करतेहैं ।

लीजिये थोड़ा और भी सुनिये । गोपाष्टमी के दिन गाय औ नागपंचमी के दिन सर्प की पूजा जो हमारे देश में होतीहै उसका मुख्य तात्पर्य यहहै कि हमारे महर्षियों ने एक दिन हमारी परम मित्र गाय * औ एक दिन हमारे परम शत्रु सर्प की पूजा करा यह सिद्धान्त कर दिया कि यदि तुम जीवन्मुक्त होने की इच्छा रखतेहो तो शत्रु मित्र में समान दृष्टि रखो । देखो यजुर्वेद में लिखाहै कि—

वनस्पतिभ्योनमः । सर्पेभ्योनमः ।

अब अनेकनवीनरोशनीवाले यह कहपड़ेंगे कि हां साहब यह हो सकताहै कि सनातनधर्म में कुछ गूढ़ आशय भी है किन्तु सनातनधर्म वालों में एक और बहुत बड़ी अज्ञानता यह है कि अष्टादशपुराण को भी अपना प्रमाणिक ग्रन्थ मानतेहैं, भला देखिये तो सही, पुराणोंमें कितने गड़बड़झड़झे औ गोलमालहैं कि जब शिवपुराण हाथमें लीजिये तो शिवही अनादि देव, शिवही मुक्ति, भक्ति, तुष्टि, पुष्टि, के दाता. औ

---

* गाय सर्व प्रकार के अन्न सहित दूध, दही, खोआ, मलाई देतीहै इसकारण मित्र औ सर्प डसकर मारडालताहै इसकारण शत्रु है ।

उत्पत्ति, पालन, संहार, के कर्त्ता हैं, इनहीं की पूजा, इनहीं की स्तुति औ इनहीं का भजन करतेहुए मनुष्यों का इस भवसागर से उद्धार हो-सकताहै । यदि विष्णुपुराण हाथ में आया तो विष्णुही अनादि देव, यही मुक्ति, शक्ति, तुष्टि, पुष्टि के देनेवाले यही सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति पालन औ संहार करनेवालेहैं । यदि देवीपुराण आगे आपड़ा तो क्या देखतेहैं कि देवीही सब की रचना, पालन, संहार की करनेवाली है, देवीही की पूजा सेवा करतेहुए मनुष्य परमपद लाभ करलेताहै — अब देखिये पुराणों की कैसी दशाहै कि जिसका मण्डप उसी की गीत। भला बतलाइये तो सही कि इस गोलमाल में हमलोग किस की पूजा औ स्तुति करें ? औ किसकी न करें ? अरे भाइयो ! इस पौराणिक मत को छोड़ो ! चलो ! इस गड़बड़झझ्झे से भागो ! ॥

प्रिय नवशिक्षितो ! आप की उक्त बातें अवश्य ग्राह्य हैं इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत बड़ा गोलमाल है इससे भागनाही चाहिये यदि यही बात सचहै तो भाइयो अवश्य भागो, भागो !! किन्तु एक बात स्मरण रक्खो कि पेठ के मियांभग्गू का सा न बनजाओ । किसी ने कहा है कि भग्गूमियां नामके एक पुरुष बड़े उत्तमकुल के थे आप धनवान होने के कारण कभी स्वयं हाटबाज़ार को नहीं जातेथे, संयोग-वशात् काल की प्रेरणा से आप धनहीन होगये यहांतक कि हिमऋतु में जब आप को ठण्ड ने अधिक सताई तब विचार किया कि एक रज़ाई (गदला वा गद्दा वा दगला) बनवाकर रात को सुख से का-टना चाहिये फिर आप कपड़ा औ रूई लाने को पेठ की ओर चले, जब हाट के समीप आये औ हाट आध फर्लाङ्ग के अन्तर में रहा तब उस हाट के हाहाकार शब्द आप के कानों में पड़े आप तो कभी हाट बाज़ार गये न थे, आपने यह समझा कि " हाट में फ़ौजदारी होरही है इसकारण मारदंगे के हाहाकार के प्रचण्ड शब्द कानों में आरहेहैं । " फिर तो आप यह कहतेहुए घर को लौटे कि

" भाई चलो घर चलें, इस मारदङ्गे में जाकर कौन मार खावे " तात्पर्य यह कि बेचारोंने झूठ भ्रम में पड़ न कपड़ा लिया न रूई ली रातभर ठण्ड से मरे। यदि आपको यह ज्ञात रहता कि हाट में स्वाभाविक परस्पर लेन देन के कारण मनुष्यों के शब्द एकत्र हो दूर से हाहाकार से जनातेहैं तो कदापि आप नहीं भागते, वरु यह शब्द सुनकर प्रसन्न होते कि चलो भाई शीघ्र चलें अब हाट समीप है॥

प्रिय सभासद्गण! इसीप्रकार आज नवीनप्रकाशवाले जिनने कभी संस्कृतविद्या के पेठ में पैर तक न दिया हमारे पुराणों के हर्षजनक गुंजार सुन भागने की चेष्टा करतेहैं। यदि साहसकर कुछ थोड़े दिनों के लिये भी संस्कृत विद्या के पेठ की हवा खावें तो उनको यह ज्ञात होजावे कि यह गड़बड़ नहीं है किन्तु ये अष्टादश पुराण उन अठारह मुख्य सिद्धान्तों को प्रगटकरतेहैं जो ब्रह्मविद्या की रक्षा निमित्त दुर्ग के १८ (भीत) (शहरपनाह) के समान हैं। यदि ये १८ दीवारें न होतीं तो अबतक यह बेचारा बूढ़ा सनातनधर्म चूर २ हो धूर में मिलगयाहोता— येही १८ शहरपनाह हैं कि जिनसे रक्षित होकर यह धर्म अन्यमतावलम्बियों के हज़ारों निन्दारूप छर्रों की बौछाड़ औ खण्डनमण्डन रूप बरछों औ तलवारों से छिन्न भिन्न होनेपर भी अपनी एक टांग पर अड़ा खड़ा है।

आज मुझको इतना अवकाश नहीं है कि मैं पुराणों पर वक्तृता करूं, किसी दूसरे दिन केवल पुराणोंही पर आपलोगों के समीप कथन करूंगा और वेदादि के प्रमाणोंसे यह स्पष्ट कर दिखलाऊंगा कि ये पुराण न १७ (सतरह) होसकते हैं न १९ (उन्नीस) होसकते इनको अठारहही होना चाहिये जिनसे उपासना के १८ मुख्य सिद्धान्त सिद्ध होतेहैं॥

आज मुझको देश की दुर्दशा के कारणों को कहसुनानाहै जिन

में मैंने मुख्य कारण "संस्कृतविद्या का लोप होजाना" और उसके लोप होजाने से धर्म के सिद्धान्तों को यथेष्ट न समझने के कारण "मनुष्यों को अपने धर्म औ धर्म के ग्रन्थोंमें अरुचि होजाना" कहसुनायाहै अब अन्य कारणों को भी श्रवण कीजिये।

गुरुप्रणाली का भ्रष्टहोजाना॥

प्रिय श्रोतागण! यदि आप विचार की दृष्टि से देखेंगे तो यह बात आप पर प्रगट होजावेगी कि गुरुप्रणाली कैसी भ्रष्ट होरहीहै। संस्कृतविद्या के अभाव से गुरु शिष्य का सम्बन्ध कैसा बिगड़ रहाहै। गुरु में शिष्यों की कैसी अरुचि होरहीहै। कोई तो कहताहै कि मैं [बी० ए०) (एम० ए०) B. A. M. A. पासकर प्रोफ़ेसर बन इन भोले भाले सीधे सादे ब्राह्मण साधुओं को क्यों गुरु बनाऊं? कोई कहता है कि इन मूर्खों मुफ्तख़ोरों को अपना गुरु बना व्यर्थ प्रति वर्ष क्यों द्रव्य की हानि करूं? शेकहैन्ड (Shake hand) करना छोड़ इन असभ्यों के सामने क्यों दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका अपने को भी असभ्य बनाऊं। प्रिय सज्जनो! इनही में कितनों की तो यह दुर्दशा है कि यदि कानों से यह सुना कि गतवर्ष में आगरे की रहनेवाली जोहरा नाम की वेश्याने "जो फाग के महीने में होली के उत्सव के समय ठुमरियां उड़ाईथी" आज फिर यहां आने के निमित्त तार भेजाहै तो चट अपना टन्डम, बग्गी, चौकड़ी लिये स्टेशन पर जा, अपने पार्श्वमें बैठाल, अपने घर पर ला, दोमहले तिमहले कोठे पर लेजा मस्नद तकियों पर बैठालें औ भोजन के समय रुपये का दो सेर वाला बासमती चावल, दूध, दही, खोआ, मिठाई, मलाई, किशमिश, बादाम, मुनक्का, छोहाड़ा, अख़रोट, चलगोज़ा, सेब, नाशपाती, अंगूर, पान, इलाइची, केसर, कस्तूरी इत्यादि वस्तुओं को ले उसके सामने रखें और क्षण क्षण, घण्टे घण्टे यह पूछें कि "हुजूर को किसी प्रकार की

तकलीफ़ (कष्ट) तो नहीं है " ।

प्रिय सभासदगण ! देखिये तो सही कि वेश्याओंकी का तो यह सन्मान और जो वहीं साहब कहीं यह सुनें कि गतवर्ष जो गुरुमहाराज आकर पैसे ठगलेगयेथे आज फिर उनके प-धारने का तार आया है तो सुनते के साथ आप सिर से पांव तक जलभुन जावें औ मारे क्रोध के जो कागज़ (पत्र) लिखरहेहैं उठा-कर टेब्ल पर देमारें और यह कहना आरंभ करदें कि मैं जानता तो ऐसे लोभी गुरु से शिष्य नहीं होता, इसने तो प्रतिवर्ष विदाई (रुख-सताना) के निमित्त जानमारडाला, ईश्वर शीघ्र इनको स्वर्गलोक भी नहीं भेजदेता कि इस कष्ट से जान बचे ! प्यारे श्रोतागण ! गुरु क्या आते हैं कि मानो बम्बई का प्लेग आरहाहै । सवारी तो कौन भेजताहै बेचारे गुरुमहाराज एक बिछावन की मोटरी बग़ल में दाबे पैर घसीटते द्वार पर जयजयकार मनाते सामनेसे आनपहुंचे तो बाबूसाहबने बड़ी कठिनता से आंखें उठाकर देखी औ मनमलीन होकर मस्तक को आकाश की ओर उठा बोले " गुरुजी पालागूं " अथवा " हं । हं ॥ हं ॥। नमस्कार गुरुबाबा नमस्कार " । आगे एतना कह झट् अपने भृत्य को बोलाया " अरे फोचैया " यहां आ ! देख वह जो भेड़ों (मेढ़ों) का बथान + है जहां बकरियां छेरियां (अजा) इत्यादि ले-ड़ियां कियेहोंगी स्वच्छ कर थोड़ा चौकादे अर्थात लीपलापकर बाबा महाराज का आसन दिलादे । जब भोजन का समय आया तब आपने यह आज्ञादी कि देख वह चावल जो उसदिन भण्डार से अलग कर रखदियाथा वह कहां है ? ।

फोचैया— बाबूसाहब कौन चावल ?

+ जिस स्थान में भेड़, बकरें, गाय, बैल इत्यादि बांधेजातेहैं उसे हमारे ठेठ हिन्दी में बथान कहतेहैं अर्थात मेषशाला, गोशाला इत्यादि

बाबूसाहब— (समीप में बोलाकर हौले कुछ मुंह बनाकर) अरे कम्बख्ती का मारा तू नहीं जानता वह जो भण्डार में देखागयाथा कुछ उसमें सड़बड़ गयेथे औ एकआध पिल्लू (कीट) पड़े जान पड़तेथे ।

फांचैया— हां बाबूसाहब ! ठीक वह तो निकम्मा समझकर भण्डार के नीचे एकओर रखदियाथा, एक दिन कोई कहताथा कि उसमें कुत्ते ने मुंह लगादिया है वह तो बाबाजी के काम का नहीं है ।

बाबूसाहब— अरे हरामजादा तू तो बड़ा पण्डित बनाहै कहताहै " कुत्ते ने मुंहलगादिया बाबाजी के काम का नहीं । " अबे कुत्ता क्या जीव नहीं है, मुंहलगाने से क्या हुआ, जा महाराज को देदे उनसे ये सब बातें नहीं कहना ।

प्रिय सज्जनो ! कोई भक्तजन बाबूसाहब के समीप बैठाथा बोलउठा " बाबूजी वह जो वेश्या गतवर्ष में आईथी उसके लिये तो आप ने रुपये के दो सेर का चावल भेजा था औ श्री गुरुमहाराज के निमित्त ऐसा अपवित्र पिल्लू पड़ाहुआ क्यों ? ' यह सुन बाबूसाहब झुंझलाये औ बोले " अजी तुमभी निरे मूर्ख जाहिलजपट्ट जानपड़तेहो तुम नहीं जानते कि मेरे गुरुमहाराज वेदान्तशास्त्र में निपुण बहुत बड़े सिद्ध परमहंस हैं, उनकी दृष्टि में जैसा चावल वैसा पिल्लू, जैसा लोहा वैसा सोना, जैसा गाय वैसी हथिनी, जैसा कुत्ता वैसा बकरा, जैसा स्वपच (डोमरा) वैसा विद्वान ब्राह्मण सब एकरस औ एक समान हैं। लो यह भगवद्गीता का श्लोक सुनो औ इसका अर्थ किसी पण्डितजी से जाकर पूछलो जो मैं कहताहूं वही है अथवा कुछ और ।

श्लोक— विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः ॥ भगवद्गीता अध्याय ५ श्लोक १८।

यह सुन उस भक्त ने एक ठट्ठाका लगाई औ यह कहतेहुए चलदिया "वाह बाबूसाहब आपकी बुद्धि भी धन्य है कीजिये जैसी इच्छा हो वैसी कीजिये"।

प्रिय सभासदवृन्द ! कोई समय ऐसा था कि भारतनिवासी सवेर बिछावन से उठतेही यह मंत्र पढ़ गुरुमहाराज को ध्यान में नमस्कार करतेथे ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अर्थात् चर अचर सकल चेतन जड़ पदार्थ जिससे व्याप्त है उस अखण्डमण्डलाकार पद को अर्थात् खण्डरहित समष्टिरूप जगदाधार परब्रह्म को जिसने दर्शायाहै ऐसे श्रीगुरुमहाराज को मेरा नमस्कार है ।

यह श्लोक सुनकर हमारे सभासदों में कितनों को यह शङ्का उत्पन्न हुईहोगी कि ब्रह्म को अखण्ड क्यों कहा ? हमलोगों ने तो नीचे लिखे प्रमाणों के अनुसार यह सुनाहै कि यह सम्पूर्ण जगत उस ब्रह्म के अंश सेही उत्पन्न है फिर वह अखण्ड कैसे ? प्रमाण—

"पादोऽस्या विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" यजुर्वेद अध्याय १३ ।

जिसका अर्थ सायनाचार्य ने यों कियाहै—

अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणि जातानि पादश्चतुर्थांशः अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपममृतं विनाशरहितं सदैव चेतनात्मकं स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः ॥

जिसका भाषा में अर्थ यह है कि विश्वाभूतानि इस विश्व में तीनों काल में उत्पन्न होनेवाले जीव इस पुरुष अर्थात् परब्रह्म के एकपाद में स्थित हैं औ शेष तीन पाद जो (अमृत) अर्थात् विनाश रहित है सो उसके अपने प्रकाशरूप में स्थित है।

फिर भाषा में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी ।
चेतन अमल सहज सुखराशी ॥

तात्पर्य यह कि उक्त प्रमाणों से उस ब्रह्म का खण्ड होजाना सिद्ध होता है फिर गुरु स्तुति के श्लोक में " अखण्ड मण्डलाकारं " क्यों कहा ? इन दोनों में परस्पर विरोध देख पड़ताहै क्योंकि एक से अखण्ड और दूसरे से सखण्ड होना सिद्ध होताहै ।

उत्तर इसका यह है कि उस ब्रह्म का खण्ड ऐसा नहीं समझनाचाहिये जैसा किसी बड़े कपड़े के थान को किसी कर्तरिका (कैंची) से काटकर टोपियां बनालेतेहैं, यदि ऐसा होता तो अनादि काल से ये चौरासीलक्ष जीवरूप टोपियां उस ब्रह्मरूप थान से बनतीआतीहैं औ अनन्त कालतक बनतीहीजावेंगी तो एवम्प्रकार खण्ड होते २ किसी समय सब जीवही जीव बनजावेंगे, ब्रह्म का अभाव होजावेगा, अथवा यदि यह कहाजावे कि ब्रह्म बहुत बड़ा है उसका अभाव नहीं होसकता तो कट २ कर जीव बनने से

बड़े से छोटा तो अवश्य होजावेगा किन्तु ऐसा तीन काल में भी नहीं होता, वह ब्रह्म तो सदा एक रस रहताहै इसकारण कुछ ऐसा प्रमाण देनाचाहिये जिससे इन जीवों का ब्रह्म का अंश होना भी सिद्ध हो औ ब्रह्म अखण्ड भी रहे — लीजिये प्रथम एक उत्तम उदाहरण लीजिये —

देखिये यह जो आप के सामने लैम्प (दीपक) जलरहाहै इसकी ज्योतिषाकार लौ की ओर दृष्टि किजिये— "प्रथम आप इस लौ की लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई, को नापकर अपने ध्यान में रखलीजिये कि यह इतना इञ्च अथवा इतना अंगुल लम्बी चौड़ी है, फिर इसके समीप अपना हाथ रख इसके ताप का अनुभव करलीजिये कि कहांतक इसकी गर्मी है, और किसी अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) लेख को इसके आगे रख अक्षरों की स्वच्छता देख अनुमान करलीजिये कि इसका प्रकाश कितना है," तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल की मोमबत्तियों को एकत्र कर एक २ को इस लौ में लगातेजाइये, थोड़ी देर में आप देखेंगे कि इसी एक लौ से हजारों लौ निकलतीचलीगयीं किन्तु उस एक लौ में न डौल की न ताप की न तेज की कुछभी कमती हुई वरु ज्यों की त्यों रही— इसीप्रकार उस ब्रह्म तेजोमयको एक विशाल लौ के समान मानिये और यों कहलीजिये कि इस विश्व के चराचर उसी एक से उत्पन्न हो फिर उसी में लय होतेजातेहैं किन्तु उसमें न्यूनाधिक्य कुछ भी नहीं होता वह सदा एकरस रहताहै ॥

सुनिये श्रुति क्या कहतीहै—

ॐ यथासुदीप्तात्पावकात्सहस्रशो विस्फुलिङ्गाः प्रभवन्ते
तथाऽक्षरात्सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥

जैसे जलतीहुई आग से सहस्रों विस्फुलिङ्ग अर्थात् चिनगारियां

निकलकर इधर उधर चारोंओर फैलजातीहैं तैसेही हे सौम्य उस अक्षर अर्थात् अविनाशी ब्रह्म से सब जीव उत्पन्न होतेहैं और फिर उसी में लय होजातेहैं— अब मैं आशा करताहूं कि मेरे " अखण्ड-मण्डलाकारं " श्लोक पढ़ने के समय जो सभासदों को शङ्का ब्रह्म के अखण्ड सखण्ड होने के विषे उत्पन्न हुईथी अवश्य निवृत्त होगयीहोगी ॥

चलिये अब अपने विषय की ओर चलें । हमारे सभासद भलीभांति विचारेंगे कि किसी समय इसी अखण्डमण्डलाकारं को पढ़कर एक २ प्राणी बिछावन से उठतेही गुरु की स्तुति करताथा, आज उस स्तुति की क्या दुर्दशा होरहीहै और उसका अर्थ कैसा भ्रष्ट होरहाहै ।

अब तो उक्त स्तुति का अर्थ यह होरहाहै कि " मण्डलाकारं " जो गोलमोल साढ़े दसमाशा का रुपया वह भी कैसा कि अखण्ड अर्थात् टूटकर जिसकी अठन्नी, चौअन्नी, दुअन्नी, न होगयीहो पूर्ण सोलहआने हो तत्पदं उसके पद को अर्थात् चरणको जो दर्शन करावे वही गुरु है, अर्थात् जो द्रव्यदेवे वही गुरुहै । इस समय सैकड़ों मत ऐसे निकलेहैं जिनके आचार्य द्रव्य देदेकर अपना चेला मूंड डालतेहैं और हमारे बिस्तर शिष्य भी द्रव्य के लोभ से एक धर्म को छोड़ दूसरे धर्म में घुसतेचलेजातेहैं मानों रिकाबिया धर्म फैलरहाहै— कहावत है कि " जिसका खाइये उसका गाइये, " इसकारण देखाजाताहै कि गुरु की ओर शिष्यों की कैसी कुरुचि होरहीहै ।

प्रिय सभासदगण ! मैं केवल शिष्योंही को दोषी बना एकतरफ़ा डिगरी नहीं देता, वरु गुरुमहाराज की भी वही दशा है कि आप वर्ष में एकबार चेलों का घर ढूढते जयजयकार मनाते आनपहुंचे चेलों ने कुछ सत्कार किया न किया इसकी आपको कुछ चिन्ता नहीं, आपने यह भी कुछ न विचारा कि मेरे शिष्य कुछ ब्रह्मतत्त्व के जाननेवाले अथवा सन्ध्यादि क्रिया के वेत्ता हैं वा नहीं, आपने तो यह निश्चय

करलिया, चेले चाहे नरक जावें, अधोगति को प्राप्त क्यों नहीं, मेरा वार्षिक कर [बाकी मालगुजारी] [rent in arrears] वसूल होता जावे मैं एकट्ठे कर बांधबूंध अपने मठ की ओर सिधारूं ॥

जैसे गुरु वैसही चेला,
दोनों नरक में ठेलमठेला
गुरु शिष अन्धबधिर का लेखा
एक न सुनै एक नहि देखा

फारसीवालों ने कहा है कि :—

آنکس که خود گم ست کرا رهبري کند

आंकस कि ख़ुद गुमस्त किरा रहबरी कुनद

अर्थात जो प्राणी स्वयं भूलाहुआहै वह दूसरों को क्या मार्ग बतलासकताहै ।

प्रिय श्रोतृगण ! किसी पुरुष के नेत्रों में यह रोग था कि एक वस्तु दो दीखातीथी वह किसी उत्तम वैद्य को ढूंढ़ताहुआ एक वैद्यजी के घर पहुंचा, वैद्यजी घर के भीतर थे उसने उनके भृत्य द्वारा अपने रोग का सारा वृत्तान्त कहला भेजा, वैद्यजी ने आज्ञा दी "बैठक में बैठने कहो मैं अभी आया"। थोड़ी देर के पश्चात् वैद्यजी एक चश्मा लगाये द्वार पर आये वह एकही पुरुष वहां अकेला बैठाथा किन्तु आपने आतेही पूछा कि कहो साहब तुम जो चार बैठेहो इन चारों में यह रोग किसको है ? रोगी ने पूछा महाशय कौन चार ? वैद्यजी ने हाथ उठा अंगुलियों से बताया कि ये जो चार मेरे सन्मुख बैठे हैं । यह सुन रोगी उठ खड़ाहुआ औ बोला महाशय दण्डवत् लीजिये मैं अपने घर जाताहूं । वैद्यजी ने कहा क्यों ? उस पुरुष ने

उत्तर दिया कि मुझे तो एक के दोही सूझतेहैं औ आपको एक के चार फिर जब आप अपने को रोग से मुक्त नहीं करसकते तो मुझे क्या करेंगे। इतना कहताहुआ वैद्यजी को वार २ दण्डवत करताहुआ चलागया ॥

इसलिये प्रिय सभासदो! गुरु वे नहीं हैं जिनको पीली धोती के जोड़ों औ रुपयों से कामहै गुरु तो वेहीहैं जो शिष्य के हृदय के अन्धकार को नाशकर उस परमप्रकाश को आगे प्रगटकर देखलावें।

किसी ने कहाहै कि — गुरु तो ऐसा चाहिये जस सैकलअर होय। सकल दिनन का मूरचा पल में डारे खोय ॥ जो ऐसे गुरु हैं उनके विषे तो यों कहागयाहै कि, गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः+ साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ अर्थात गुरुही ब्रह्माहैं, गुरुही विष्णु हैं औ गुरुही देव महेश्वर हैं इतनाही नहीं किन्तु गुरु साक्षात परब्रह्म हैं इसकारण श्री गुरुदेव को मेरा बारंबार नमस्कार है। लीजिये और सुनिये :—

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः।

अर्थात् " ग " से सर्वप्रकार की सिद्धियों का देनेवाला, " र " से सर्वप्रकार के पापों का हरनेवाला और " उ " से अव्यक्त विष्णु ऐसे जो त्रितयात्मक गुरु हैं वे सब से परे हैं अथवा सब से श्रेष्ठ हैं। फिर गुरु महाराज कैसे हैं कि —

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया

+ गुरुः— गृणाति उपदिशति वेदान् अथवा गीर्य्यते स्तूयते महत्त्वात्। गॄ + " कृग्रोरुच " उणादि। १। २४। इति उत्॥

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः

अर्थात् जो प्राणी अज्ञानतारूप अन्धकार से अन्धा होरहाहै उसके हृदय के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की शलाका [सलाई] से जिसके द्वारा खोलदियेजावें ऐसे श्रीगुरुमहाराज के लिये बारम्बार नमस्कार है। इसी तात्पर्य्य को गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहाहै कि —

गुरुपदरज मृदुमंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन॥

प्रिय सभासदो! इसप्रकार के जो गुरु हैं, अर्थात् जो शिष्य को भवसागर के गम्भीर धार से बचाकर श्यामसुन्दर के चरणों से मिलादेतेहैं वे साक्षात हरि हैं, केवल जीवों के कल्याण निमित्त नररूप धारण कर इस पृथ्वीतल पर विचरतेहैं, ऐसेही गुरु की बन्दना श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में यों की है —

वन्दौं गुरुपद कंज कृपासिन्धु नररूप हरि
महामोह तमपुंज जासु वचन रविकर निकर॥

अर्थात श्री गुरुमहाराज के चरणकमल की वन्दना करताहूं जो कृपा के समुद्र हैं औ इन चर्मचक्षुओं से देखने में तो नररूप हैं किन्तु यथार्थ में साक्षात् हरि हैं अथवा साक्षात् स्वयं हरि नररूप धारण कर विचररहेहैं, जिनके वचन अर्थात प्रेमयुक्त अमृतमय उपदेश महामोहरूप अन्धकारराशि को नाश करदेने में सूर्य की प्रचण्ड किरनों के समान हैं। यहां नरहरि शब्द को गुप्तरीति से कहाहै।

प्रिय श्रोतृगण! उत्तम शिष्य भी वही है जिसने अपना तन, मन, धन, सब श्री गुरुमहाराज के चरणों में अर्पण कररक्खाहै जो अहर्निश गुरु की सेवा में तत्पर रहताहै औ उनकी सर्वप्रकार की आज्ञा विना अपने किसी स्वार्थ के विचार अन्तःकरण से प्रतिपालन करताहै,

श्रीरघुवंश का वचन है कि — "आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया" गुरुओं की आज्ञा कैसी भी क्यों नहो अविचारणीया है अर्थात् विना विचार करने के योग्य है।

फिर फारसीवालों ने भी लिखाहै कि —

بمی سجادہ رنگین کن گرت پیر مغان گوید
کہ سالک بے خبر نبود زراہ و رسم منزلہا

बमै सज्जादा रंगीं कुन गरत् पीरे मगां गोयद
कि सालिक बेखबर नबवद ज़ि राहोरस्म मनज़िलहा

अर्थात हे शिष्य! यदि गुरुदेव तुझको यह आज्ञा देवे कि तू अपनी पूजा के कुशासन को मद्य से भिगोडाल तो तू विना किसी विचार के झट् भिगोदे क्योंकि जो मार्ग का जाननेवाला है वह मार्ग की रीति भांति से अजान नहीं रहता, न जाने ऐसा करने में क्या तात्पर्य्य सिद्ध हो। फिर जब २ शिष्य गुरुदेव की सेवा में मुमुक्षु होकर किसी शिक्षा के निमित्त जावे तब २ इसप्रकार नम्र होकर वचन उच्चारण करे जैसा कि अर्जुन ने श्री कृष्णचन्द्र के प्रति कहाहै "शिष्यस्तेहं साधि मां त्वां प्रपन्नं" मैं आप का शिष्य हूं आपके शरण प्राप्तहूं आप मुझे शासन कीजिये अर्थात् जिसप्रकार मेरा सर्व कल्याण हो वैसी शिक्षा मुझे दीजिये।

प्रिय श्रोतृगण! भलीभांति विचारेंगे कि अब इस नवीन प्रकाश के समय ऐसे गुरु औ शिष्य कितने हैं, क्या इस गुरु प्रणाली के इसप्रकार भ्रष्टहोजाने पर आप सज्जनों को शोक का अश्रु बहाने में कुछ शंका भी है? कदापि नहीं! जितने विचारशील औ धर्मात्मा इस सभाभूमि में बैठेहैं उनके कलेजे अवश्य इस वृत्तान्त को समझ चूर २

होजावेंगे औ वे एक जिह्वा होकर यही उच्चारण करेंगे कि हा ! हे जगत रक्षक ! रक्ष ! रक्ष !!

क्या धर्मात्मा मण्डली यह नहीं जानतीहै कि प्राणी कैसा भी मूर्ख क्यों नहो, कैसे भी कुसंग में क्यों न पड़ाहो, कैसी भी आपत्ति में क्यों न फंसाहो, कैसा भी दरिद्रता उसे क्यों न सतारहीहो, कैसा भी अनाथ क्यों न होरहाहो, जिसी क्षण उसे श्री गुरुदेव के चरणों का आश्रय मिलेगा उसी क्षण सर्वप्रकार के क्लेशों से पारहो भवसागर के घोर धार को काट उस सच्चिदानन्द आनन्दघन से जामिलेगा ।

प्रिय सज्जनो ! अब मैं एक उदाहरण इसप्रकार का आपको श्रवण कराताहूं जिससे यह प्रगट होजावेगा कि अधम से अधम प्राणी भी श्रीगुरुदेव की कृपा से परमपद को प्राप्त होजाताहै औ इसलोक में भी बहुत बड़े महत्त्व को लाभकरताहै आप सर्व सज्जन एकाग्रचित्त हो प्रेमपूर्वक श्रवण करें ।

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज को गुरुदेव की प्राप्ति से परमपद औ परम महत्त्व का लाभहोना

भारत के मध्यप्रदेश में जिला बांदा के अन्तर्गत एक ग्राम राजापुर † नाम करके प्रसिद्ध है यहां एक ब्रह्मकुलभूषण श्रीअम्बादत्त शर्म्मा * निवासकरतेथे आपकी प्रिय पत्नी श्रीमती हुलसीदेवी के गर्भ से श्री तुलसीदासजी महाराज ने जन्म लिया, यह अम्बादत्तशर्म्मा

---

† कोई २ द्वावे में ताड़ी नामक ग्राम औ कोई २ चित्रकूट के समीप हाजीपुर भी बतातेहै ।

* कोई २ आपका नाम आत्माराम शुक्ल, दूबे भी कहतेहै ।

मुसलमानों के समय दिल्लीपति बादशाह के यहां किसी श्रेष्ठ अधिकार पर नियत थे कोई कहताहै कि दिल्लीपति के दीवान थे जोहो जब श्री तुलसीदासजी महाराज अबोध बालकही थे तबही श्री अम्बादत्त ने अपना शरीर त्याग किया, पितृहीन बालक होने के कारण हुलसी माता ने बड़े लाड़प्यार से आपका पालनपोषण किया, इसकारण आप ने कुछ पढ़ालिखा नहीं आपके लिये काले २ अक्षर भैंस के बराबर थे जब आप युवाहुए मैया ने आपका व्याह करदिया, आपकी धर्मपत्नी का नाम ममतादेवी× था यह अत्यन्त सुन्दर थी इसकारण जबसे व्याह हुआ आप दिनरात इसी के समीप बैठेरहतेथे क्षणमात्र भी बिलगहोना नहींचाहतेथे एवम्प्रकार जब कई वर्ष व्यतीत होगये, मैया ने विचारा कि यह तो घर का कोई काज नहीं करता अहर्निश स्त्री के समीप बैठारहताहै तब एक दिन समीप बोलाकर बड़े प्यार से कहा "बेटा! तुम्हारे पिता का उपार्जन कियाहुआ धन तुम्हारे पालनपोषण औ व्याह इत्यादि में व्यय होगया अब घर में द्रव्य की बहुत कमती होगयीहै यदि अब परिश्रमकर कुछ उपार्जन नकरोगे तो हमलोगों का कैसे निर्वाह होगा उचित है कि कहीं बाहर जाकर कुछ उपार्जन करो" मैया की यह बात आपको अच्छी न लगी क्योंकि आप स्त्री के प्रेम में फस ऐसा मत्त होरहेथे कि और किसी बात की ओर आप का ध्यानही न था किसीप्रकार के हानिलाभ की कोई चिन्ताही न थी आपने बड़ी ढिठाई और निर्लज्जता के साथ यह उत्तर दिया, "मैया चाहे द्रव्य घर में हो वा नहो, दुखहो वा सुख हो, भोजन मिले वा न मिले, दो सन्ध्याओं में एकबार भी सागसत्तू कच्चा पक्का कुछ मिलजावेगा खाकर दिन काटूंगा किन्तु स्त्री को छोड़ घर से बाहर तो कदापि नहींजाऊंगा"

× कोई २ इसका नाम रत्नावली भी कहतेहैं यह दीनबन्धु पाठक की कन्या थी।

यह वचन सुन मैया चुपहोरही कुछ न कहसकी, संयोगवशात एकदिन आपके श्वशुरगृह (ससुराल) से कई मनुष्य एक डोला लिये आन-पहुंचे और हुलसीमैया से यह कहा कि ममतादेवी के माता पिता को उसके देखे बहुत दिन होगयेहैं इसकारण उनलोगों ने बड़ी दीनता के साथ यों प्रार्थना की है कि यदि आप कृपाकर कुछदिनों के लिये उसे अपने मैके विदा करदें तो हमलोग आप के बड़े कृतज्ञ होंगे, यह सुन हुलसीमाता ने तो बड़े आनन्द के साथ विदाकरदेना स्वीकार करलिया किन्तु जब यह बात तुलसीदासजी के श्रवण में पहुंची सु-नतेही व्याकुल हो हाथ में एक लठ लिये बाहर निकले औ उन मनुष्यों को देख झुंझलाकर कुछ नर्म गर्म बातें सुनाई औ यों बोले कि तुमलोग सब के सब एकदम मेरे द्वार से चलेजाओ, तुमलोगों का क्या अधिकार है कि बिना मेरी आज्ञा के मेरी स्त्री को विदाकर लेजाओगे। ऐसी बात सुन वे सब के सब घबड़ाये औ नम्र हो बोले " जैसी आज्ञा " इतना कह सब के सब द्वार से हटगये। जब तुलसीदासजी फिर घर के भीतर चलगये, मैया ने उन मनुष्यों को लौटाकर बड़ी दीनता के साथ यह बात कही —भाइयो ! तुलसी ने जो कुछ आपलोगों को बुरी भली कही है क्षमा करना, वह कुछ दिनों से न जाने क्या कुछ उन्मत्तसा होरहाहै आपलोग किसीप्रकार उदास नहों, इस मेरे घर के पीछे एक बड़ का वृक्ष है आज आपलोग उसी की शीतल छाया में निवास करें कल प्रातःकालही जब तुलसी स्नानादि के निमित्त बाहर नदी के तटपर जावेगा मैं चुपके से आप के डोले में उसे सवार करा-दूंगी, आप शीघ्रता के साथ उसे लेजाना।

प्रिय सभासदो ! ऐसाही हुआ। दूसरे दिन जैसे तुलसीदासजी स्नानादि क्रिया के निमित्त बाहर गये मैया ने ममतादेवी को मैके भेजदी जब आप लौट घर में आये आतेही ममतादेवी को ढूंढा जब घर में

कहीं न पाया पाकशाला के भीतर चूल्हे के समीप देखनेगये जब वहां भी न पाया तब दौड़ेहुए अत्यन्त व्याकुलता के साथ मैया के समीप जापूछा— मेरी प्राणप्यारी ममता किधर गयी क्याहुई ? मैयाने मैके जाने का वृत्तान्त कहसुनाया । सुनतेही आप उसीप्रकार नंग धड़ंग जैसे स्नान से लौटे थे सीधे अपने श्वशुरगृह [ससुराल] को चले ।

प्यारे सज्जनो ! तुलसी के मस्तक पर न टोपी है न पगड़ीहै, शरीर में एक कुरता तक भी नहीं, कटि में दोहाथ का अंगोछा × लपेटेहुए, पांव विना पनही धूल में घसीटते स्त्री के स्वरूप में ध्यान लगाये ससुराल की ओर चलेजारहेहैं, चलते २ जब ससुराल के द्वारपर पहुंचे आप के श्वशुर औ श्याला द्वार पर बैठेथे आपकी ऐसी दशा देख घबड़ाये और कुछ चिन्ताग्रस्त हो यों मनहीमन विचारनेलगे कि हा नहो जानपड़ताहै कि आप की माता हुलसीदेवी जो अत्यन्त वृद्धा थीं कदाचित्त शान्त होगईं उनका दाहकर्म कर आप यहां चलेआरहेहैं क्योंकि वहां घर में और कोई है नहीं, ऐसा अनुमान कर वे आंखों में आंसु भर तुलसीदासजी को यों समझाने लगे “ जाने दीजिये आप किसीप्रकार की चिन्ता न कीजिये यह शरीर नश्वर है इसे एक दिन सब छोड़जातेहैं, जो जन्माहै वह अवश्य एक दिन मरताहीहै ” उनकी ये बातें श्रवण कर तुलसीदासजी ने यह समझा कि मेरी स्त्री ममता देवी जो अत्यन्त कोमलगात थी मार्ग में तापलगने के कारण कुछ रुग्न हो शान्त होगयी इसकारण ये मुझे यों समझारहेहैं। ऐसा अनुमान करतेही आप भी उनके साथ रोनेलगे, यथार्थ कारण रोने का कोई किसी से नहीं पूछता, जब तुलसीदासजी अधिक अधीर हो उच्चस्वर

× इस देश की यह रीति है कि जब स्नान करने जातेहैं तब स्नान के पश्चात् प्रायः एक अंगोछा कटि में लपेट घर लौटतेहैं फिर घर में पहुंचकर दूसरा धौतवस्त्र धारण करतेहैं ।

से रुदन करनेलगे औ आप के रोने की ध्वनि घर के भीतर ममतादेवी के कर्णों में पहुंची उसने अपने लौंडी से पूछा " द्वार पर यह कैसा कोलाहल है " ? उस लौंडी ने उत्तर दिया " आप के स्वामी नंग धड़ंग अभी आनपहुंचेहैं जानपड़ताहै कि उनही के रुदन का शब्द है " यह सुनतेही ममतादेवी समझगयी कि मेरा भर्ता मेरे पीछे दौड़ा चलाआयाहै, झट् उस लौंडी से कहा तू द्वार पर जा पिताजी से यों कहदे कि कुछ दिनों से मेरे भर्ता का चित्त बिगड़गयाहै, मस्तिष्क गर्म होगयाहै, कभी २ कुछ उन्माद सा होजाताहै, कभी हंसतेहैं कभी रोते हैं, जहां जी में आताहै वहां चलेजातेहैं । जब लौंड़ी ने द्वार पर जा यह बात ममता के पिता से कहदी तब सब के सब शान्त हुए औ तुलसीदास जी को भी यह कहकर शान्त किया कि यहां सर्वप्रकार मङ्गल है आप किसीप्रकार की चिन्ता न करें । फिर स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहना थोड़ी देर के पश्चात् जब रात्रि हुई भोजन करा घर में जाने की आज्ञा दी आप मनही मन प्रसन्न होते ममतादेवी के द्वारपर आ घर में प्रवेश कियाही चाहतेथे, एक पांव देहली की चौखट के भीतर ओ एक बाहरही था कि ममता ने आंख भौं चढा इसप्रकार धिक्कारा " हे स्वामिन् ! धिक् २ भला सुनो तो सही !

को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः

घोर नरक क्या है ? यह जो अपना देह । विचारो तो सही कि यह मेरा अपवित्र शरीर जिसमें मल, मूत्र, कफ, पित्त, रुधिर, मांस, मज्जा इत्यादि भरेहैं क्या घोर नरक के सदृश नहीं है ? फिर हे स्वामिन् ! तुम्हारा यह स्नेह 'जो इस अपवित्र पिण्ड में इसप्रकार है कि आज तुमने अपनी औ मेरी दोनों की लज्जा गंवा दोनों को निर्लज्ज करदिया लोकलाज को चूल्हे में धरदिया' यदि दशरथनन्दन रघुकुलचन्दन के चरणार-

बिन्दों से होता जिन चरणों की छवि को कोटान्कोट अंश करने से एक अंश भी मेरे मुंह में नहींहै तो हे स्वामिन्! तुम्हारे कई पीढ़ियों का उद्धार होजाता। स्वामिन्! शोक है पश्चाताप है कि तुम व्यर्थ मुझ में स्नेह कर लोक में हंसी औ परलोक की हानि कररहेहो। जो हुआ अच्छा हुआ अब भी चेत करो। देखो! अपने को संभालो! ब्रह्मवंश का नाम पानी में न बहाओ!

प्रिय श्रोतृगण! 'उरप्रेरक रघुवंश विभूषण' वह रघुकुल भूषण सबों के हृदय का प्रेरक है जब उसने यह देखा कि ऐसा उत्तम प्रेम जिसमें लोककाज की भी कुछ चिन्ता नहीं तुलसी के हृदय में प्राप्त है तो उसी स्त्रीही के मुख से ऐसी बातें प्रेरणाकर कहलादी कि यह प्रेम मेरी ओर लगजावे क्योंकि जिस मोटी जेवरी से हाथी बांधा जासकताहो उससे छेरी को बांधना मूर्खता है, इसकारण यह उत्तम प्रेम स्त्री के योग्य नहीं यह मेरे योग्य है।

जैसे तुलसीदासजी ने स्त्री के मुख से ऐसी कठोर बातें सुनी वहांही देहली पर खड़े विचारनेलगे कि सच है देखो तो भला, मैंने इतना स्नेह इस अधम स्त्री से क्यों किया जो ऐसी निठुर औ प्रेमरहित बज्र हृदय देखपड़तीहै। कैसा आश्चर्य्य है कि मैं तो इसके प्रेम में नंगे पांव नंगे शरीर सर्व लोककाज परित्याग कर इस ताप में इसके पीछे २ दौड़ा चलाआया, औ यह मुझे देखतेही जल भुन गयी औ नर्म गर्म बातें कहनी आरंभ करदी, धिक्कार है मेरे ऐसे प्रेम को औ ऐसे प्रेमपात्र को। सचहै इस संसार में जितने हैं सब स्वार्थी हैं सब अपने अर्थ के ही निमित्त मिथ्या स्नेह के देखानेवाले हैं। रे मन मूर्ख विचार तो सही। इस स्त्री की मेरे यहां आने से किसीप्रकार की ऐसी हानि नहीं हुई, लोककाज में धब्बामात्र लगने की कुछ थोड़ी शंकाही होती थी किन्तु यह इतना भी संभाल न सकी औ यों झुंझलाकर ऐसे प्रि-

कारा। चलो अब इसका स्नेह छोड़ो. अब उसी सच्चिदानन्द आनन्द-घन श्यामसुन्दर कौशलकिशोर से स्नेह करो जो जीवों का सच्चा स्नेही है, जो केवल शुद्ध प्रेम से बांधाजाताहै।

ऐसा विचार देहली से उलटे पांव फिरे, और सब छोड़ घर से बाहर निकल यह विचारनेलगे कि विना सच्चगुरु के स्वयं इस पारलौकिक मार्ग का जानना कठिन है इसकारण प्रथम गुरुमहाराज को ढूंढ़ना चाहिये। फिर चिन्ता करनेलगे कि किधर जाऊं ? किससे कहूं ? सच्चागुरु कहां पाऊं ? थोड़ी देर के पश्चात यह जी में आया कि काशी महात्माओं का निवासस्थान है चलो वहांही चलूं, रघुनाथ की कृपा होगी तो कहीं न कहीं कोई गुरु मिलही रहेगा।

ऐसा विचार आप काशी पहुंच मणिकर्णिकाकुण्ड के समीप श्रीगङ्गाजी के तट पर पड़रहे औ यही संकल्प करदिया कि जबलौं कोई गुरु न मिले तबलौं मेरे अन्न जल ग्रहण करने को धिकार है। ऐसे पड़े २ "हरे राम हरे राम" उच्चारण करते जब आप के कई दिवस बीतगये आप अत्यन्त दुर्बल होगये, अब बोला नहीं जाता, बड़े कष्ट से हरे राम उच्चारण करते गुरुप्राप्ति की इच्छा से विना अन्नजल ग्रहण किये मानो तप कररहेहैं। प्रिय सभासदो ! आप भी एकवार प्रेम में गद्गद हो सब एकस्वर से बोलें (हरेराम हरेराम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे) ॥

संयोगवशात श्रीनरहरिजीमहाराज जो उस समय काशी में प्रसिद्ध महात्मा थे गङ्गास्नान कियेहुए उस मार्ग पर आनपहुंचे, जैसे आप के कानों में हरे राम का शब्द पड़ा आप खड़ेहो विचारनेलगे. " कोई रघुनाथ का अत्यन्त प्रेमी मधुरस्वर से यह नाम उच्चारण कररहाहै किन्तु जानपड़ताहै कि उसपर कुछ प्रचण्ड क्लेश है इसकारण

पूर्णस्वर से उच्चारण नहीं करसकता " आप आहट लेते धीरे २ जब तुलसीदासजी के समीप आये आप को इनकी दशा देख दया उत्पन्न हुई आप त्रिकालदर्शी महात्मा थे तुलसीदासजी का मुख अवलोकन करतेही सारा वृत्तान्त समझगये औ यों समझानेलगे " बच्चा ! तू केवल अपनी स्त्री के थोड़े से कठोर वचन पर क्यों इतना उदास हुआ, बच्चा ! जा जा घर जा ! तेरी स्त्री तेरे वियोग में अब व्याकुल होरहीहै तुझे भी विना अन्न जल के इतना कष्ट होरहाहै, बेटा ! क्या स्त्री की बात की कोई इतना इर्ष्या करताहै । स्त्री तो अज्ञानी होतीहीहै उसकी बातपर इतना ध्यान नहीं देना, जा लौटजा "

जब तुलसीदासजी ने महात्मा के मुख से यह वचन श्रवण किया आप समझगये कि यह महात्मा त्रिकालदर्शी औ सर्वज्ञ जानपड़तेहैं क्योंकि विना कुछ कहेही मेरा सारा वृत्तान्त समझगये तो अब ऐसे महापुरुष के चरणों को छोड़ फिर घर की ओर क्यों लौटना ? मेरी तो मनोकामना परमात्मा अन्तर्यामी ने सिद्ध करदी कि बैठे बैठाये ऐसे महापुरुष को मेरे समीप भेजदिया, अब आशा है कि मेरा सर्व कल्याण हो ।

ऐसा विचार आपने झट नरहरिजीमहाराज के चरण पकड़ रुदनकरना आरंभ करदिया औ सिसक २ कर यों कहनेलगे, हे महात्मन् ! अब मैं, आप ऐसे दयासागर के चरणों को छोड़ गृह की ओर क्यों लौटूं ? औ अपने को संसार के घोरबन्धन से क्यों बांधूं । अब दयाकर मुझको अपनी सेवा में स्वीकार कियाजावे ॥

जब श्रीनरहरिजी ने सर्वप्रकार परीक्षाकर देखा कि अब यह घर लौटने की इच्छा नहीं करता तब अपने साथ ले अपने स्थान असीसंगम पर पहुंचे औ अपना शिष्य बना प्रथम वेद शास्त्रादिकों में

निपुण कर भजन करने के गुप्त रहस्यों को बतला मानों पूर्ण महात्मा बना दिया, अबतो श्रीतुलसीदासजी महाराज अपने भजन में ऐसे प्रवीण होगये कि अहर्निश उठते, बैठते, चलते, फिरते, श्रीरघुकुलचन्दन दशरथनन्दन के ध्यान में मग्न रहतेथे। थोड़े दिनों के पश्चात् जब आप के गुरु श्रीनरहरिजीमहाराज के समाधि लेने का समय आया, आप जानगये कि अब महाराज सदा के लिये समाधिस्थ होनेवालेहैं, ऐसा विचार आप अत्यन्त उदास हुए और महाराज से यों प्रार्थना की "भगवन्! अब मेरी क्या दशा होगी? मेरेलिये क्या आज्ञा होतीहै"? महाराज ने उत्तर दिया "बेटा! तू इसी स्थान में आनन्दपूर्वक रघुनाथ का भजन कियाकर वह दयासागर तुझको अवश्य दर्शन देवेगा" इतनी आज्ञा दे आप तो समाधिस्थ हुए औ श्रीतुलसीदासजी गुरुवचन में विश्वास कर अविद्या के घोर अन्धकार से छूट भजन में मग्न रहनेलगे॥

प्रिय सभासदो! आप के गुरु श्रीनरहरिजीमहाराज थे यह बात स्वयं आप के लेख से सिद्ध होतीहै, आपने अपने रामायण में गुरुदेव की वन्दना की है कि

वन्दौं गुरुपदकंज कृपासिन्धु नररूपहरि
महामोह तमपुंज जासु वचन रविकर निकर।

अर्थात मैं नरहरि रूप श्रीगुरुदेव के चरणकमलों की वन्दना करताहूं अथवा श्री गुरुदेव जो देखने में नर रूप हैं किन्तु यथार्थ में साक्षात् हरि ही हैं उनके चरणों की वन्दना करताहूं जिन के वचन महामोह रूप अन्धकार समूह को नाश करने में सूर्य की किरणों के समान हैं।

एवम्प्रकार कुछ काल भजन करते अकस्मात् आप के जी में

यह श्रद्धा उपजी कि रघुनन्दन के चरित्रों को गानकरूं क्योंकि भजन की रीतियों में एक सुन्दर रीति यह भी है, ऐसा विचार आपने रामायण रचना आरंभ करदिया, जब संस्कृत के उन श्लोकों को जो रामायण बालकाण्ड की आदि में हैं रचकर आगे बढ़ने की इच्छा की और विचारनेलगे कि ऐसे सुलभ संस्कृत में रचूं जिसे पढ़ वा सुनकर सर्वसाधारण लाभ उठावें तब एक रात्रि शयन करतेहुए आपने स्वप्न में शिव पार्वती को यों कहतेहुए देखा "बेटा तू हिन्दी भाषा में रामायण की रचना कर! जिसे पढ सब छोटे बड़ेको श्यामसुन्दर के भक्तिरस का लाभ हो।

इस स्वप्न के विषे स्वयं आप अपने रामायण बालकाण्ड के आरंभ में यह दोहा लिखतेहैं कि

सपनेहु सांचेहु मोहि पै जो हरगौरि पसाउ
तौ फुर होइ जो कहउं सब भाषा भणित प्रभाउ।

अर्थात यदि स्वप्न में सचमुच शिवपार्वती की प्रसन्नता मुझपर हुईहो तो जो कुछ मैं भाषा में कहताहूं उसके प्रभाव फुर अर्थात ठीक हों।

एवम्प्रकार आप नित्य रामायण की रचना में मग्न रहते। आपका नियम था कि नित्य एक छोटी डोंगी पर चढ़ गङ्गापार काशी के दूसरे किनारे बहिर्भूमि को जाते औ शौच के पश्चात् जो कुछ जल शेष रहजाता उसे एक वृक्ष के नीचे डालदियाकरते, उस वृक्ष पर एक पीशाच रहता था जो नित्य शौचजल पीने के कारण अत्यन्त प्रसन्न हुआ औ श्रीतुलसीदासजी से बोला "मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न हूं मांगो क्या मांगतेहो," यह सुनतेही आपने कहा "श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करादो," तब पीशाच बोला "मैं तो स्वयं अधम से अधम

गति को प्राप्त हूं मेरी सामर्थ्य इतनी कहां कि रघुनाथ का दर्शन करासकूं यदि कुछ धन इत्यादि की अभिलाषा हो तो मैं बतासकताहूं कि अमुक स्थान में अमुक वृक्ष के नीचे द्रव्य है जाकर लेलो " यह सुन आपने कहा भाई मेरा धन तो भक्तउरचन्दन दशरथनन्दन है, मैं तो उसे छोड़ और किसी धन इत्यादि तुच्छ पदार्थ की कामना नहीं रखता। फिर पिशाच बोला " तुमने मेरा बहुत उपकार कियाहै यदि मैं इसके पलटे तुम्हारा कुछ प्रत्युपकार न करूं तो न जाने और भी किस दुर्दशा को प्राप्त होऊंगा इसकारण मेरी इच्छा है कि तुम्हारे लिये कुछ न कुछ अवश्य करूं, मैं पिशाच हूं और अधिक कुछ तो नहीं करसकता किन्तु पिशाच की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होतीहै इसकारण मैं यहांही बैठे कुछ देखाकरताहूं और जानपड़ताहै कि इससे तुम्हारा कुछ काज बने, यदि मेरे वचनानुसार करो तो मैं कहसुनाऊं " । श्री गुसांई तुलसीदासजी ने कहा कहसुनाओ, मेरा काज निकलेगा तो अवश्य करूंगा। पिशाच बोला— काशी में मणिकर्णिकाकुण्ड के समीप एक पण्डित वाल्मीकीयरामायण कहरहाहै वहां श्रोताओं की बड़ी भीड़ होतीहै उसी भीड़ में एक कोने में छिपकर एक कुष्ठी (कोढ़ी) कथा सुनाकरताहै तुम वहां जाकर उसे ढूंढ उसके पीछे बैठजाओ, जब कथा के समाप्त होनेपर वह चलनिकले उसे पकड़ अपनी अभिलाषा कहसुनाओ।

इतना वचन सुन गुसांईजी महाराज वहां पहुंचे औ पिशाच का बचन सत्य पाया। उस कुष्ठी के समीप बैठगये। जैसे कथा समाप्त हुई, भीड़ निकलगई, कुष्ठी भी चुपके चलनिकला, गुसांईजी महाराज झट उसके पांव पकड़ बोले आप कौन? कुष्ठी ने कहा भाई छोड़ो २ मैं अत्यन्त दुखी कुष्ठी हूं, मेरे पैरों के पकड़रखने से मुझे पीड़ाहोतीहै गुसांईजी ने प्रार्थना की मैं समझगया आप कुष्ठी नहीं, आप कुछ

और हैं, मैं आपको नहीं छोड़ूंगा, आप मुझे सच्चा अधिकारी जान निज स्वरूप प्रगट करें। पहले तो कुष्ठी ने रुधिर इत्यादि देखला अत्यन्त घृणा जनाई किन्तु जब देखा कि तुलसी किसीप्रकार भी नहीं मानता, तब अपना विशाल अरुण पर्वताकार शरीर प्रगट करदेखलाया, देखतेही गुसांईजी ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और यह निश्चय कर कि आप साक्षात् श्रीहनुमानजीमहाराज हैं स्तुति करनेलगे। आप की स्तुति से प्रसन्न हो महावीर बोले "मांग क्या मांगता है"? गुसांईजी आपको अपने ऊपर अत्यन्त प्रसन्न जान बोले भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो दो 'वर' प्रदान करें, प्रथम तो यह कि जगतवन्दन भक्तउरचन्दन श्रीरघुनन्दन का दर्शन हो, द्वितीय यह कि जब २ मैं आपका आवाहन करूं आप समय २ पर मुझे इसीप्रकार दर्शन दियाकरें। यह सुन महावीर 'एवमस्तु' कह अन्तर्ध्यान होगये।

अब गुसांईजीमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हो निजस्थान पर लौट आये। आप नित्य तीसरे प्रहर एकान्त स्थान में बैठ रामायण की रचना करतेथे औ इसी व्याज से रघुनन्दन के ध्यान में मग्न रहतेथे। जब से महावीर ने आपको 'वर' प्रदान कियाहै आपको रघुनाथ के दर्शन पाने का दृढ़ विश्वास है।

उक्तप्रकार रामायण की रचना करते २ जब उस समय का वर्णन करनेलगे जहां श्रीरघुनाथ का शृंगार कर जनकपुरी में विवाह के निमित्त जनक के द्वारपर लेचलेहैं औ इन + पदों की [केकिकंठ

+ केकिकंठद्युति स्यामल अंगा। तड़ितविनिन्दक वसन सुरंगा
ब्याहविभूषण विविध बनाये। मङ्गलमय सबभांति सुहाये
शरद विमल विधुबदन सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन

से बाहि नचाव तक] रचनाकर लेखनी पुस्तक पर छोड़ मस्तक उठा गङ्गा के लहरों की शोभा देखनेलगे, तब देखते २ आपकी दृष्टि गङ्गा के दूसरे तट पर पहुंची, क्या देखते हैं कि जिसप्रकार की शोभा आपने रामायण में अभी गान की है ठीक २ उसीप्रकार के श्रृङ्गार धारण किये अश्व पर शोभायमान श्रीरघुनन्दन बाजि नचाते चलेजारहेहैं।

एकबार सब सज्जन एक स्वर से बोलें (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे)

प्रिय सभासदो ऐसी उत्तम झांकी अवलोकन करते गुसांईजी ने पहले तो ऐसा समझा कि हो नहो यह साक्षात् कमलनयन रघुनाथही अश्व दौड़ाये जारहाहै किन्तु देखते २ थोड़ेही देर में आपकी चित्त-वृत्ति पलटा खागई और यह विचार होआया कि कोई राजकुमार आ-खेट के निमित्त निकलाहोगा। एवम्प्रकार श्यामसुन्दर की विचित्र माया

सकल अलौकिक सुन्दरताई। कहि न जाइ मनही मन भाई
बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा
राजकुंवर वरबाजि नचावहिं। वंशप्रशंसक विरद सुनावहिं
जेहि तुरंग पर राम बिराजे। गति बिलोकि खगनायक लाजे
कहि न जाइ सबभांति सोहावा। बाजिवेष जनु काम बनावा

छन्द—जनु बाजिवेष बनाइ मनसिज रामहित अति सोहहीं।
अपने सुवय बल रूपगुण गति सकल भुवन विमोहहीं।
जगमगित जीन जड़ाव जोती सुमोति मणि माणिक लगे।
किंकिणि ललाम लगाम ललित विलोकि सुरनर मुनि ठगे।

दोहा—प्रभु मनसहिं लयलीन मन। चलत बाजि छवि पाव।
भूषित उडुगण तड़ित घन। जनु वर बर्हि नचाव॥

का आवरण आप के अन्तःकरण पर पड़तेही आपने अपनी आंखें नीचे करली, इधर आंखों का नीचा करना था कि उधर श्यामसुन्दर अन्तर्ध्यान होगये। गुसांईजीमहाराज इस चरित्र पर कुछ ध्यान न देकर पूर्ववत् अपने रामायण की रचना में लगगये। जब आपने बालकाण्ड समाप्त करदिया विचारनेलगे किस कारण अबतक भक्तजन मानसहंस रघुकुलवंशावतंस श्रीरघुनन्दन का दर्शन नहुआ, श्रीगुरुदेव औ श्री पवनकुमार महावीर के वचन तो कदापि मिथ्या नहीं होसकते कुछ मेरेही मन्द कर्मों के यह फल हैं।कि इतना विलम्ब होरहाहै। ऐसे विचार करते प्रेम से विह्वल होगये, नेत्रों से अश्रुपात होनेलगा औ एक लम्बी सांस भर पश्चात्ताप कर जैसे श्रीमहावीर का स्मरण किया, वह झट प्रगट हुए और बोले "मांग क्या मांगताहै" ? गुसांईजी ने चरण पकड़ प्रार्थना की भगवन् ! अबलौं रघुनाथ का दर्शन नहीं हुआ महावीर बोले क्यों? उस दिन जो गङ्गापार रघुनाथ घोड़ा दौड़ाये जारहे थे क्या तुझको दर्शन नहीं हुआ ? इतना सुनतेही गुसांईजी को वह छवि स्मरण होआई औ घबड़ाकर अत्यन्त व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर विलाप करनेलगे, हे देव ! हे क्षमासागर ! हे दीनबन्धो ! क्या मेरे पाप ऐसे प्रचण्ड निकले। हा ! आप मेरे निमित्त ऐसे प्रगट हों औ मैं मन्दभागी आपपर कुछ ध्यान नदूं। प्यारे ! जब ऐसाहै तो यह अधम शरीर रखकर क्या करूंगा इसे त्याग देनाही उचित है, ऐसा पश्चात्ताप कर छाती में मूके मार प्राण देने चाहा किन्तु महावीर ने झट आपको अपनी गोद में उठालिया औ बोले बेटा ! तू शोक न कर, हे ले मैं एकबार अपनी ओर से फिर तुझे 'वर' देताहूं, तू यहां से चित्रकूट चलाजा वहां अवश्य रघुनाथ का दर्शन तुझे होगा। यह वर पातेही गुसांई अत्यन्त प्रसन्न हुए औ उसी समय इस पद की रचनाकी।

रे मन चेत चित्रकूटहिं चलु (देखो विनयपत्रिका)

अब आप यह विचारतेहैं कि कहांतक शीघ्र होसके चित्रकूट को यात्रा करूं।

एक दिन इसी विचार में बैठे थे कि एक मनीआरवाड़ी वैश्य मृतक हुआ उसकी स्त्री अपने स्वामी के साथ उसे जलाने जातीथी मार्ग में सब महात्माओं का दर्शन करती २ आपके समीप भी आन-पहुंची औ दण्डवत किया, आपने आशीर्वाद दिया " बाई तेरा सु-हाग बढ़े " यह सुन वह बोली भगवन्! मेरा स्वामी तो मरगया मेरे सुहाग बढ़ने की तो कोई आशा नहीं किन्तु आप ऐसे महापुरुष का वचन अन्यथा नहीं होसकता। यह सुन गुसांईजी बड़े लज्जित हुए औ श्रीरामचन्द्र से ध्यान में यों प्रार्थना करनेलगे भगवन्! मेरे मुंह से ऐसा मिथ्या वचन क्यों उच्चारण हुआ। नाथ! लोग यही कहेंगे तुलसी बड़ा झूठा है। ऐसे ध्यान करते २ जब आप अत्यन्त एकाग्र हुए आपको ऐसा भान हुआ जैसे कोई ध्यान में यों कहताहो कि यह पुरुष तो उठेगा जिलादो। फिर तो आप अत्यन्त प्रसन्न हो उस स्त्री से बोले यदि तेरा भर्ता जीजावे तो तू मेरा कहा करेगी, उसने कहा भगवन्! यदि कूप में गिरने कहोगे गिरूंगी और तो बातही क्या है। आपने कहा तू औ तेरे घरवाले सब मिल यदि यह प्रतिज्ञा करें कि सब के सब भक्त होजावेंगे औ अहर्निश रघुनाथ के भजन में लगेरहेंगे तो मैं इसे जिलाऊं, जब उसने सब कुटुम्बियों के साथ यह प्रतिज्ञा की गुसांईजीमहाराज उस मृतक को समीप गया भुजा पकड़ बोले मित्र! क्यों सोतापड़ाहै उठजा! इतना कहनाथा कि वह मृतक राम २ क-हताहुआ उठबैठा (एकबार सब सज्जन मिलबोलो— हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण ………)

अबतो काशी में यह धूम मचगई कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने मृतक जिलादिया। यह बात फैलते २ दिल्लीपति बादशाह के

कानों में पहुंची, बादशाह के हृदय में ऐसे महात्मा के दर्शन की अत्यन्त श्रद्धा उपजी. अपने अधिकारियों को काशी भेज आप को विनयपूर्वक बुलवाया औ सन्मानपूर्वक अगवानी कर लेगया औ अपनी गद्दी पर बैठाल हाथबांध बोला "हजरत मैंने सुनाहै आप में मुर्दों के जिलादेने की करामात है सो मुझे भी दिखलावें"। गोस्वामी ने उत्तर दिया, भाई मैं एक सीधासादा साधू हूं भगवान का भजन करताहूं मैं मुर्दा जिलाने नहीं जानता। जब बादशाह के बारम्बार प्रार्थना करने पर भी आप यही उत्तर देतेरहे तो बादशाह क्रोधित हो अधिकारियों को बुला आप के हाथ पांव में बेड़ी भरवा जेलखाने [कारागार] में भेजदिया, आप कारागार में भी निश्चिन्त भजन करते बैठरहे हाथ पांव बांधेजाने की चिन्ता कुछ भी आपको न व्यापी किन्तु एक दिन आप अत्यन्त उदास हो यह पश्चात्ताप करनेलगे हे भगवन्! आप के दर्शन निमित्त चित्रकूट न जासका, न जानें क्यों मध्य में यह बाधा उपस्थित होगई। नाथ! क्या मेरे पाप ऐसे प्रचण्ड निकले जो आप के दर्शनों से मुझे इसप्रकार रोकरहेहैं? ऐसे शोकातुर हो केशरीनन्दन की स्तुति औ प्रार्थना करनेलगे।

पद— तोहि न ऐसो बूझिये हनुमान हठीले
साहब सीताराम से तुम सेवकसीले
तेरे देखत सिंह को शिशु मेंडक लीले
जानतहौं कालि तेरेहु जनु गुणगण कीले
हांक सुनत दशकंध के भये बन्धन ढीले
सो बल किधौं गयौ अब गर्व गहीले
सेवक को परदा फटै तू समरथ सीले
अधिक आपते आपनो सन्मान सहीले

सांसति तुलसीदास की लखि सुयश तुही ले
तिहूकाल तिनकौ भजौं जे रामरंगीले ॥

प्रिय सभासदो ! भक्तवत्सल भगवान अपने प्यारे भक्तों का दुख तनक भी नहीं सहसकता ऐसा कौन दो मस्तकवालाहै जो भक्तों को दुख दे आप कल्याण से व्यतीत करसके। देखिये अपने दास के चित्त पर चिन्ता का लेशमात्र देखतेही क्या अद्भुत लीला देखलाई कि देखते २ कोटान्कोट बन्दरों की सेना दिल्ली में जुटगई, बादशाह को उनके मंत्रियों सहित चारों ओर से घेरली, मानो महावीर स्वयं अपना दल लिये पहुंचगये, महलों में सर्वत्र झुण्ड के झुण्ड बन्दर धूम मचाने लगे, एक २ बेगमों के घर में सहस्रों सहस्र बन्दर दान्त निकाल २ भय दिखलानेलगे। बादशाह की तो यह दुर्दशा हुई कि कितनेक बन्दर कपड़े फाड़ रहेहैं, कितने मस्तक के बाल उखाड़ रहेहैं कितने नखों से जहां तहां भिन्न २ अङ्गों को विदाड़ डालने की चेष्टा कररहेहैं। इन बन्दरों के उत्पात के विषे प्रियादासजी भक्तमाल में यों लिखतेहैं :—

पद्य— ताही समय फैलगये, कोटि कोटि कपि नये
नोंचे तन खेंचे चीर, भयो सो विहाल है
फोरें कोट मारें चोट, किये डारें लोट पोट
लीजै कौन ओट जानि, मानै प्रलयकालहो ॥

बादशाह अत्यन्त व्याकुल हो बीरबल की ओर देख बोला भाई ! यह क्या आपत्ति है मेरी तो अब जान जातीहै इनसे बचने का कोई उपाय नहीं देखपड़ता, क्या करूं ? कोई यत्न निकालो !

यह सुन बीरबल ने कहा — बादशाहसलामत आपने बड़ाही अनुचित किया, महात्मा को कारागार भेजा, इसी अनीति के ये फल

हैं, यदि आप अपना कल्याण चाहतेहो तो चलो उसी महात्मा के चरणों पर गिर अपना अपराध क्षमा मांगो, सब आपत्तियां दूर होजावेंगी। यह सुन वादशाह त्राहि त्राहि करताहुआ गोस्वामी तुलसीदासजी के चरणों पर जा गिरा औ प्रार्थना की भगवन् ! क्षमा करो यह आपत्ति निवारण करो। गुसांईजी यह लीला देख मुसकराये औ हंसकर बोले, वादशाह ! थोड़ीसी और करामात देख ! घवड़ाता क्यों है ? वादशाह दांत खीसोट गिरगिराकर बोला " हुजूर मोआफ़ करें अब मैं करामात खूब देखचुका " फिर गोस्वामी ने कहा भाई यह बन्दरों की सेना सुन्दरवन से आईहै यह अब लौटकर नहीं जासकती इसलिये यदि तू इनके रहने के लिये यह दिल्ली छोड़दे दूसरी नवीन दिल्ली बसा तो अवश्य तेरे अपराध क्षमा हों, जब वादशाह ने ऐसी प्रतिज्ञा की गुसांईजी ने ध्यान में श्रीहनुमानजी से प्रार्थना की भगवन् ! ये सब आपही की लीला जानपड़तीहै अब इस गरीब दुखिया वादशाह की जान छोड़दो, इतना ध्यान करतेही सब के सब बन्दरों ने वादशाह को छोड़दिया। वादशाह ने दूसरी दिल्ली बसाई जो अबतक नवीन दिल्ली वाशाहजहानावाद के नाम से प्रसिद्ध है औ पुरानी दिल्ली में अबतक भी बन्दरों की सेना निवास करतीहै।

एकवार सब मिल बोलो

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

प्रिय भ्रातृगण ! एवम्प्रकार गुसांईजीमहाराज दिल्लीपति वादशाह को चेता काशी लौट झट् चित्रकूट को पधारे।

अब आपको चित्रकूट पहुंचे छौ मास बीतगयेहैं, एक दिन आप मन्दाकिनी नदी के तीर बैठ पूजन के निमित्त चन्दन घिसरहेहैं औ

प्रेम में मग्न यह विचाररहेहैं कि अबलौं रघुनन्दन ने दर्शन नहीं दिया, मेरा भाग ऐसा कब उदय होगा कि श्यामसुन्दर मुझे दर्शन देवेगा, मैं तो अत्यन्त मलिन कर्महीन मन्दभागी हूं, वह बादशाहों का बादशाह क्या मुझ दीन पर कभी कृपा करेगा। पवनकुमार औ गुरुदेव की वचनों की आशाहै इनके वचन न कभी मिथ्या हुए न होंगे। ऐसे प्रेम में विह्वल होते २ नेत्रों से अश्रुपात होनेलगा, रोमांच बढ़ा, स्तम्भ होगया, प्रलय की दशा व्यापी, प्रेम में गोते खाते २ अचेत हो पृथ्वी पर गिरे, थोड़ीदेर के पश्चात् मूर्च्छा टूटी उठबैठे, क्या देखते हैं कि एक अत्यन्त सुन्दर बालक कोमलगात कमलनयन मन्द २ मुसकाताहुआ सन्मुख खड़ाहै, देखतेही आपको पहले तो यह बोधहुआ कि हो न हो यह रघुनाथहीहै किन्तु क्षणमात्र बीतते २ माया ने फिर आप के चित्त पर आवरण डाला आपने यह विचारा किसी बड़े आदमी का बालक होगा। श्यामसुन्दर छोटे २ हाथों की छोटी २ अंगुरियों को जोड़ बोले—गुसांईजी प्रणाम! आपने आशीर्वाद दिया—बच्चा तेरा कल्याण होवे। तब रघुनाथ ने जानलिया कि गुसांई ने मुझे नहीं पहचाना तब यों बोले— बाबाजी! यह जो घिसरहेहो क्या है? गुसांई बोले बच्चा यह मस्तक में लगाने को चन्दन उताररहाहूं। रघुनाथ बोले— अजी! तुम उतारते चलो औ मैं तुम्हारे मस्तक में लगाताचलूं ऐसा होवे की नां! गुसांई बोले क्यों नहीं, मैं घिसताजाताहूं तुम मेरे मस्तकमें लगातेजाओ अबतो गुसांई घिसतेजातेहैं औ श्यामसुन्दर गुसांई के मस्तक में प्रेमपूर्वक चन्दन की रचना करतेजातेहैं। एकबार सब प्रेम भरे शब्द से बोलो (हरे राम …………)

प्रिय सभासदो! अहाहा! देखिये तो सही आज गुरुदेव की कृपा से गुसांई को वह पद लाभ होरहाहै जो ब्रह्मादिकों को भी मिलना दुर्लभ है। अहा! हे गुरुदेव! तुमको बारम्बार साष्टाङ्ग दण्डवत है

क्यों नहो ? जिसपर तुम्हारी कृपाहो उसपर श्यामसुन्दर क्यों न रीझे।

इधर तो यह लीला होरहीहै उधर श्री पवनकुमार महावीर ने देखा कि रघुनाथ का दर्शन तुलसी को होरहाहै किन्तु तुलसी अचेत है इसे चेतादेना उचित है। ऐसा विचार हनुमान एक शुक का स्वरूप धारण कर समीप के वृक्ष पर बैठगये औ यों शब्द सुनानेलगे।

चित्रकूट के घाट पर भइ साधुन की भीर
तुलसी चन्दन घिसतहैं तिलक देत रघुवीर

अंजनीकुमार ने एक, दो, तीन वार यह पद सुनाया किन्तु गुसांई को चेत न हुआ फिरतो महावीर उधर अन्तर्ध्यान होगये इधर रघुनाथ चट दर्पण ले गुसांई को देखला बोले "देखलो महाराज अपना चन्दन देखलो ठीक तो है कुछ अशुद्ध तो नहीं है। प्रिय सज्जनो! जिस की अद्भुत शक्ति मनोहर पुष्प की पत्तियों में कैसी २ विचित्र रचनाकर बड़े २ बुद्धिमानों के चित्त को हरलेतीहै आज उसी चित्रकार से चित्रित अद्भुत चन्दन की रेखाओं को देख गुसांई विस्मय को प्राप्त होरहेहैं कि ऐसा छोटा बालक औ यह विचित्र रचना किन्तु अबलौं भी कुछ यथार्थ बोध नहीं है, मुहूर्त्तमात्र ऐसी लीला कर दर्पण देखला श्यामसुन्दर यह कहतेहुए चले महाराज! अब भूख लगगई मा बाप बाट जोहरहेहोंगे लो नमस्कार लो! अब जाताहूं। इसप्रकार कहते, मुसकराते, हंसते, खेलते, आंखों की ओट में जा अन्तर्ध्यान होगये।

प्रिय भक्तजनो! गोस्वामीजी को इसीप्रकार जब पांच सात मास और बीते तब कुछ उदास हो चिन्ताग्रस्त हुए कि अबलौं मेरे प्यारे धनुर्धर का दर्शन नहीं हुआ ऐसा विचार फिर महावीर का आवाहन किया, आवाहन करतेही पवनसुत प्रगट हो बोले, अजी अब

क्यों मुझे पुकारा ? गुसांई बोले— भगवन् ! अबतो चित्रकूट निवास करते चिरकाल व्यतीत हुए रघुनाथ का दर्शन नहीं हुआ, महावीर बोले क्यों उसी दिन तो रघुनाथ तेरे मस्तक में चन्दन करगयेहैं। बस इतना सुननाथा कि गुसांई मन्दाकिनी में डूबनेचले, पवनकुमार ने समझाया बेटा ! जा एकवार फिर दर्शन होगा, किन्तु अब अन्य स्थान को चलाजा। गुसांई बोले भगवन् ! अब मुझे ऐसे धोखे के स्वरूप में दर्शन नहीं अबतो यदि आप की यथार्थ कृपा मुझपर है तो ऐसे दर्शन हो कि श्यामसुन्दर अपने निज स्वरूप में कीटमुकुट धारण किये धनुषवाण लिये मेरे समीप प्रगट हों। अञ्जनीकुमार एवमस्तु कहतेहुए अन्तर्ध्यान होगये।

कुछदिनों के पश्चात् गोस्वामी ने वृन्दावन की यात्रा की, जैसे आप वृन्दावन पहुंचे धूम मचगयी कि एक रामउपासक महात्मा पधारे हैं, आप श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर में पहुंच दण्डवत् कियाही चाहते थे कि किसी कृष्ण उपासक ने आपको देख ठठोली कर यह दोहा पढ़ा—

अपने २ इष्ट को नमन करै सब कोय
इष्टविहूना परशुराम नवे सो मूरख होय।

आप समझगये, मेरा इष्ट धनुषधारी है यहां मुरलीधारी को नमन करने से ये मेरी ठठोली करेंगे झट् आपने उत्तर में यह दोहा पढ़ा—

क्या वरणों छवि आजकी भले बनेहो नाथ
तुलसी मस्तक नवत है धनुषवाण लो हाथ।

गोस्वामी के मुख से यह वचन निकलतेही श्यामसुन्दर ने क्या किया —

मुरली मुकुट दुराय के धनुषबाण लै हाथ
सेवक की रुचि रखन को नाथ भये रघुनाथ

अबतो आपके महत्त्व की धूम मचगयी झुण्ड के झुण्ड स्त्री पुरुष आपके दर्शन को एकत्र होनेलगे, एकदिन आप यमुना में स्नान कररहेथे, एक गोपिका आई औ आप को रामउपासक जान यह कहती हुई चलीगयी " महाराज ! आपको रामदोहाई है जो जल से बाहर निकलो " अबतो आप को उस रामदोहाई के कारण तीन दिन लगातार जल में खड़े बीतगये, अब सारे वृन्दावन में यह कोलाहल मचगया कि एक साधु तीन दिनों से जल में खड़ा है। तीसरे दिन उस गोपिका के पति ने अपने घर में यह वार्ता सुनाई, वह ग्वालिन बोली मैंही तो रामदोहाई दे आईहूं, उसका पति उसपर बहुत खीझा औ बोला तू शीघ्र जा ! औ कहदे ! तुमको रामदोहाई है जो जलसे बाहर न निकलो। पति की आज्ञा पातेही वह दौड़ीगयी औ बोली— तुमको रामदोहाई है जो पानी से न निकलो, यह सुन आप जल से बाहर निकलआये।

प्रिय सज्जनो ! ईश्वर की माया प्रबल। देखिये ऐसे महापुरुष के चित्त में भी यह अहंकार उपजा कि मैं भी अपनी उपासना में ऐसा दृढ़हूं कि तनक रामदोहाई पर तीन दिवस तक जल में खड़ारहा, बस ! अबतो रघुनाथ को इस रोग की औषधि करनीपड़ी। प्रिय श्रोतृगण ! जैसे किसी बालक के किसी अङ्ग पर फोड़ा निकलआने से माता उसके रोने चिल्लाने पर ध्यान न देकर तीक्ष्ण शस्त्र से चिरवाडालतीहै इसीप्रकार रघुनाथ अपने भक्तों के हृदय का अहंकाररूप फोड़ा उत्पन्न होने के साथही किसी न किसी विशेष यत्न द्वारा नाशकरहीडालताहै। सो सुनिये।

अब गुसांईजीमहाराज धीरे २ वृन्दावन की अलौकिक शोभा देखते, व्रज की परिक्रमा करते, एक ऐसे स्थानपर पहुंचगये जहां एक छोटासा कुंज था, स्थान सुनसान था, कोई बसती भी वहां न थी, सायंकाल होरहाथा, आप बड़ी शीघ्रता के साथ इस तात्पर्य से आगे बढ़तेचलेजातेथे कि यदि कोई ग्राम मिलजावे तो वहां रात्रिभर निवासकरलूं इतने में उसी सुनसान स्थान में एक टूटी फूटी झोंपड़ी देखपड़ी जैसे आप उसके समीप पहुंचे उस झोंपड़ी से एक अत्यन्त वृद्ध गोप निकला औ आप को दण्डवत् कर बोला, भगवन् ! रात्रि भर मेरी मढ़ैया में विश्राम करो प्रातःकालही जहां इच्छा हो चलेजाना, यह सुन आप वहां विश्राम करगये, उस वृद्ध ग्वाले औ उसकी वृद्धा स्त्री ने आप की प्रेमपूर्वक सेवा की, जब प्रातःकाल वहां से चलनेलगे, न जाने आप के चित्त में क्या आया, आपने उस बूढ़े से पूछा भाई ! तुमको क्या कोई सन्तान नहीं है ? उसने उत्तर दिया ' नहीं ' । फिर आपने पूछा इसका क्या कारण ? उसने उत्तर दिया कारण कहने योग्य नहीं क्या कहूं । जब गुसांईजी हठकर पुनः पुनः पूछतेरहे तब वह बोला— भगवन् ! जिसदिन मैं विवाह कर इस स्त्री को घर लाया औ इसके बिछावन पर जानेलगा यह झट् कहपड़ी " तुमको रामदोहाई है कि मेरे बिछावन पर आओ " इस रामदोहाई के कारण हमदोनों ने आजतक एकसंग एक बिछावन पर शयन नहीं किया, इसी रामदोहाई पर दोनों की युवा अवस्था वीतकर अब वृद्धा अवस्था भी समाप्त होरहीहै, एक साथ एकही झोपड़ी में निवास करतेहूं हम दोनों को छोड़ अन्य कोई यहां है भी नहीं तथापि रामदोहाई ने हम दोनों को आजतक एकसंग होने न दी ।

प्रिय श्रोतृगण ! इतना वचन सुनतेही हमारे गुसांईजीमहाराज की आंखें खुलीं औ वह बातें स्मरण होआईं, विचारनेलगे देखो मैं

तो इस रामदोहाई पर केवल तीन दिन जल में खड़ारहा इसीपर मुझ को अपनी दृढ़ता का इतना अहंकार होआयाहै, धिक्कार है मेरी बुद्धि पर, ये बूढ़े बूढ़ी धन्यहैं, ये मनुष्य नहीं ये तो देव देवी के समान हैं, इतना कह आपने उन दोनों की परिक्रमा की औ अपने अहंकार का पश्चात्ताप करतेहुए आगे चले, जैसे २ आगे बढ़तेजातेहैं शोक औ लज्जा में डूबतेजातेहैं, धीरे २ आप अत्यन्त उदास हो एक वृक्ष के तले खड़ेहोगये औ रोदन करनेलगे, अबतो रोतेजातेहैं औ विलाप कर २ यों प्रार्थना कररहेहैं— हे रघुनन्दन ! क्या तू इसीप्रकार अहंकारादि के झकोड़ों में मुझे कौड़ी का तीन करदेगा अथवा अपनी कृपा कटाक्ष से मेरी ओर अवलोकन कर अपना दर्शन दे अपनी शरण में लेगा, नाथ ! यदि तू मेरे पापों की ओर दृष्टि करेगा तो रसातल में भी मेरी गति नहोगी, प्यारे ! कहां जाऊं ! किस से कहूं ! तुझे छोड़ और कौन मेरी विपत्ति का निवारण करनेवालाहै ? हा ! हे भगवन् ! यदि तू मुझपर तनक भी दयादृष्टि रखताहो तो आज पवनकुमार का वचन सत्य कर, मुझे दर्शन दे, नहींतो आज मैं अवश्य इसी वृक्ष से मस्तक टकड़ा प्राण देदूंगा, इतना कह प्रेम से व्याकुल हो जैसे मस्तक टकराया चाहतेथे कि उस वृक्ष औ आप के मध्य से श्रीरघु-कुलभूषण धनुषबाण धारण किये प्रगट हुए औ गुसांईजी को अपनी हृदय में लगा मन्द २ मुसकाते बोले— मांग क्या मांगताहै ? गु-सांईजी यह मोहनी मूर्त्ति देख प्रेम से विह्वल हो मुहूर्त्तमात्र रूपरस चाखतेरहे कुछ न बोलसके, थोड़ीदेर पश्चात् परम दीनवचनों से यही उच्चारण किया भगवन् ! अब इस पतित को अपने स्वरूप में मिलालो रघुनाथ ने कहा तू यहां से काशी अपने स्थानपर चलाजा वहां मैं तुझे अपने स्वरूप में मिलालूंगा, बस इतना कह अन्तर्ध्यान होगये । एकबार सब सज्जन मिल बोलो (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण २ हरे हरे)

अब गुसांईजीमहाराज प्रेमरस में मत्त रघुनाथ की मूर्त्ति में मानों समाधिस्थ वृन्दावन की यात्रा समाप्तकर काशी लौटआये, कुछ दिन ऐसे रघुनाथ के भजन औ ध्यान में समय बिता सम्वत् १६८० में असीघाटपर अपना शरीर त्याग रघुनाथ की सच्चिदानन्द मूर्त्ति में प्रवेश करगये ॥

दोहा— सम्वत सोलहसै असी असीगङ्ग के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तजे शरीर ।

आपने अपने पीछे अपने बनाये चौदह रामायण छोड़दिये हैं जिसे पढ़ सर्वसाधारण भारतनिवासी इस कठोर कलि में भक्तिरस में मग्न हो दुस्तर भवसागर को गोपद के समान पार करजातेहैं ।

प्रिय सभासदो ! :— इस जीवनचरित्र से मुझे आपलोगों को केवल यह देखलानाथा कि यदि सद्गुरु प्राप्त हों तो अधम से अधम प्राणी भी उच्च से उच्च महत्त्व को पासकताहै औ इस लोक में सुख-पूर्वक निर्वाह करताहुआ अन्त में उस सच्चिदानन्द आनन्दघन के स्वरूप में प्रवेश करसकताहै ।

प्रिय सभासदो ! किसी २ ने गुसांईजीमहाराज के विषे यों लिखाहै कि आप का जन्म मूलनक्षत्र के प्रथम चरण में हुआथा इस-कारण आप के पिता ने आपको जन्मतेही घर से बाहर निकालदिया, आपको एक वैरागी ने रामबोला नामकरके पाला किन्तु यह अनर्गल वचन है क्योंकि यदि यह बात ठीक होती तो हुलसी माता को उन्हे गोद में खेलाने का सुख नहीं मिलता परन्तु यह दोहा इसबात को सूचित करताहै कि गुसांईजीमहाराज बड़े प्रेम से माता की गोद में खेलतेरहे । सुनिये यह दोहा सुनलीजिये ।

सुरतिय नरतिय नागतिय सहवेदन् सवकोय
गोदालिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

प्रिय सज्जनो ! दोघण्टे होगये आप बैठे २ थकगयेहोंगे इसलिये अब मैं अपनी वक्तृता जो केवल भूमिका मात्र थी समाप्त करताहूं। सन्ध्या, कर्म, उपासना इत्यादि के विषे फिर कबही सुनाऊंगा, मुझे पूर्ण आशा है कि आप सब एकाचित्त हो मेरी इस टूटी फूटी बातों को विचारतेहुए संस्कृतविद्या सीखने में परिश्रम करते कराते अपने धर्मग्रन्थों को रुचिपूर्वक पढ़ते पढ़ाते माता, पिता, आचार्य, के वचनों पर दृढ़ विश्वास रखते सद्गुरु की शरण में प्राप्त हो लोक परलोक दोनों में सुखी रहने का यत्न करतेरहेंगे ॥

एकवार सब मिल आनन्दपूर्वक प्रेमभरे वचनों से
उच्चारण करें

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

प्रिय सज्जनो ! चलते चलाते मैं एकबात और भी कहेजाताहूं कि हमारे बहुतेरे कुतर्क करनेवाले प्राणी इस गोस्वामीजी के इस जीवनचरित्र में ठौर २ पर नाना प्रकार की शंका करेंगे औ यह कहेंगे कि ये सब बातें गप्प मारीहुईहैं, जैसे प्रेतका उपदेश करना, पवनकुमार का प्रगट होना, रघुनाथ का दर्शनदेना, कृष्णमूर्त्ति का धनुषबाण धारण करलेना इत्यादि २ किन्तु इनबातों पर अब कुछ कहने का समय नहीं है, अवकाश पाकर फिर कभी इन शंकाओं की निवृत्ति करूंगा किन्तु इतना तो अवश्य कहेजाताहूं कि जैसे उदुम्बर (गूलर) की मक्षिका जबतक फल के भीतर पड़ीरहतीहै यही समझती है कि

ब्रह्माण्ड की गोलाई इतनीहीहै परन्तु जब जन्तुफल (गूलर) फटजाता है औ वह निकलबाहर होताहै तब उसे बोध होताहै कि जगत बहुत बड़ाहै औ इसकी गोलाई (वृत्त) परिधि (Circumference) गूलर से अनन्तकोटगुण अधिक है फिर जो प्राणी अविद्यारूप गूलर के मच्छर होरहेहैं वे परमात्मा के इन महत्त्वों को औ उसकी अद्भुत-लीला को क्या समझें । मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना करताहूं कि हे देव ! तू कृपाकर इन कुतर्कियों की बुद्धि को सात्त्विक बनादे कि किसी न किसी दिन इनके हृदयमें तेरे चरणारविन्द की भक्ति उत्पन्नहो ॥

॥ इति ॥





नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

वक्तृता २
Lecture II

विषय— ब्रह्मविद्या

ॐ शन्नो मित्रः शॅंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पातेः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणेनमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षंब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि ऋतंवदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमामवतु वक्तारम् ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

हे नाथ शरणंदेहि मां भक्तं शरणागतम् ।
सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन ॥
सर्वाधार निराधार साक्षिभूत परात्पर ।
दुष्पारासारसंसारकर्णधार नमोस्तुते ॥

आज मैं इस समाज को केवल मनुष्यही समाज के नाम से

नहीं पुकारता वरु सनातनधर्म की यह एक पुष्पबाटिका लगीहै जिस में कोई सभासद बेली, कोई चमेली, कोई मोगरा, कोई मदनबान औ कोई रायबेलहैं, जिसमें कर्मकाण्ड के केवड़े भीने २ गन्ध दशो दिशाओं में फैलारहेहैं, उपासना की जूही अलगही मत्त हो झूमरहीहै, औ ज्ञान के गेंदे बिलग पीताम्बर पहने अड़े खड़े हैं, इस वाटिका की ऐसी शोभा देख सुखरूप कोकिल भी उड़ाचलाआताहै आशाहै कि थोड़ीदेर में इन पुष्पों की कलियों के समीप बैठ ऐसे आनन्द भरे शब्दों को सुनावें जिन्हें श्रवणकर मनरूप माली दोनों नेत्ररूप झरनों के द्वारा प्रेम का जल सींच २ कर इन पुष्पों के पौधों को प्रफुल्लित करे ।

प्रिय सभासदो ! आपलोगों पर भलीभांति विदित है कि इनदिनों ब्रह्मविद्या (علم الہی) (Divine knowledge) की क्या दुर्दशा होरहीहै, जिसे देखिये वही यह कहरहाहै " आओ मेरे मत में चले आओ जबही तुमको परमात्मा की प्राप्ति होगी अन्यथा नरक में पड़ोगे " हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, बौद्ध, नानकशाही, कबीरमतावलम्बी, दर्यादासी, शिवनारायणी, कूड़ापन्थी, राधास्वामी, सतनामी, सन्तमत औ दयानन्दी जिसे देखिये वही मुक्ति का दम भररहाहै औ अपने मतको उत्तम दूसरे को निकृष्ट बतलारहाहै, जहां देखिये वहांही झगड़े तकरार दंगे फ़साद मतमतान्तरों के बखेड़े परस्पर चलरहेहैं, इनही के पीछे २ हमारे मिस्टर नास्तिक बहादुर तो यह कहरहेहैं कि तुम सब मतवादियो क्यों व्यर्थ लड़रहेहो ! अजी ! परमात्मा तो हैही नहीं ।

हे श्रोतृगण ! हंसी आतीहै इनकी बुद्धि पर औ शोक होताहै कर । अब हमारे बुद्धिमान सभासद यह विचारें कि परस्पर विरोध का कारण क्याहै ? देखिये क्षमा

किजियेगा मैं एक उदाहरण आपको सुनाताहूं । किसी ग्राम में एकाएक यह धूममची कि " हाथी आया हाथी आया " ग्रामवासी देखने दौड़े, उनमें चार अन्धेथे औ एक अंधा औ लूला भी था, इन पांचों ने महावत से कहा भाई हाथी देखादो, महावत ने एक अंधे को लेजाकर हाथी का कान उसके दोनों हाथों से स्पर्श करादिया, दूसरे को उसका पांव, तीसरे को पीठ, चौथे को शुण्ड औ उस पांचवें अन्धे को जिस हाथ भी न थे लूला था हस्ती की चारोंओर फिरादिया, जब ये पांचों ग्राम में अपने घर आये घरवालों ने हस्ती के विषे पूछा कि कैसा होताहै, जिसने कान स्पर्श कियाथा उत्तरदिया जैसा चावल निराने का सूपा, दूसरेने उसे एक तमांचा लगा यह कहा नहीं वे जैसा चावल छांटने का ऊखल, तीसरेने कहा नहीं वे जैसा चावल छांटने का मूशल, चौथेने कहा नहीं वे मूर्ख चावलरखने का बखार और वह जो लूला भी था बोला अरे गप्पियो ! तुम चारों क्यों गप्पें लड़ारहेहो मैने तो चारों ओर फिरकर देखा हाथी तो कुछ थाही नहीं । बस ! हमारे बुद्धिमान सभासद समझगयेहोंगे कि इनमें परस्पर विरोध का कारण क्या है हाथी के सम्पूर्ण अङ्ग को न देखकर उसके एक २ अवयव का टटोलना, यदि कोई वैद्य शलाका से इनकी आंखें खोल सम्पूर्ण हस्ती देखला दे तो ये सब एकमत होजावें, तात्पर्य यह कि किसी पदार्थ को साङ्गोपाङ्ग जानने से विरोध उत्पन्न नहीं होता जब एक ने एक अङ्ग और दूसरे ने दूसरा अङ्ग पकड़ा परस्पर विरोध उत्पन्न हुआ । इसीप्रकार यदि चार बालक गुरु के पास संस्कृत अंग्रेजी अथवा फारसी पढ़नेजावें और गुरु वर्णमाला (Alphabet) [حروف تہجی] के सब अक्षरों को न बतलाकर इन चारों को भिन्न २ पांच २ सात २ अक्षर बतलावें तो इन में किसी को विद्या तो प्राप्त होगीनहीं वरु जब ये चारों एकसंग परस्पर संभाषण करनेलगेंगे विरोध उत्पन्न होजावेगा । इसीप्रकार आज इस ब्रह्मविद्या (Divine know-

ledge) की पूर्ण वर्णमाला न जानने के कारण ये झगड़े परस्पर चलरहेहैं ।

प्यारे सभासदो । कैसी भी कोई विद्या क्यों नहो जबलौं विद्यार्थी उसकी वर्णमाला (Alphabet) में परिश्रम न करेगा औ शुद्ध रीति से नहीं जानेगा तबलौं उस विद्या में वह निपुण नहीं होसकता । देखिये जब आप अंग्रेजी पढ़नेजातेहैं आपको पहले A, B, C, D, इत्यादि २६ अक्षर वर्णमाला के मिलतेहैं, इसीप्रकार फारसी में (ا ب ج د ر) २६ अक्षर ऐसेही संस्कृत अथवा नागरी भाषा में भी अ, इ, उ, क, ग इत्यादि २६ही अक्षर मिलतेहैं, आप का जो संस्कृत में ५० अथवा ५२ अक्षर देखपड़तेहैं उसका कारण यह है कि ह्रस्वों के दीर्घ औ अल्पप्राणों के महाप्राण होने से २६ से ५२ के लगभग होगयेहैं, यथार्थ में वर्णमाला के मुख्य अक्षर २६ ही हैं । इसीप्रकार ब्रह्मविद्या के भी २६ ही अक्षर हैं जिनको सम्पूर्ण न जानने से परस्पर विरोध का नेव लगजाताहै, यदि सर्वदेश के प्राणी इन २६ अक्षरों को जानें तो सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का एक धर्म जो सनातन है होजावे, किसी को किसी से किसीप्रकार का विरोध नहो क्योंकि जैसे ब्रह्म एक ऐसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिये ब्रह्मविद्या एक, कोई समय ऐसा था कि सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल एक सार्वभौमधर्म (Universal religion) के झण्डे के नीचे चलताथा औ इसीकारण उस धर्म को सनातनधर्म कहतेहैं जो किसी के नाम से नामाङ्कित नहीं है अर्थात किसी विशेष व्यक्ति के नाम का छाप जिसपर नहीं है, भलीभांति विचारकर देखिये कि जैसे हज़रत मुहम्मद के नाम का छाप मुहम्मदीधर्म पर, हज़रत ईसा के नाम का छाप ईसाईधर्म पर, नानकबाबा के नाम का नानकशाही पर, कबीर का कबीरहा पर औ इसीप्रकार दयानन्द के नाम का मोहर दयानन्दी

पर है ऐसे सनातनधर्म पर किसी के नाम का छाप नहीं । क्या आप सनातनधर्म को भारद्वाजीय, याज्ञवल्कीय, शांकराचार्यीय, गौतमीय, वा वाशिष्ठीय किसी नाम से आह्वान करसकतेहैं ? कदापि नहीं । सुनाजाताहै कि इसधर्म में ८४००० ऋषि हुएहैं किन्तु आजतक यह इनमें किसी के भी नाम से प्रसिद्ध नहीं हुआ इसी से ज्ञात होताहै कि यह धर्म स्वयं परमात्मदेव का है क्योंकि जो वस्तु कीसी की नहीं होती वह स्वयं सरकार गवर्नमेन्ट की कहलातीहै ।

अब चलिये अपने विषय की ओर चलें । आप को ब्रह्मविद्या के २६ अक्षरों के नाम सुनने की अभिलाषा लगरहीहोगी सो लीजिये सुनलीजिये, अंगुलियों पर गिन लीजिये अब मैं आपको गिनवाताहूं —

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ स्तेय, ४ ब्रह्मचर्य्य, ५ क्षमा, ६ धृति, ७ दया, ८ आर्जव, ९ मिताहार, १० शौच, ११ तप, १२ सन्तोष, १३ आस्तिक्य, १४ दान, १५ ईश्वरपूजन, १६ सिद्धान्तवाक्यश्रवण, १७ ह्री, १८ मति, १९ जप, २० हवन, २१ आसन, २२ प्राणायाम, २३ प्रत्याहार, २४ ध्यान, २५ धारणा, २६ समाधि ॥ यही ब्रह्मविद्या की वर्णमाला के २६ अक्षर हैं (علم الہی کے ہجائی ۲۶ حروف ہیں) :
(These are the 26 letters of the alphabet of our Divine knowledge.)

ब्रह्मविद्या के विद्यार्थियों को उचितहै कि प्रथम इन अक्षरों का अभ्यास करें । इसी २६ अक्षर से किसी धर्मवाले ने दस

किसी ने पांच, किसी ने एक लेकर अपना २ नाम चलादिया है औ यही परस्पर के विरोध का कारण हुआहै।

प्यारे सभासदो! अब इस ब्रह्मविद्या की श्रेणियों को भी श्रवण करलीजिये, जैसे आप इनदिनों अंग्रेजी पढ़नेजातेहैं तो आपको धीरे २ चार श्रेणियां उत्तीर्ण होने को मिलतीहैं, (एन्ट्रेन्स Entrance) (एले L. A.) (बीए, B. A.) (एमे M. A.) इसीप्रकार इस विद्या की भी चार श्रेणियां हैं कर्म, उपासना, ज्ञान, भक्ति [طریقت شریعت معرفت حقیقت] इनही श्रेणियों में आपको धीरे २ उत्तीर्ण होनापड़ेगा, जब आप प्रथम अपने एन्ट्रेन्स अर्थात् कर्म में उत्तीर्ण होजावेंगे तब उपासना के अधिकारी होंगे, उपासना में उत्तीर्ण होने से ज्ञान के औ ज्ञान में उत्तीर्ण होने से श्यामसुन्दर के चरणारविन्द की भक्ति के अधिकारी होंगे, क्योंकि यह भक्ति कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों का फलहै नारद ने अपने भक्तिसूत्रों में कहाहै "ॐ सातु कर्मज्ञानयोगेभ्यो ऽधिकतरा" सो भक्ति, कर्म, ज्ञान, योग से अधिकतरा है क्योंकि "ॐ फलरूपत्वात्" सर्वप्रकार के साधनों का फलरूपहै।

अब थोड़ा और आगे चलिये मैं आपको ब्रह्मविद्या में प्रवेश कराऊं अर्थात कर्म रूप एन्ट्रेन्स का साधनभेद बताऊं। सर्व बुद्धिमानों को जाननाचाहिये कि कर्म की अनेक शाखा हैं जैसे स्नान, दान, तीर्थ, व्रत इत्यादि २ किन्तु इनमें वह मुख्य कर्म कौन है जिसके न करने से मनुष्य किसी और कर्म के करने का अधिकारीही नहीं होता, जिसके नहीं करने से, उपासना, ज्ञान इत्यादि किसी श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं होसकता, जिस बीज के नहीं बोने से भक्तिरूप फल के मधुर रस को कदापि नहीं चखसकता। देखिये मैं उसका नाम आपको बतलाताहूं।

इस कलि में यह नाम सुननेमात्र तो अतिही शुष्क अर्थात् रूखा सूखाहै किन्तु यही सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या का नेव (foundation) है, जिसके विना जाने चारों वेद, छवों शास्त्र, अष्टादशपुराण सब के सब व्यर्थ होजातेहैं, जिसके अभाव से किसी कर्म का कुछ भी फल नहीं मिलता जिसके नहीं करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब अपने २ स्थान से च्युत हो पतित होजातेहैं। सुनिये अब बहुत विलम्ब हुआ आप सुनने को व्याकुल होरहेहोंगे, लीजिये उस अमूल्य रत्न का नाम ध्यान देकर सुनिये " सन्ध्या ! सन्ध्या !! और सन्ध्या !!! बस और कुछ नहीं।

प्यारे सज्जनो ! यह शब्द (सन्ध्या) सुनते के साथ हमारे श्रोताओं में किसी ने नाक सिकोड़ लियाहोगा, किसी ने मस्तक फेरलियाहोगा, किसी ने मुंह बनालियाहोगा, कितने तो मनहीमन यह कहतेहोंगे कि छी छी, कहां इतनी बड़ी ब्रह्मविद्या औ कहां यह बूढ़ी सड़ी गली सन्ध्या, अजी ! वही सन्ध्या जिसमें ब्राह्मणलोग नदी के तटपर जा हाथ में जल ले चाखा करतेहैं कि खट्टाहै वा मीठा, अजी ! वही सन्ध्या जिसमें नीचे ऊपर जल फेंकेजातेहैं औ थोड़ीदेर तक नाक बन्द करलिये जातेहैं, अजी तोबा ! इससे क्या ब्रह्म की प्राप्ति होसकतीहै औ इससे क्या सुख लाभहोसकताहै। ऐसी २ अनेक बातें हमारे कितने सभासद अपने मन में बनारहेहोंगे किन्तु प्यारे सभासदो ! स्मरण रखो कि सनातनधर्म में यह सन्ध्याही मूल है।

प्रमाण— विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या। वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्। तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा।

अर्थात् विप्ररूप वृक्ष का मूल सन्ध्याहै, चारों वेद चारों डालियां

हैं, जितने धर्म कर्म हैं सब पत्तियांहैं इसकारण मूल की रक्षा अवश्य होनीचाहिये क्योंकि मूल कटजाने से न वृक्ष रहेगा न डालियां रहैंगी। और सुनिये मैं आपको गोभिलगृह्यसूत्र सुनाताहूं—

(गोभिलगृह्ये) अथ य इमां सन्ध्यां नोपास्ते नाचष्टे न स जयति येतूपासते श्रोत्रिया भवन्तीत्युपनीताश्छेदनभेदनभोजनमैथुनस्वपनस्वाध्यायानाचरन्ति ये सन्ध्याकाले तेश्वशूकरशृगालगर्दभसर्पयोनिष्वभिसम्पद्यमानास्तमोभिस्सम्पद्यन्ते तस्मात्सायं प्रातः सन्ध्यामुपासीत।

अर्थात् जो प्राणी इस सन्ध्या की उपासना नहीं करता, नहीं पढ़ता सो कदापि किसी स्थान में जय नहीं पाता औ जो लोग करतेहैं वे श्रोत्रिय होतेहैं, विशेषकर जो पुरुष यज्ञोपवीत धारणकर सन्ध्याकाल में सन्ध्याकर्म छोड़ तोड़ना, फाड़ना, खाना, स्त्रीप्रसंग, सोना अथवा पढ़ना इत्यादि कर्मों को करतेहैं वे कूकर, शूकर, गदहा, औ सर्प योनियों में उत्पन्नहोतेहुए नानाप्रकार के नरकों को प्राप्त होतेहैं इसकारण बुद्धिमानों को उचितहै कि सायं प्रातः सन्ध्या अवश्य करैं।

फिर दक्ष का वचन है कि— सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्य मनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्। अर्थात् जो मनुष्य सन्ध्याहीनहै वह सदा अपवित्रही है इसकारण किसी कर्म करने का अधिकारी नहीं, क्योंकि वह जो कुछ भी कर्म करेगा उसके फल का भागी नहीं होगा।

प्यारे सभासदो! अब यह बात विचारणीय है कि हमारे ऋषि

महर्षियों ने इस सन्ध्या की इतनी प्रशंसा क्यों की औ इसपर इतना बल क्योंदिया, यदि मैं केवल दोएक सूत्र अथवा दोएक श्लोक कहकर छोड़दूं तो आजकल हमारे नवीनप्रकाशवालों को सन्तोष नहीं होगा क्योंकि आजकल वह समय बीतरहाहै कि जो बातें (तर्क वितर्क) (Logic, Philosophy) द्वारा सिद्ध न कीजावें उन्हें कोई मानताहीनहीं, चाहे कितने भी प्रमाण आर्षग्रन्थों के दियेजावें कोई सुनताही नहीं, इसकारण आज मैं आपको पूर्ण तर्कशास्त्र द्वारा सन्ध्या के महत्त्वों को सिद्धकर देखलाताहूं एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये विषय अत्यन्त गम्भीर है। सन्ध्या के महत्त्व ऐसे नहीं कि आज इस दोएक घण्टे में आपके समीप कह समाप्त करदूं, आज तो मैं इस विषय का प्रारंभ करताहूं, यह विषय इतना विस्तार है कि सप्ताह के सप्ताह कहता चलाजाऊं तथापि समाप्त नहो, फिर भी इसके महत्त्व को संक्षिप्त कर कहने में चार दिवस तो अवश्यही लगेंगे, परन्तु आप घबड़ावें नहीं आज जहांतक संभव होगा श्रवण कराऊंगा।

॥ एकाग्रचित्त होजाइये, सुनिये अब मैं सुनाताहूं ॥

प्यारे श्रोतृगण! आप जितने इस स्थान में सुशोभित हैं इस ब्रह्माण्ड के एक २ व्यक्ति से यदि पूछिये कि तुम अपने मन में किस बात की अभिलाषा रखते हो औ क्या चाहतेहो तो पाताललोक से ब्रह्मलोक तक के प्राणीमात्र एकस्वर से कहेंगे— सुख! सुख!! औ सुख!!!। यदि फिर पूछिये कि इतनाही अथवा कुछ और? तो वे कहेंगे अरोगता health) यदि फिर तीसरे वार पूछिये तो कहेंगे आयुर्वृद्धि (ترقی حیات) (Longivity of life) यदि चौथे वार फिर पूछिये तो कोई २ बुद्धिमान यह भी कहेंगे कि भाई! सुनताहूं कि एक परमात्मा सच्चिदानन्द आनन्दघन है न जाने मृत्यु के पश्चात् वह प्राप्त हो वा नहीं यदि जीवित रहते अर्थात् चिता में श-

यन करने से पूर्वही वह मिलजाता तो अति उत्तम। तात्पर्य यह कि
१ २ ३ ४
प्राणीमात्र को सुख, अरोगता आयुर्बृद्धि परमात्मप्राप्ति
इनही चार बातों की अभिलाषा सदा बनीरहतीहै इनसे और अधिक कोई कुछ नहीं चाहता, सबही येही चाहतेहैं कि इस संसार में सुखी आरोग्य औ दीर्घजीवी होकर अन्त में परमात्मा में लय होजावें तो प्यारे सभ्यगण! वह कौनसी क्रियाहै? वह कौनसा यत्न है? जिससे ये चारों प्राप्तहों।

कोई कहताहै नानाप्रकार के विषय संचय करने से सुख, औ आयुर्वेद अर्थात् चिकित्साशास्त्र में प्रवीण होने से अरोगता की प्राप्ति होतीहै, कोई कहताहै एकान्तस्थान में निवास करने से आयु की बृद्धि औ जङ्गल में जाकर तप करने से परमात्मा की प्राप्ति होतीहै, किन्तु मैं नहीं कहसकता ये बातें कहांतक ठीक औ संभव हैं क्योंकि यदि विषयों के संचय करने से सुख होता तो कोई धनवान, राजा, महा-राजा अपने को दुःखी नहीं कहता, यदि चिकित्सा जानने से अरोगता लाभ होती तो कोई वैद्य, डौक्टर, हकीम कभी रोगी नहीं होता, यदि एकान्त जा बैठने से काल की रुकावट होजाती तो बहुतेरे श्याल, भेड़िये, व्याघ्र इत्यादि जो प्रायः एकान्त पड़ेरहतेहैं काल के गाल में नहीं पड़ते, अब रहा जङ्गल में जाकर तपकरना सो इनदिनों संभवही नहीं, इसकारण मेरे जानते तो वह सुलभ यत्न ढूंढना चाहिये जिस एक से ही ये चारों प्राप्त होजावें। अब पूछिये वह कौनसा यत्न है अर्थात् वह कौनसी क्रिया है? तो मैं फिर आपको वही कहूंगा जो कहआयाहूं अर्थात् सन्ध्या! सन्ध्या!! और सन्ध्या!!!

मैं आपको अवश्य सिद्धकर देखलाऊंगा कि प्रथम कहीहुई चारों बातें केवल सन्ध्याही से लाभ होतीहैं किन्तु आज इतना समय नहीं

इसलिये आज इन चारों से एक अर्थात् सन्ध्या से परमात्मा की प्राप्ति कैसे होतीहै सिद्धकर देखलाताहूं शेष तीन बातें आयुर्वृद्धि अरोगता, और सुख दूसरे दिनों की वक्तृता में सिद्ध कीजावेंगी।

प्रिय श्रोतृगण! अब यहां मैं आपको इस विषय के आरम्भ से पूर्वही यह कहदेना उचित समझताहूं कि ऐसा न होजावे आप मेरी वक्तृता के तारतम्य को भूलजावें औ ऐसा न समझें कि मैं कहीं का कहीं चलाजारहाहूं। इसकारण मैं आपको स्मरण करादेताहूं कि मैं केवल ब्रह्मविद्या (Divine knowledge) परही कथन कररहाहूं आज वक्तृता के आरंभ से यहांतक मैं ने आपको केवल यही देखलायाहै कि ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर हैं और चार श्रेणियां हैं जिनमें प्रथम श्रेणी कर्म अर्थात् सन्ध्या है इसलिये आज सन्ध्या से ईश्वर की प्राप्ति का वर्णन करताहूं सुनिये।

(यहां से विषय आरम्भ होता है एकाग्रचित्त होजाइये)

प्रिय सभ्यगण! जब हमलोग परमात्मदेव को ढूढनेचलतेहैं तो सर्व वेद शास्त्रों से यही ध्वनि कान में आती है— वह तुम से दूर नहीं। उसके लिये तुमको न सौ मील जानाहै न हजार मील वरु तुम्हारे पास एक मंजूषा (बक्स अथवा पिटारी) साढ़ेतीन हाथ की है जिसके किसी एक कोने में वह परमात्मारूप हीरा गुप्तरूप से रखाहुआहै। मेरे कहने का तात्पर्य क्याहै, आप समझगयेहोंगे अर्थात् हमलोगों का यह शरीर जो अपने हाथ से साढ़ेतीन हाथ है एक अद्भुत पिटारीहै। इसीमें परमात्मारूप अमूल्य रत्न कहीं रक्खाहै, किन्तु आजकल के अज्ञानी कुतर्की पुरुष यह कहपड़ेंगे कि यदि इस शरीर में परमात्मारूप हीरा होता तो डॉक्टरलोग मृतक चीरने के समय प्रति शरीर से एक २ परमात्मारूप हीरा निकाल २ आलमारी

में बन्द करदेते औ जिसे आवश्यकता होती उसे चार आने परमात्मा पारसल द्वारा भेजदियाकरते फिर तो रुपये के चार परमात्मा जो चाहता मंगालेता । प्रिय श्रोतृगण ! इन कुतर्कियों की ऐसी निरर्थक बातों की ओर तो विचारिये कि ये किस धूर्तता के साथ कहां की बात कहां लेजातेहैं । अरे भाइयो ! क्या परमात्मा को तुमने सचमुच एक स्थूल बटिका के सदृश समझलिया जिसे डॉक्टर लोग इस शरीर से निकाललियाकरें । इस मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं, यह शङ्का तुम्हारी इस स्थान में बनती नहीं यदि तुम्हारे इस निरर्थक शङ्का का समाधान करूं तो क्या करूं । कहावत है कि " जैसा कुत्ता तैसा डण्डा " जैसी तुम्हारी शंका वैसाही उत्तर होनाचाहिये । लो अब उत्तर लेलो !

तुमको भलीभांति ज्ञात है कि तुम बहुतदिनों तक अपने पिता के बीज में पड़ेरहे फिर अपनी माता के गर्भ में कम से कम १० मास निवास करतेरहे तुम्हारे डॉक्टर ने तुमको पिता के वीर्य सेही झट् क्यों नहीं निकाल लिया कि तुम्हारे उत्पन्न होने में बरसों का विलम्ब हुआ यदि तुमको कुछ दिन प्रथमही निकालते तो अबतक तुम कुछ और अधिक बुद्धिमान होजाते । छी ! छी !! धिक्कार है तुम्हारी ऐसी बुद्धि पर । हां ! यदि तुम शंका करने की इच्छा रखतेहो तो प्रकरण विरोध न चलकर जैसा प्रसंग है वैसी शंका करो तो अवश्य किसी न किसी युक्ति से तुमको समझाऊं ।

देखो प्यारे कुतर्कियो ! इसी विषय पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने किस चतुराई औ बुद्धिमानी के साथ शंका की है सुनो तुम्हे सुनाताहूं ।

गोस्वामी ने कहा है —

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी
सतचेतन घन आनँद राशी ।
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी
सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

अर्थात् एक अविनाशी ब्रह्म जो सत, चेतन, औ आनन्द राशि है चराचर में व्याप रहाहै फिर क्या कारण है कि ऐसे सच्चिदानन्द के व्यापक रहते हुए भी सब जीव दीन औ दुखारी बने रहते हैं। जैसे सूर्य के निकट अंधियाली औ अमृत के समीप मृत्यु नहीं जासकती तैसे आनन्दराशि के समीप दुःख नहीं आनाचाहिये किन्तु प्रत्यक्ष देखाजाता है कि ईश्वर-रूप रत्न साथ रहते भी दुःख रूप दरिद्रता जीवों को सतारही है इसका क्या कारण? (देखिये यह कैसी उत्तम शंकाहै) अब इसका उत्तर लीजिये—

किसी ग्राम में एक गड़ेरिया बकरियों को चरायाकरताथा एक दिन चलते २ मार्ग में उसने एक बहुत बड़ा हीरा पाया समझा कि सैंधव (लवण) की उत्तम डली है, चलो दाल में डालूंगा, जब घर में आन कर उस हीरे को पत्थर से चूर दाल में डालना चाहा वह नहीं टूटा, तब समझा कि कोई ऐसीही निरर्थक वस्तु है झट एक चिथड़े में बांध अपनी एक बकरी के गले में लटकादिया वह बकरी नियमानुसार नित्य बाहरजा जंगलों में चरतीरही, तीन चार वर्षों के पश्चात् उस नगर में दुर्भिक्ष हो अन्न का अभाव होगया, लोग बिना अन्न प्राण छोड़नेलगे, गड़ेरिये को भी कई दिन अन्न न मिला तब क्षुधा से व्याकुल हो घर में पड़ा हा अन्न ! हा अन्न !! कह चिल्लातारहा। संयोगवशात् इसका एक मित्र जो किसी दूसरे नगर में किसी जौहरी के पास नौकर था छुट्टी पा अपने घर आया और एक दिन अपने मित्र के घर जा पुकारा, जब कहीं से कोई शब्द नहीं

पाया तब घर के भीतर प्रवेश किया, क्या देखताहै कि मित्र मृतक के समान पड़ाहै, उसके मुख मे शब्द भी उच्चारण नहीं होते, हड्डियां निकलआई हैं, मुख देखा नहीं जाता, देखतेही बोला मित्र ! तेरी ऐसी दशा क्यों? उस गड़ेरिये ने सारा वृत्तान्त कहसुनाया, सुनतेही उसे दया उत्पन्न हुई, चाहताही था कि अपने गांठ मे कुछ द्रव्य निकालकर देवे कि इतनेमें वह बकरी जिसके गलेमें हीरा बंधाथा उछलती कूदती उसके सन्मुख आ अपने खुर से गर्दन खुजानेलगी, वह चिथड़ा अत्यन्त पुराना होगयाथा खुरके लगतेही फटगया और वह हीरा उसके आगे गिरा, देखतेही पहचानलिया और हाथ में लेकर पूछा मित्र ! यह बकरी किसकी ? उसने उत्तर दिया मेरी । फिर (हीरादेखलाकर) यह वस्तु किसकी ! वह बोला मेरी । सुनतेही वह हँसा औ बोला मित्र ! तेरे पास ऐसी वस्तु औ तू कहताहै मैं अन्न विना भूखों मरा ऐसा क्यों ? उस गड़ेरिये ने कहा भाई ! यह क्या है ? उसने कहा हीरा, गड़ेरिये ने कहा हीरा किस पशु का नाम होताहै, उसने उत्तर दिया मित्र ! तू इतना भी नहीं जानता, यह एक बहुमूल्य रत्न है यदि तू किसी सेठ के पास लेजावेगा तो इससे प्रचुर द्रव्य हाथ आवेंगे ऐसा कह अपने मित्र को साथ ले जैसे नगर मे एक सेठ की दूकान पर गया सेठने देखतेही मुंहमांगा द्रव्य देदिया फिरतो वह गड़ेरिया धनवान होगया औ सुखपूर्वक दिन बितानेलगा ॥

प्यारे सज्जनो ! इसी प्रकार यह ईश्वररूप रत्न भी हमलोगों के पास है किन्तु उस रत्न का नाम निरूपण करनेवाला औ यथार्थ यत्न बतानेवाला सत्गुरुरूप मित्र नहीं मिलता इसकारण हमलोग उस ईश्वर रूप रत्न के रहते भी नानाप्रकार के क्लेशों से आक्रान्त होरहे हैं औ इसीकारण वह परमानन्द प्रगट नहीं होता– गोस्वामी तुलसीदासजी ने

भी स्वयं इस शंका का उत्तर उसी स्थान में दिया है कि—

नामनिरूपण नाम यतनते
सोऊ प्रगटत जिमि मोल रतनते

प्रिय श्रोतागण ! इसमें तो तनक भी सन्देह नहीं कि वह परमात्मा इसी शरीर में स्थित है, लीजिये अब मैं आपको भिन्न २ प्रमाणों से दिखलाताहूं ।

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक २२

अर्थात् देहेऽस्मिन्पुरुषःपरः इस देह में जो परमपुरुष वर्त्तमान है, वह उपद्रष्टा सब के बाहर भीतर का देखनेवाला, अनुमन्ता सबको आज्ञा देनेवाला अथवा अनुमोदन करनेवाला, भर्ता सब को भरण पोषण करनेवाला अथवा सब का स्वामी, भोक्ता सबकुछ भोगानेवाला महेश्वर औ परमात्मा कहागयाहै ॥

इस वचन से आप सन्तुष्ट न हुएहों तो लीजिये और सुनिये इसी अध्याय के ३१ श्लोक में श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द अर्जुन से कहतेहैं

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः
शरीरस्थोऽपिकौन्तेय न करोति न लिप्यते

अर्थात् (कौन्तेय) हे अर्जुन ! अयम् अव्ययः परमात्मा यह अविनाशी परमात्मा शरीरस्थः अपि शरीर में टिकाहुआ भी अनादित्वात् निर्गुणत्वात् अनादि तथा गुणों से रहित होने के कारण नकरोति न तो कुछकरताहै न लिप्यते न किसी कर्म के फल में फंसताहै ॥

देखिये इन दोनों प्रमाणों से सिद्ध होताहै कि वह परमात्मा इसी शरीर में टिकाहुआ है किन्तु हमारे नवीनप्रकाशवाले यह कहपड़ेंगे कि अजी गीता वीता का प्रमाण तो मैं नहीं मानता मुझे वेदों से दिखलाओ कि परमात्मा प्राणियों के शरीर में स्थितहै। लीजिये वेदों से ही लिजिये

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वंवषट्कारआपोज्योतीरसोऽमृतम्

अर्थात् हे परमात्मा ! तू विश्वतोमुखः सब ओर से भूतेषुगुहायांअन्तश्चरसि सब जीवों के शरीर के भीतर प्रवाह करताहै सो तू कैसाहै कि यज्ञरूप है वषट्कार * है आपः जलरूप है अथवा सम्यक्प्रकार से सबका पालन करनेवाला है ज्योति है रस है औ अमृतहै यदि इस प्रमाण से भी आप सन्तुष्ट न हुएहों तो लीजिये शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा ही का प्रमाण लीजिये

ॐ हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

(शुक्ल० यजुर्वेद अध्याय १०) मन्त्र २४

अर्थात् हंसः (हंसो विहङ्गभेदे च परमात्मनी मत्सर इति) इस विश्वकोष के प्रमाण से हंस परमात्मा को कहतेहैं, वह कैसाहै शुचिषत् पवित्रस्थानों में अर्थात् तीर्थादिकों में निवासकरनेवाला, वसु सृष्टि-

* किसीवस्तु को देवताओं में अर्पण करने को वषट् कहतेहैं सो वह परमात्मा सर्व वस्तुओं के अर्पण किये जाने का स्थान है, इसलिये इसे वषट्कार कहाहै ॥

द्वारा अथवा अपने तेज द्वारा जगत को स्थित रखनेवाला, अन्तरिक्षसत् अन्तरिक्ष में निवासकरनेवाला, वेदिषत् अग्निरूप से अर्थात् यज्ञपुरुष होकर वेदिपर सुशोभित होनेवाला, अथवा सावाइयं सर्वैव वेदिः इस श्रुतिवचनानुसार सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को भी वेदि कहते हैं इसलिये यह भी कहसकतेहैं कि सम्पूर्ण पृथिवी पर निवास करनेवाला अतिथि सबों से पूज्य, दुरोणसद् यज्ञगृह में वासकरनेवाला, नृषद् मनुष्यों में निवास करनेवाला (इसी पद को विशेषकर दिखलानेका मेरा तात्पर्यहै) फिर वरसद् उत्कृष्टस्थान में निवासकरनेवाला इत्यादि ।

प्यारे सज्जनो ! समय थोड़ा है यदि सम्पूर्ण मंत्र का अर्थ करनेलगू तो विषय रहजावेगा इसकारण शेष भाग का अर्थ मंत्रप्रभाकर नाम पुस्तक जिस में मैंने सर्वसाधारण के कल्याण निमित्त चारों वेद औ भिन्न २ शाखा वालों की सन्ध्याके मंत्रों का अर्थ सरल हिन्दी भाषा में करदियाहै देखलेना—

प्यारे सभासदो ! इन मंत्रों से आप सज्जनों पर भलीभांति प्रगट होगयाहोगा कि परमात्मा इसी शरीर में निवासकरताहै, इसमें तनक भी शंका नहीं होसकती । अब आप मुझसे इतना तो अवश्य पूछ सकतेहैं कि यदि वह इस शरीर में है तो किस स्थान में है ! पांव में, हाथ में, अंगुलियों में, नाभी में, आंख में, कान में, अथवा दांत में ।

अब सुनिये मैं सुनाताहूं । योंतो सब जानतेहैं औ सब कहतेहैं कि परमात्मा इस शरीर में नख से शिख तक व्यापक है, रोम २ में प्रवेश कियेहुआहै, इतनाही नहीं वह शरीर के बाहर भी सर्वत्र फैला हुआहै किन्तु बुद्धिमानों को विचारपूर्वक मीमांसा करनीचाहिये कि कोई वस्तु चाहे स्थूल हो वा सूक्ष्म जब व्यापक होगी तो सदा वर्तुलाकार औ मण्डलाकार (مدور) (Circular) होगी अर्थात् उसके परिधि (دائرہ) (Circle) औ केन्द्र (مرکز) (Centre) अवश्य होंगे

क्योंकि गोलाकार वस्तु विना केन्द्र के नहीं होती, रेखागणित (اقليدس) (Geometry) के जाननेवाले इस विषय को भलीभांति जानते हैं । देखिये, इस आकाश की ओर देखिये, व्यापक है इसकारण जिधर से औ जहां से देखिये गोलाकार देखपड़ता है अतएव देखनेवाला इसका केन्द्र बनजाताहै । एक गूढ़तत्त्व और भी आपलोगों को कहसुनाताहूं वह यह है कि जितनी वस्तु वर्त्तुलाकार होती हैं उनकी सम्पूर्ण शक्ति उनके केन्द्र से निकलकर सर्वत्र फैलजाती है औ फिर सिमटकर अपने केन्द्र पर जा घन होजाती है, अर्थात् वर्त्तुलाकार पदार्थ का मुख्य स्थान उसका केन्द्रही होताहै । जैसे सूर्य औ उसकी धूप, चन्द्र औ उसकी चांदनी, दीपक औ उसकी ज्योति, अर्थात् धूप, चांदनी औ ज्योति अपने केन्द्र सूर्य, चन्द्र औ दीपक से निकल सर्वत्र फैलजातीहैं औ फिर सिमटकर इनही में घन होजातीहैं ।

प्रिय सभासदो ! इसीप्रकार उस परमात्मदेव की सत्ता हमलोगों के शरीर में नख से शिख तक व्याप रहीहै तो अवश्य उस का केन्द्र अर्थात् मुख्यस्थान इस शरीर के किसी विशेष अङ्ग में होहीगा इसलिये यह प्रश्न करना पड़ताहै कि वह अमूल्य रत्न इस साढ़तीन हाथ की पिटारी में कहांहै ? सुनिये एकाग्रचित्त होजाइये अब मैं आप को स्थान बतलाताहूं ।

प्यारे सज्जनो ! आप इस शरीर को एक गढ़ (क़िला) मानिये, जहां तहां सर्वसाधारण इसे कायागढ़ कहते भी हैं आपने भी प्रायः कई बार यह शब्द भजनों में गातेहुए सुनाहोगा, सो गढ़ कैसा अद्भुत औ विचित्र है श्रवण कीजिये । इसी गढ़ में वह स्थान दिखलाऊंगा ॥

इस गढ़के पांच भीत (शहरपनाह) हैं, सात तलघर (तहख़ाने)

हैं, साढ़ेतीनलक्ष कोठरियां हैं, सात मंजिले अर्थात् महल एकदूसरे के ऊपर बनेहैं, इनही में सबसे ऊपरवाले महल में वह महाराजाधिराज, त्रिलोकीनाथ, जगतपति, निवास कररहाहै। आप सुनकर घबड़ागयेहोंगे कि यह शरीर तो सम्पूर्ण हड्डी मांस औ रुधिर इत्यादि से भरा है इस में ये शहरपनाह, तहखाने कैसे औ कोठरियां कैसी ? इसलिये आपको ठीक २ समझादेना उचितहै। सुनिये—

ॐ आकाशद्वायु र्वायोरग्निरग्नेरापअद्भ्यः पृथ्वी अर्थात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल औ जल से पृथ्वी, येही पांचों तत्व इस शरीर के पांच शहरपनाह हैं। रोम, चर्म, मांस, रुधिर, अस्थि (हड्डी) मज्जा औ शुक्र (बीज) यही इसके सात तहखाने हैं। इड़ा, पिंगला सुषुम्णा, वज्रा, चित्रिणी, ब्रह्मनाड़ी, हस्तिजिह्वा, गांधारी, कुहू, पूषा, अलंबुशा, इत्यादि साढ़ेतीन लाख नाड़ियां इस गढ़की कोठरियां हैं। अब रहे सात महल सो सुनिये। मूलद्वार से दो अंगुल ऊपर औ शिश्न इन्द्रिय से नीचे जो सीवनी है वहां पहलामहल है जिसके चार द्वार हैं। शिश्न से ऊपर नाभी से नीचे जो पेडूहै वहां दूसरा महल है जिस के छः द्वार हैं। नाभी के मध्य तीसरा महल है जिसके दश द्वार हैं। हृदय पर चौथा महल है जिसके बारह द्वार हैं। गलेपर पांचवां महल है जिसके सोलह द्वार हैं। दोनों भौंहों के मध्य छठां महल है जिस में दो अद्भुत खिड़कियां लगीहैं जिनके बीचों बीच एक बलायती टेलिसकोप (Telescope) लगाहुआ है जिस होकर देखने से बहुत दूरपर एक हज़ारद्वारी अर्थात् सहस्रद्वार का एक महल देख-पड़ताहै इसी हज़ारद्वारी के बीचों बिच वह रत्न चमकरहाहै। आप समझगयेहोंगे कि इन महलों से क्या तात्पर्य है, अर्थात् चतुर्दल, षट्-दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल, द्विदल औ सहस्रदल, इनही सा-

लों पर्दो को सातमहल के नाम से जनायाहै । फिर बलायतीटेलिस-कोप का नाम सुनकर भी आप को हंसी आईहोगी और कुछ आश्चर्य्य हुआहोगा किन्तु जिनपुरुषों को गुरुकृपा से त्रिकुटी औ ब्रह्मरन्ध्र इत्यादि का कुछ बोध है वे समझगयेहोंगे कि त्रिकुटी से ब्रह्मरन्ध्र तक जो ब्रह्मनाड़ी सहस्रों सूर्य्य के समान प्रकाश करतीहुई चलीगई है उसी को बलायतीटेलिशकोप कहाहै । मुख्य तात्पर्य यह है कि सहस्रदल के बीचोंबीच अर्थात् कर्णिका में जिसे ब्रह्मरन्ध्र अथवा अमरगुफा भी कहतेहैं उस परमात्मा अर्थात् महेश्वर का निवासस्थान है ।

प्यारे सज्जनो ! मेरे इस कथन से आप सब समझगयेहोंगे कि इस शरीर में जो परमात्मदेव का स्थान ढूंढने चलेथे वह यही सहस्रदल की कर्णिका अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रहै । जैसे किसी गढ़ के उस महल के शृङ्ग पर जिसमें स्वयं गढ़पति निवास करता है एक पताका (झण्डी) लगादिया करतेहैं उसीप्रकार हमारे महर्षियों ने इस शरीररूप गढ़पर भी उस महेश्वर के स्थान को सूचित करने केलिये शिखा रूप झण्डी लगारखने की आज्ञा दीहै, जिस शिखा को आज हमारे नवीनप्रकाशवाले तर्बूज़ की दण्डी समझकर मस्तक से उखेड़ दूर फेकडालते हैं । इसी पवित्र शिखा के उजाड़डालने का यह फल है कि आप भी उजड़ेचलेजारहे हैं कहीं ठिकाना नहीं मिलता । क्याकरें किसी धर्मग्रन्थ को कभी पढ़ा नहीं, गुरुशरणागत हो कभी कुछ समझाबूझा नहीं फिर क्यों न झुंझलाकर अपनी शिखा आप उखाड़ अपने हाथ से अपने निरे मूर्ख रहने का दण्ड करलें ।

प्यारे श्रोतागण ! एक बात और मुझे स्मरण होआई है, वह यह है कि हमारे बहुतेरे नये २ जवान जिनको कुतर्क रूप विषधर ने डसलियाहै विष की ज्वाला में यों कहपड़ेंगे कि इस शरीर में ये चतुर्द-

लादि पद्म कहां हैं ! यदि होते तो डाक्टरों को मृतक चीरने के समय क्यों नहीं दीखपड़ते, बड़े शोक की बात है कि इन बेचारों को तनक भी बोध नहीं। भाइयो इन कमलों से ठीक २ कमल ही नहीं समझना चाहिये वरु कमलों से तात्पर्य्य यह है कि इस शरीर में जिसस्थान पर नाड़ियां जितनी ओर होकर निकलीहैं उतने उनके गुच्छ बनगये हैं इसीकारण इन गुच्छों को सूचित करने के लिये योगके विद्वानों ने पद्म अथवा चक्र सांकेतिक नाम रखलिया है, इसीकारण इनही चक्रों को डौक्टर लोग प्लेक्सस (Plexus) के नाम से पुकारते हैं । इन कुतर्की जवानों को उचित है कि डाकटरों से जाकर पूछें वे इनको अवश्य बतादेंवेंगे कि इन सातों चक्रों को अंग्रेजी में वे किन नामों से पुकारतेहैं, जबतक मैंही आपको संक्षिप्त कर सुना देताहूं सुनिये—

१. चतुर्दलपद्म = Pelvic Plexus
२. षड्दलपद्म = Hypogastric „
३. दशदलपद्म = Epigastric „
४. द्वादशदलपद्म = Cardiac „
५. षोड़शदलपद्म = Carotid „
६. द्विदलपद्म = Medulla Oblongata
७. सहस्रदलपद्म = Brain

प्यारे सभासद्यो ! चलिये अब अपने विषय की ओर चलें । इतना तो आप अवश्य समझगयेहोंगे कि इस शरीर में उस महेश्वर का निवासस्थान ब्रह्मरन्ध्र है किन्तु अब आप मुझे यह पूछिये कि उसकी प्राप्ति हमलोगोंको कैसेहो ? सो सुनिये, एकाग्रचित्त होजाइये, मैं फिर आपको एक रूपक बनाकर समझाताहूं ।

आप इस शरीर को गढ़ और ब्रह्मरन्ध्रनिवासी महेश्वर को हीरा

मानही चुके हैं, अब इस जीव को एक तस्कर (चोर) मानिये जो इस गढ़ से ऐसे उत्तम रत्न को चुरा लेजाने की इच्छा कर रहा है। अब इस चोर को उचित है पहले इस गढ़ के पांचों शहरपनाह में सेंध कोडे, फिर सातों तहखानों में घुमे, जब हीरा न मिले तो साढे-तीन लाख कोठारियों में ढूंढे यदि इन में भी न मिले तो सातों महलों पर धीरे २ चढ़जावे, जब सातवें महल के बीच अर्थात् सहस्रदल की कर्णिका में पहुंचजावे तब हीरा चुरा कर भागे। अहा! प्यारे सज्जनो! क्या यह कठोर कार्य आज इन पुरुषार्थ हीन प्राणियों से हो सकता है? क्या पांचों शहरपनाह में सेंध खोदना अर्थात् पांचों तत्वों को वशीभूत कर अन्तर्मुख हो शीत, उष्ण, दुःख, सुख, को सम करडालना, सुलभ है? कदापि नहीं क्योंकि ये शहरपनाह ऐसे दुःसाध्य हैं कि यदि इनमें से किसी एक में भी तनक न्यूनाधिक हो तो प्राणी व्याकुल होजावे, देखिये तनक अग्नि वाले शहरपनाह में इधर उधर होपड़े उसी समय १०९ दर्जे का ज्वर चढ़ जावे, हाय पानी लाओ! डाक्टर मगाओ! वैद्यजी के यहां जाओ! धूम मचजावे, फिर ऐसा कौन प्राणी है जो आज इस कलि में इनकी प्रबलता रोक अन्तर्मुख हो उस रत्न तक पहुंचसके। अब वे दिन नहीं कि पांचों पाण्डवों के समान तत्वों को विजय कर कोई हिमाचलके हिम में कूद ब्रह्म को प्राप्त करे यदि कोई वीर ऐसा होवे भी तो आगे सात तहखानों में घुसना अर्थात् रोम चर्म इत्यादि सात त्वचाओं के दुःख सुख की तनक भी चिन्ता न कर चित्तवृत्ति को एकदम ब्रह्म में लगादेना भी अत्यन्त कठिन क्योंकि अब वह समय नहीं कि वाल्मीकि के समान कोई प्राणी इस प्रकार अन्तर्मुख हो तप करे कि उस के शरीर पर वल्मीक जम जावे, कुश उपज जावे, तथापि उसे अपने शरीर की कुछ भी सुध न हो, आज तो तनक भी एक रोम कहीं किसी के हाथ तले पड़कर खींचने

लगे तो " हां हां छोड़ो छोड़ो मरा मरा " कह कर चिल्लाना पड़ताहै यदि कोई साहसी ऐसा होवे भी तो साढ़ेतीन लाख कोठरियों में ढूंढ़ना अर्थात् एक २ नाड़ी की चाल को पहचाननाभी कठिन, क्योंकि यदि एक २ नाड़ी के पहचान में कम से कम एक ही दिन लगे तो साढ़ेतीन लाख दिन चाहिये, जिस के ९७२ वर्ष कई महीने होतेहैं औ आज आयु ठहरी अधिक से अधिक ५० या ६० वर्षकी फिर कब संभव है कि ये अल्पायु प्राणी इन नाड़ियों का पता लगासकें, यदि ऐसा संभव भी हो तो सातों चक्रों को वेध ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचना कठिन। ऐसी दशा में यह तो संभव ही नहीं कि आजकल कोई प्राणी इस प्रकार कठिन परिश्रम कर उस रत्न तक पहुंचसके।

यह वार्ता सुन हमारे श्रोतागण घबड़ागयेहोंगे औ मनहीमन यह कहतेहोंगे कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर वालों ने क्या परमात्मा को कुछ उत्कोच (रिशवत, घूस) दियाथा कि उनको ऐसा साहसी औ पुरुषार्थी बनाया औ हम कलिनिवासियों को ऐसा निर्बल पराक्रमहीन औ अल्पायु बना किसी योग्य नहीं रखा, फिर क्या हमलोग उसके मिलने का कोई भी यत्न नहीं करसकते ?

प्यारे सभासदो ! घबड़ाने की कोई बात नहीं है, परमात्मा परमदयालु औ कृपासागर है, उसने सब छोटे बड़ों पर समान दृष्टि रखी है औ अपने २ समय औ अधिकारानुसार कठिन से कठिन औ सुलभ से सुलभ यत्न अपने मिलने का बताया है।

बहुत विलम्ब होगयाहै इसलिये पहले आप सब मिल एक मधुर स्वर से (हरेराम हरेराम राम राम हरेहरे) उच्चारण करलीजिये फिर मैं उस हीरा के चुरालेने का सुलभ यत्न बतलाताहूं।

अब विचारकर देखिये कि इस कायागढ़ की रचना कैसी गम्भीर है औ हीरा कैसे गुप्तस्थान में रखाहुआ है जहां कैसा भी चतुर तस्कर हो अपने बल औ पुरुषार्थ से कदापि प्रवेश नहीं करसकता किन्तु ऐसे गढ़ में प्रवेश करजाने की सुलभ रीति यह है कि चतुर तस्कर गढ़ के द्वारपाल से मित्रता करे, जब द्वारपाल से गहरी मित्रताई होजावेगी तब चोर को सेंध काटने वा कोठरियों में घुसकर रत्न के ढूंढ़ने की अवश्यकता नहीं रहेगी, चोर अपने मित्र द्वारपाल से वह छोटा गुप्त मार्ग जो कोशागार अर्थात खज़ाने के घर में पहुंचजाने का है जान लेवेगा क्योंकि द्वारपाल को गढ़ के कोशागार में प्रवेश करने का गुप्त मार्ग भली भांति ज्ञात रहता है।

अब आप यह पूछेंगे कि इस गढ़ का द्वारपाल कौन है ? उस से मित्रता का क्या यत्न है ? इसलिये अब हम सब मिल कर द्वारपाल का पता लगावें औ उस से मित्रता का उपाय करें॥

इस शरीर का मूल मस्तक है इसलिये जब मस्तक की ओर से चले तो पहले यह नेत्र मिला औ कहनेलगा कि इस शरीर का मैं ही द्वारपाल हूं क्योंकि यदि मैं न रहूं तो इस शरीर का सम्पूर्ण कार्य्य भ्रष्ट होजावे, यह सुन हाथ बोला तू यहां से निकलजा, मेरे रहते तेरा कुछ काम नहीं है, मैं रहूं तो स्पर्श द्वारा बतादूं कि यह अग्नि है, यह जल है, औ एक छोटी सी छड़ी ले जहां चाहूं चला जाऊं, इतने में पांव बोला अरे हाथ ! तू क्यो गर्व्व माररहाहै, यदि मैं न रहूं तो तू कैसे छड़ी लेकर जहां चाहे चलाजावे इसलिये मुख्य मैं हूं। एवम्प्रकार आंख, नाक, कान, इत्यादि सब इन्द्रियां परस्पर झगड़पड़ीं, जब बहुत दिनों तक परस्पर झगड़तीरहीं औ कुछ न्याय न करसकीं तब सबों ने यह सम्मति की कि चलो हम सब अपने रचनेवाले प्रजापति के समीप चल-

कर पूछें कि हमलोगों में कौन मुख्य है जो इसशरीर का द्वारपाल औ रक्षक कहाजाताहै ऐसे विचार सब मिल प्रजापति के समीप पहुंचीं ।

ॐ अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्यूदिरे अहꣳ श्रेयानस्म्यहꣳश्रेयानस्मीति ते प्रजापतिं पितरमेत्योचु भगवन् को नः श्रेष्ठ इति ॥

छान्दोग्योपनिषद् उत्तरार्द्धे, पंचमप्रपाठक श्रुति ॥ ६ ॥

अर्थात् सब इन्द्रियां अपनी २ श्रेष्ठता के निमित्त परस्पर झगड़ती हुईं औ यह कहतीहुई कि मैं श्रेष्ठहूं मैं श्रेष्ठहूं प्रजापति पितरके समीप पहुंचकर बोलीं भगवन् ! हमलोगों में कौन श्रेष्ठ है ?

तब प्रजापतिने उत्तर दिया—

ॐ तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥

अर्थात् तब प्रजापति ने उनको कहा कि तुमलोगों में से जिसके निकलजाने से यह शरीर अत्यन्त पापी होजावे स्पर्श करने के योग्य नरहे वही तुमलोगों में श्रेष्ठ है।

इस आज्ञा के अनुसार एक २ इन्द्रियने इस शरीर से निकलना आरंभ किया—

ॐ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला

अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तोमनसैवमिति प्रविवेशह वाक्॥ ८॥

अर्थात् सब से पहले जिह्वा निकलगई औ एक वर्ष तक अन्य स्थान में निवासकर लौटकर इस शरीर से पूछनेलगी, मेर बिना तुम सालभर कैसे जीते रहे ? शरीर ने उत्तर दिया जैसे गूंगाः बिना बोले प्राण से श्वासोच्छ्वास करताहै, आंखों से देखता रहताहै, कानोंसे सुनाकरताहै, मन से ध्यानकरतारहताहै, ऐसेही हम केवल बोल नहीं सकतेथे किन्तु और सब काज करतेरहे हमारी कोई हानि नहीं हुई। यह सुन जिह्वा लज्जित हो फिर शरीर में प्रवेश करगई ॥

तत्पश्चात्—

ॐ चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९॥

अर्थात् नेत्र निकलगया एक वर्ष दूसरे स्थान में निवासकर लौटकर इस शरीर से पूछा कि तुम इतने दिनतक मेरे बिना कैसे जीतेरहे ! शरीर ने उत्तरदिया जैसे अन्धा विना देखे प्राण से श्वास लिया करता है, वचन द्वारा बोलताहै, कानोंसे सुनाकरताहै, औ मनसे ध्यान करतारहताहै ऐसे हम ने तुम्हारे बिनाही इतना समय आनन्दपूर्वक व्यतीत किया हमारी किसीप्रकार की भी हानि न हुई, तब नेत्र भी लज्जित हो शरीर में प्रवेश करगया ॥

तत्पश्चात्—

ॐ श्रोत्रंहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकततें मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तोमनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम्

(पूर्व श्रुतियों ही के समान अर्थ स्पष्ट है) ॥ १० ॥

अर्थात् कान भी निकलकर वर्ष के पश्चात् लौटकर उक्तप्रकारही उत्तरपा लज्जितहो शरीर में प्रवेश करगया।

एवम्प्रकार सब इन्द्रियां एक २ निकल गईं किन्तु जब शरीरकी कुछ हानि नहुई तब मन को यह अहंकार हुआ कि मैं इन इन्द्रियों का राजाहूं ये सब मेरे अधीन हैं इसकारण मैं ही इस शरीर का द्वारपाल औ रक्षकहूं, किन्तु इन्द्रियां इसके इस अहंकार को न सहन करसकीं औ बोलीं तू भी निकल कर देखले, तब—

ॐ मनोहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकततें मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्रणान्तःप्राणेन, वदन्तोवाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तःश्रोत्रेणैवमितिप्रविवेशहमनः ॥ ११

मन भी शरीर से निकलगया वर्षपर्य्यन्त अन्यत्र निवासकर लौटकर शरीर से पूछा तुम मेरे बिना कैसे जीवितरहे ! शरीर ने उत्तर दिया जैसे छैमास का छोटा बालक मन रहित रहताहै किसी प्रकार का

संकल्प विकल्प कुछ नहीं करता किन्तु प्राण से श्वास लेताहुआ, मुंह से बोलताहुआ अर्थात् रुदन इत्यादि करताहुआ, नेत्र से देखताहुआ कान से सुनताहुआ जीवित रहताहै ऐसे हम भी रहे, यह सुन मन लज्जितहो शरीर में प्रवेश करगया ॥

एवम्प्रकार यह मन सब इन्द्रियों के साथ बिचारनेलगा भाई हम में तो कोई भी मुख्य नहीं देखपड़ता फिर पता तो लगाना अति आवश्यक है, ऐसे कुछदिनों तक शोचते बिचारते जब इनकी व्याकुलता बढ़ी तब यह प्राण, जो (हं) उच्चारण करता बाहर जाताहै औ (सः) कहताहुआ भीतर आताहै अर्थात् (हंसः हंसः) अहर्निश करता रहताहै, यों बोलउठा—भाई इन्द्रियों! तुम अपने राजा मन के साथ इस शरीर में दृढ़ता पूर्वक टिकेरहो, देखो चेतन्य होजाओ, संभलबैठो होशियार होजाओ, देखो सब अपनी २ शक्ति अनुसार अपनी २ रक्षा करो, अब मैं निकलताहूं—

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिष्यन्त्स यथासुहयः पड्वीशशंकून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तꣳहाभिसमेत्योचु भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोसिमोत्क्रमीरिति ॥ १२ ॥

अर्थात् जब प्राण ने इस शरीर से निकलने की इच्छा की तो जैसे कोई सुन्दर अश्व अपने स्थान से भागने के समय अपने आगे पीछे के बन्धनों को तोड़ता गाड़ीकी धुरी इत्यादि को उखाड़ता सवारको पैरों से कुचलता निकलजाता है ऐसे इस प्राण के निकलतेही इन्द्रियां शिथिल होने लगीं, इन में हाहाकार मचगया, सब की सब अत्यन्त व्याकुल हो प्राण के समीप आ हाथबांधकर बोलीं भगवन्! तुमही हम

लोगों के रक्षक हो तुम न निकलो ! न निकलो !

प्यारे सभासदो ! उक्तश्रुतियों से भलीभांति सिद्धहोता है कि इस कायागढ़ का रक्षक द्वारपाल (पहरुआ) यही प्राणहै, जब से यह शरीर उत्पन्न हुआहै यह पहरुआ एक पल भी पहरा से चूकता नहीं, चाहे आप किसी भी काज में फंसे रहिये यह अहर्निश हँसः सोहँ कहताहुआ आपको चैतन्य कररहाहै औ पुकार २ कर कहरहाहै जागो ! जागो !! सोऽहँ सो मैंहूं मेरी ओर देखो ! किन्तु आप नानाप्रकार के द्वन्द्वों में फंसेहुए इसकी ओर तनक भी ध्यान नहीं देते—शिवसंहिता में शिवजी पार्वती से कहतेहैं कि हे प्रिये—

कायानगरमध्ये तु प्राणोहि रक्षपालकः ।
प्रवेशो दशभिःप्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलम् ॥

इस काया के नगर में प्राणही रक्षपालक है अर्थात् पहरुआहै, जैसे पहरुआ किसी गढ़ के फाटक पर पहरादेते फाटक से दोचार पग भीतर औ दोचार पग बाहर आता जाताहै इसीप्रकार यह प्राण रूप पहरुआ भी शरीर के नासिका रूप फाटक पर पहरा देताहुआ दस अंगुल भीतर और द्वादश अंगुल बाहर निकलताहै । जिसी समय यह पहरुआ.पहरादेने से चूका शरीर रूप गढ़ छिन्न भिन्न हुआ—

यह तो आप ने श्रुति औ संहिता के प्रमाण से सुना अब व्यवहार से भी विचार कीजिये कि जैसे किसी घर के रहनेवाले जबतक जागेरहतेहैं तबतक ऐसा भी होसकताहै कि पहरुआ किंचित् धीरे २ पहरा देवे परंच जब घरवाले अचेत सोजातेहैं तो पहरुआ पूर्ण रीति से उच्चस्वर के साथ पहरादेने लगताहै, इसी प्रकार जब तक इस कायारूप

घर में सब इन्द्रियां जगी रहतीहै तबतक तो यह प्राण कुछ धीरे २ भी पहरादेताहै परन्तु जब अचेत सोजातीहैं तब उच्चस्वर से हंसः हंसः उच्चारण करताहुआ बड़े खर्राटे के साथ पहरा देताहै।

चलिये अब अपने विषय की ओर चलें। थोड़ीदेर पहले जो हम लोग पहरुआ के ढूंढ़ में चलेथे सो, अब पतालगगया कि वह पहरुआ द्वारपाल यही प्राण है।

इसी द्वारपाल के साथ यदि हमलोग मित्रता करें अर्थात् इसका संग करें, इसके साथ जहां २ यह जावे तहां २ हम भी फिरें तो अवश्य वह परमात्मा रूप हीरा जो इसशरीर में गुप्त रीति से रहताहै प्राप्त करलें।

अब आप यह पूछें कि इस प्राणरूप द्वारपाल के साथ मित्रता करना क्या है, औ कैसे की जाती है औ वह कौनसी विशेष क्रियाहै जिसके द्वारा यह मित्रता सिद्ध होतीहै! सो सुनिये— इस द्वारपाल के साथ मित्रता करने का नाम प्राणायाम है वह पूरक, कुम्भक, औ रेचक के साथ कियाजाताहै, औ सन्ध्या ही एक विशेष क्रियाहै जो इस मित्रता को अर्थात् प्राणायाम को पूर्णरीति से अभ्यास करादेताहै अर्थात् सन्ध्या में मुख्य साधन प्राणायामहीहै जिसको गुरु द्वारा ठीक २ जानकर कम से कम द्वादश वर्ष पर्य्यन्त अभ्यास करने से यह प्राण मन को अपने साथ २ लिये ब्रह्मरन्ध्र को जाताहै औ परमात्मा रूप रत्न की प्राप्ति करादेताहै। तात्पर्य्य यह कि जब प्राण औ मन दोनों साथ २ ब्रह्मरन्ध्र को गमन करतेहैं तब परमशान्ति प्राप्त हो वृत्ति ब्रह्माकार होजाती है, अपने स्वरूप का साक्षात्कार होजाताहै, अर्थात् परब्रह्मरूप रत्न की प्राप्ति होजातीहै। अब मैं आपको स्पष्टरूप से यह

दिखलादेताहूं कि प्राणायाम से प्राण औ मन दोनों मित्रों का प्रवेश ब्रह्मरन्ध्र में क्यों होजाता है औ यह जीव सर्वप्रकार के घोर और कठोर बन्धनों को तोड़ शिव रूप क्यों होजाता है ॥ सुनिये

दुग्धाम्बुवत्सम्मिलितावुभौतौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि । यतोमनस्तत्रमरुत्प्रवृत्ति र्यतो मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्यनाशएकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः । अध्वस्तयोश्चेन्द्रियवर्गवृत्तिः प्रध्वस्तयोर्मोक्षपदस्यसिद्धिः ॥ २ ॥

अर्थात् मन औ मरुत् (प्राण) दोनों तुल्य क्रिया वाले एकसाथ दूध औ पानी के समान मिलेहुए हैं इसकारण जहां २ मन जाताहै अर्थात् जिन २ कामों में मन की प्रवृत्ति होतीहै तहां २ मरुत् (प्राण) की भी प्रवृत्ति होतीहै औ जहां २ प्राण की प्रवृत्ति होतीहै तहां २ मन की भी प्रवृत्ति होतीहै ॥ १ ॥ इसलिये यदि इनमें से एक का नाश अर्थात् निवृत्ति होजावे तो दूसरे की भी निवृत्ति हो औ यदि एक की प्रवृत्ति हो तो दूसरे की भी हो । इसलिये प्राण औ मन ये दोनों जब अध्वस्त होतेहैं अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र को छोड़ संसार की ओर मुख करतेहैं तब इन्द्रियों की वृत्ति का प्रवाह आरंभ होताहै अर्थात आंख देखने लगतीहै, कान सुनने लगताहै, जिह्वा बोलने लगतीहै इत्यादि २ औ जब ये दोनों प्रध्वस्त होते हैं अर्थात बाहर से मुख मोड़ प्राणायाम द्वारा ब्रह्मरन्ध्र की ओर प्रवाह करतेहैं तो मोक्षपद की सिद्धि होतीहै ॥

प्रिय सभ्यगण ! आजकल के बहुतेरे नवीन डाक्टरसाहब (अंग्रेज़ी वैद्य) औ कोरी अंग्रेज़ी के नवशिक्षित तो बड़े अभिमान के

साथ यों कहपड़तेहैं कि प्राणायाम झूठी क्रियाहै, प्राण तो कभी बाहर से मुड़कर भीतर प्रवाह करही नहीं सकता औ न इसका निरोध होसकताहै यदि ऐसा हो तो प्राणी मृतक होजावे. इसलिये मैं इनको यह स्पष्टरूप से दिखलादेताहूं कि यह प्राण अन्तर्मुख प्रवाह भी करताहै, इसका निरोध भी हो जाता है औ प्राणी जीवीत भी रहता है। सुनिये—

येही डाकटर इस बात को भलीभांती जानतेहैं कि गर्भ में दसमास तक बालक किसप्रकार निवास करताहै, गर्भ में बालक की आंख कान, नाक, और मुंह के छिद्र उसके हाथ के दशों अंगुलियों से ढ़के औ बन्द रहतेहैं, जैसे मनुष्य नदी इत्यादि में स्नान के समय अपने अंगूठों, औ अंगुलियों से कान नाक इत्यादि के छिद्रों को रोक डुबकी लगाताहै इसीप्रकार माता के गर्भ में बालक के दोनों अंगूठों से दोनों कानों के छिद्र, दोनों तर्जनियों से दोनों आंखों के छिद्र, दोनों मध्यमाओं से नासिका के दोनों पुरे ढ़केरहतेहै औ दोनों अनामिका ऊपरवाले होंठको दोनों कनिष्ठिका नीचले होंठको भलीभांति दृढ़ताके साथ दबायेहुए मुखको ढ़क रखतीहैं औ बच्चा गर्भ के उल्व (झिल्ली) से पोटली के समान बंधारहताहै। अब डौक्टरसाहब से पूछिये तो सही कि उस बच्चे में प्राण है वानहीं! उनको अवश्य कहनापड़ेगा, है, फिर पूछिये वह प्राण ब्रह्मरन्ध्र की ओर है वा बहिर्मुख! उनको झकमार कर कहनापड़ेगा कि अन्तुर्मुख ब्रह्मरन्ध्र की ओर प्राण का प्रवाह है, फिर पूछिये वह बच्चा जीवित है वा मृतक? अवश्य कहनापड़ेगा जीवित, अर्थात् दसमहीने तक इस शरीर के भीतर प्राण अन्तर्मुख ब्रह्मरन्ध्र की ओर प्रवाह करताहुआ मानो निरोध हुआ इस प्राणी को जीवत रखताहै इससे सिद्ध हुआ कि प्राण का अन्तर्मुख प्रवाह औ निरोध होने से भी प्राणी जीवत रहसकताहै॥

अव भलीभांति विचार देखिये कि यदि ये छिद्र अर्थात् मुख औ नासिका बन्द करदियेजावें तो प्राण औ मन फिर ज्यों के त्यों अन्तर्मुख प्रवाह करतेहुए ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्मरूप हीरा के समीप पहुंच आनन्द लाभकरें, औ यह जीव शिव रूप होजावे ॥

अब वह कौनसी क्रियाहै जो **प्राणायाम** को बतलातीहै। मैं बार २ कहचुकाहूं और फिर वोही कहूंगा—सन्ध्या ! सन्ध्या !! औ सन्ध्या !!!

प्यारे सभासदो ! अब आप भलीभांति समझगयेहोंगे कि ब्रह्म-विद्या की प्रथम श्रेणी सन्ध्या से **प्राणायाम** अर्थात् प्राणरूप द्वारपाल के साथ मित्रता औ इस मित्रता से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश औ इस प्रवेश से परमात्मादेव रूप हीरा की प्राप्ति अवश्य होतीहै ।

यहीं आपका विषय सिद्ध होगया अर्थात् ब्रह्मविद्या की प्रथम श्रेणी सन्ध्या से जो पूर्व में चार प्रकार के लाभ कथन करआयाहूं उनमें एक लाभ अर्थात् सन्ध्यासे ब्रह्म की प्राप्ति यहां सिद्ध होगई ॥

अब रहा यह कि वह **प्राणायाम** कैसे कियाजाताहै औ पूरक, कुम्भक, रेचक की क्या रीतिहै ? किसी गुरु द्वारा सीखलो; तुम्हारा गुरु तुमको गुप्त रीति से बतलादेवेगा । यद्यपि इनदिनों गुरुप्रणाली के भ्रष्ट होजाने से इस गुप्तरहस्य के शिक्षक बहुत थोडे रहगयेहैं तथापि ऐसा कदापि भूलकर भी न समझना चाहिये कि एकदम इसका बीजही जा-तारहा, परमात्मा की सृष्टि में जितने पदार्थ हैं, जितनी विद्या हैं, जितनी योनियां हैं, जितने देव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, रक्ष, इत्यादि हैं, बीज किसी का भी नष्ट नहीं होता, समय के हेरफेर से केवल न्यूनाधिकता होती रहती है, इसलिये किसी ऐसे पुरुष के शरणागत हो जाओ जो तुमको यह क्रिया भलीभांति बतासके, जब कुछ पुरुषार्थ कर, निर्भय हो, श्रद्धा औ

विश्वास पूर्वक ढूंढ़ोगे तो अवश्य पाओगे ॥

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ ॥

کہ جویندگاننں یابندگاں

श्रुति की भी आज्ञाहै कि—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत ।

अर्थात् उठो २ ! जागो २ ! प्राप्तवरों को अर्थात् जिनों ने तत्वलाभ कियाहै उनको जानो ।

कोई समय ऐसा था कि बचपन ही से यह क्रिया बताईजातीथी अर्थात् जिसी दिन यज्ञोपवीतसंस्कार होताथा उसी दिन से माणवक अर्थात् बालक ब्रह्मचारी होकर २५ वर्ष की अवस्थातक श्रीगुरुदेव के शरणागत रह वेदाध्ययन करताथा औ सन्ध्या सीखताथा औ थोड़ेही काल में प्राण औ मन को अन्तर्मुख करने की रीति जानजाताथा किन्तु अब इस उपनयनसंस्कार की दशा देख शोक होताहै, नेत्रों से अश्रु निकल पड़तेहैं कि बालक यज्ञोपवीत के पश्चात् २५ दिवस भी गुरु के समीप नहीं रहता, दूसरेही दिन वरु उसी दिन नाममात्र वेदाध्ययन कर समावर्त्तन कर स्नातक होजाताहै अर्थात् गृहस्थ बनजाताहै । उपनयन क्या है मानो नाटक का खेलहै ।

मेरे प्यारे सज्जनो ! इस सभाभूमि में बहुतेरे पुरुषार्थहीन प्राणी इधर उधर बैठे यह शोचरहे होंगे कि चलो जी ! इन बखेड़ों में कौन पड़े, भला हमलोगों को तो प्रातःकाल बिछावन से उठतेही चाह पानी चाहिये, फिर थोड़ी देर में टिफ़न चाहिये, पश्चात् भोजन कर कचहरियों में जा रुपये कमा घर पर आ सायंकाल से हिसकी औ रम नामक शराब में दम लगाना चाहिये, चलो कहां की सन्ध्या औ किसकी

गायत्री । अजी ! " *Eat, drink, & be merry, that's all* " खाओ, पीओ, मस्त रहो, बस इसी में सब है कैसा परमात्मा औ कहां की मुक्ति, सब बखेड़े की बातें हैं । बहुतेरे जो इन से कुछ अधिक विचारवान् हैं वे यों कहते हैं कि यह क्रिया अत्यन्त कठिन है, यह क्या हमलोगों से पूरी होसकती है, इसके लिये पूर्ण आयु चाहिये, हमलोगों ने यदि इसमें हाथ भी लगाया औ इसके पूर्ण होनेसे प्रथमही मृत्युवश होगये तो इस से क्या लाभ ? प्यारे सभासदो ! इनमें *Eat, drink & be merry.* अर्थात खाओ, पीओ, मस्तरहो कहनेवालों का तो शीघ्र उत्तर करना कठिन है क्योंकि ये नास्तिक(*Ethiest*) हैं, ये ईश्वर अथवा परलोक नहीं मानते फिर इनको सन्तुष्ट करने के लिये ईश्वर की स्थिति पर जब कम से कम तीन चार दिवस वक्तृता दीजावे तो ये कुछ समझें, अब आज समय थोड़ा रहगया इस कारण आज इस विषय को स्पर्श न करके मैं केवल ईश्वर से यही प्रार्थना करूंगा कि हे देव ! तू इन पुरुषों की बुद्धि सात्विक कर इन्हें आस्तिक बना दे । अब रहे वे दूसरे, जो यों कहाकरते हैं कि यदि इस क्रिया में हाथ लगाया परन्तु समाप्ति न करसके मध्यंही में मृत्यु वश होगये तो क्या लाभ ! उनका उत्तर यह है कि जो प्राणी इस क्रिया में श्रद्धापूर्वक हाथ लगावेगा औ पूर्ण होने से पूर्वही काल के गाल में चला जावेगा तो अवश्य इस क्रिया के प्रभाव से किसी पवित्र धनवान् के कुल में अथवा किसी योगी के कुल में उत्पन्न होगा जहां फिर उस आगे क्रिया के सिद्ध करने का पूर्ण अवकाश मिलेगा इसकारण इस क्रिया में विचारशील प्राणियों को तो आलस्य परित्याग शीघ्र प्रवेश ही करजाना चाहिये । सुनिये—

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो हि जायते ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ४१, ४२.)

अर्थात् जो प्राणी योग पूर्ण न करसका मध्य में काल के आगमन से अथवा और किसी विशेष कारण से उसका योग भ्रष्ट होगया तो वह पुण्य करनेवालों के लोक को पाकर अर्थात् स्वर्गादि लोकों में अनेक वर्ष निवासकर अति पवित्र धनवान् के कुल में उत्पन्न होताहै । अथवा बड़े बुद्धिमान् योगियों के कुल में जन्म लेताहै । सो हे अर्जुन ! लोक में ऐसा जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४१, ४२; ॥

प्यारे भारतनिवासियो ! आप निश्चय कर जानिये कि जो प्राणी पूर्वजन्म में इस क्रिया को थोड़ी भी करलेगा उसकी गति अवश्य बनजावेगी, दूसरे जन्म में वह अवश्य किसी उच्च कुल में उत्पन्न होगा, यदि किसी विशेष कारण से अथवा युग के प्रभाव से उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी कुछ काल तक किसी दुःसङ्ग में फंसजावेगा तथापि जिस समय उसकी पूर्वक्रिया का फल उदय होगा किसी न किसी प्रकार प्रेरणा कर झट् उस दुःसङ्ग से छुड़ा श्यामसुन्दर के चरणों में लगादेवेगा इसकारण मैं अपने उन श्रोताओं से (जो यह चिन्ता कररहेहोंगे कि मैं तो अमुक दुष्कर्म में ऐसे फंसगयाहूं कि छूटना कठिनहै, मैं कैसे छूटूंगा औ कैसे परलोक सुधारूंगा) पुनःपुनः कहकर यह निश्चय करताहूं कि वे किसी प्रकार की चिन्ता न करके आलस्य छोड़ पुरुषार्थ की ओर कटिबद्ध होजावें फिर देखें परमात्मा उनकी कैसी सहायता करताहै औ किसप्रकार अपने चरणों में लगालेताहै ।

अब मैं अपने श्रोताओंको एक ऐसे पुरुष की कथा श्रवण कराताहूं जो पूर्वजन्म की क्रिया के प्रभाव से उच्चकुल में उत्पन्न हो कालवशात् दुःसङ्ग में फंसगया किन्तु जिस समय उस का फल उदय हुआ उसे झट् दुःसङ्ग से छुड़ा श्यामसुन्दर के चरणारविन्दों के सन्मुख करादिया। एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिये—

कथा बिल्वमङ्गल
(सूरदास)
की

प्रियसभासदो! भारत के दक्षिणप्रान्त में बिल्वमङ्गल नाम सूर परमभक्त हुएहैं आप वीणा नदी के तटपर निवास करतेथे, पूर्वजन्म की उच्च क्रिया के कारण ब्राह्मणकुल में जन्म पाया किन्तु किसी विशेष दुःसङ्ग से चिन्तामणि नाम की वेश्या से जो वीणा नदी के दूसरे तटपर निवास करतीथी स्नेह होगया, यह स्नेह बढ़ते २ यहांतक बढ़ा कि विना उस वेश्या के देखे एकदिवस एक कल्प के समान व्यतीत होताथा कालवशात् आप के पिता का स्वर्गवास होगया। पिता के श्राद्ध का दिन आया आप ने विधिपूर्वक श्राद्ध की पूर्ति की, ब्राह्मणभोजन इत्यादि कराते अर्द्धरात्रि होगईथी, उस समय अपनी वेश्या से मिलने की इच्छा हुई, झट् गृहसे बाहर निकल नदी के पार वेश्या के समीप जाने का संकल्प किया किन्तु श्रावण मास होने के कारण घोरवृष्टि होरहीथी, मूशलाधार जल बरस रहाथा इसलिये बिल्वमंगल को गृह के भीतर लौट जानापड़ा परन्तु वेश्या के प्रेम ने ऐसा व्याकुल किया कि किसीप्रकार चित्त नमाना फिर गृह से बाहर निकल इधरउधर देखा तो वृष्टि ज्यों की त्यों होरहीहै एवम्प्रकार जब गृह से बाहर निकलते औ प्रवेशकरते कई बार होगये परन्तु वृष्टि ने उधर अपना रंग न छोड़ा

औ इधर आपका चित्त रोके न रुका विचारनेलगे कि जो हो, हो, किन्तु विना वेश्या के देखे मुझे शान्ति नहोगी, फिर तो उस मूशलाधार जल का क्लेश सहनकरतेहुए वीणानदी के तटपर पहुंचे क्या देखतेहैं कि नदी भयङ्कररूप दिखलारहीहै, लहरें बड़े वेग के साथ पड़रहीहैं, जिसमें पडनेसे मनुष्य टुकड़े २ होजावे तथापि अपने प्रेम के तरंग में एकबारगी अपने को उस नदी में डालदिया औ यों विचारा कि चलो किसी न किसीप्रकार बहते बहाते उसकिनारे लगरहूंगा।

अहा प्यारे सभासदो ! जब श्यामसुन्दर ने देखा कि विल्वमंगल वेश्या के प्रेम में ऐसा मत्त होरहाहै कि उसे तनक भी अपने प्राण का भय नहीं है तो ऐसे उत्तम प्रेम पर अत्यन्त प्रसन्न हो यह विचारा कि यह प्रेम वेश्या के योग्य नहीं यह मेरे योग्य है, यदि वह प्रेम वेश्या से छूट मुझमें लगजावे तो यह विल्वमङ्गल अद्वितीय महात्मा बनजावे इसलिये उचितहै कि इसकी रक्षाकर किनारे लगादूं, परमात्मा की प्रेरणा से विल्वमङ्गल के आगे एक मृतक बहताहुआ देखपड़ा रात्रि अंधेली थी आपने समझा कि वेश्या ने मेरे लिये नावड़ी भेजदीहै, आप उसपर चट चढ़बैठे औ बहते २ दूसरे किनारे जालगे, अपनी नावड़ी एक छोटी सी झूरी से बांध वेश्या के घर पहुंचे द्वारबन्द था, वेश्या अपने भृत्यों सहित गाढ़ निद्रा में सोरहीथी बहुत पुकारनेपर भी जब कोई न बोला आप उस घर के चारों ओर फिरनेलगे औ विचारनेलगे कि यदि कोई मार्ग किसी ओर पाऊं तो भीतर प्रवेश करूं अकस्मात् क्या देखा कि एक अजगर सर्प घर की दीवाल से लगाहुआ लटकरहाहै. आपने समझा भीतर आने के लिये वेश्या ने रस्सा लटकादियाहै चट उसे पकड़लिया. पकड़तेही वह सर्प कुण्डलाकार होनेलगा, यहांतक कि विल्वमङ्गल दीवाल के सिरे तक पहुंचे औ उस सर्प को छोड घर के भीतर कूद

जहां वेश्या सोईहुईथी पहुंच उस के मुख से चादर खींच उसे जगा दिया जब उसकी आंखें खुलीं देखा विल्वमंगल सामने खडा है पूछा प्यारे विल्वमंगल! आज क्या है जो तुमको इतना विलम्ब हुआ? आपने विलम्ब का कारण कह सुनाया फिर वेश्या वोली तुम अंधेली रात्रि में नदी पार कैसे आये? और इस मेरे गृह के भीतर कैसे प्रवेश किया, आपने अपनी नावडी और रस्से का वृतान्त कह सुनाया, ईश्वर की प्रेरणा से वेश्या के जी में यह बात समाई कि देखूं तो सही यह कैसे रस्से पर लटक कर आया, दीपक संग ले दोनों साथ २ उस रस्से तक आये क्या देखते हैं कि एक भयंकर भुजंग भींत से भिडा हुआ क्रोध से भिन्ना रहा है चाहता है कि यदि किसी को पाऊं तो काटखाऊं क्योंकि जब से उस का पुच्छ विल्वमंगल ने पकड लियाथा तब से वह मारे क्रोध के फूत्कार छोड रहाथा. देखतेही दोनों भयभीत हुए फिर दोनों नदी के तट पर नावडी देखने गये क्या देखते हैं कि एक मृतक झूरी से बँधा हुआ है।

प्यारे सभासदो! इन वृत्तान्तों को देख वेश्या बहुत घवडाई और विल्वमंगल की ओर देख वोली- अरे विल्वमंगल! तू विचार तो सही यदि यह मृतक पानी की लहरों में उलट पडता और यह भयंकर भुजंग तुझे डस लेता तो तेरी क्या दशा होती। अरे मूर्ख तेरी ऐसी प्रीति जो मुझ अपवित्र वेश्या में है यदि यही प्रीति तेरी वृन्दावन विहारी से होती तो तू न जाने कितनी श्रेष्ठता को प्राप्त होता और किस महत्व को पहुंच जाता, तेरे कई पीढियों के पूर्वजों के उद्धार होजाते। अरेविषयी! तू तनक सोच तो सही! इस मेरे शरीर में जो केवल चर्म मांस का विकारहै तेरे इतना प्रेम करने से तेरा क्या काज सरेगा? देख तो सही! तू विप्रवंश में क्यों धब्बा लगारहाहै।

हा प्यारे बिल्वमङ्गल ! तू जा ! मेरे इस स्नेह को छोड़ ! उसी श्याम सुन्दर से प्रेमकर । देख श्रीमच्छङ्कराचार्य ने तेरे ऐसे पुरुषों के उद्धार निमित्त कैसा उत्तम वचन कहाहै—

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्या मायामोहावेशम् ॥
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥
भजगोविन्दं भजगोविन्दं भजगोविन्दं मूढ़मते ॥

प्यारे बिल्वमङ्गल ! तू केवल कामवश होकर मेरे संग क्यों अपने को नष्ट कररहाहै ? क्या तू नहीं जानता कि इस पृथ्वीमण्डल में परमात्मा ने जितने दोष उत्पन्न किये उनमें सब से बड़ा यह कामविकार है । देख श्रीहरिरायजी महाराज ने अपने ग्रन्थ कामदोषनिरूपण में कैसा लिखा है कि:—

दोषेषु प्रथमः कामो विविच्य विनिरूप्यते ।
यस्मिन्नुत्पद्यते तस्य नाशकःसर्वथा मतः १
विषयाऽऽवेशहेतुत्वाद्विक्षेपोत्पत्तिकारणम् ।
रजोगुणसमुत्पन्नो रजःप्रक्षेपको मुखे २
ब्रह्मावेशविरोधी च सद्बुद्धेर्बाधको मतः ।
सत्कर्मनाशकः सर्वप्राकृतासक्तिसाधकः ३

इत्यादि इत्यादि

अर्थात् भलीभाँति विचारने से महात्माओं ने यही निश्चय कियाहै कि सबदोषों में प्रथम कामही है क्योंकि जिस प्राणी में यह कुठौर उत्पन्न होताहै उसको नाशही करडालताहै औ सर्वप्रकार के विषयों के प्रवेशहोने का औ विक्षेपों की उत्पत्ति का कारण है औ रजोगुण से उत्पन्न होने के कारण मुंहमें रज का प्रक्षेपण करताहै, ब्रह्मज्ञान का तो

सदा यह विरोधी ही है, सद्बुद्धि का बाधक औ सत्कर्मों का नाश करनेवालाहै, फिर संसार में जितनी प्रकृतिजन्य आसक्तियां मन को अपनी ओर फंसानेवाली हैं उनका यह पूर्ण साधकहै, तात्पर्य्य यह कि काम जिसको फंसाताहै अकेला नहीं वरु अपने संगी मद्य, मांस, जूआ चोरी, सबको लियेआताहै इसकारण हे प्यारे विल्वमङ्गल ! तू अपने मन से कामसुख को त्याग श्यामसुन्दर के चरणों में दृढ़ प्रीति कर

प्यारे श्रोतृगण ! क्याही आश्चर्य है ! कैसी परमात्मा की अद्भुत लीला है ! क्या आप लोगों नें कभी ऐसा भी सुना है कि वेश्या अपने जारों को इस प्रकार ज्ञान औ भक्तिरसमय बचनों का उपदेश करे, कदापि नहीं, किन्तु यह श्यामसुन्दर की प्रेरणा थी जिसने कृपा कर विल्वमंगल के शरीर में प्रेम रूप रत्न को देख उस प्रेम को उत्तम प्रकार काम में लाने के लिये मानो सरस्वती देवी को उस वेश्या की जिह्वा पर बैठाल इस प्रकार सदुपदेश करा दिया । अधिक आश्चर्य तो यह है कि कामियों के हृदय में बड़े २ आचार्य औ महात्माओं के उपदेश का कुछ फल नहीं होता सो विल्वमंगल को वेश्या के उपदेश का यह फल हुआ कि आपने एकदम छोड़ छाड़ एक लिंगोटी औ कमण्डल ले साधु का वेष बना उस वृन्दावनविहारी की ढूंढ में श्री वृन्दावन की ओर चल निकले । अबतो मत पूछिये, उस श्यामसुन्दर के प्रेम में मग्न, हे वृन्दावनविहारी ! हे श्यामसुन्दर ! हे पतितपावन ! कहते हुए मार्ग में चले जारहे हैं नेत्रों से अश्रु के धार चल रहेहैं, रोमावली बढ़ रही है, कम्प उत्पन्न हो रहा है, न भूख है न प्यास, न रात्रि को निद्रा है, अब तो केवल यही चिन्ता लग रही है कि कब मदनमोहन के मुखसरोज के मकरन्द को ये मेरे नेत्र रूप भ्रमर पान करेंगे । कभी हंसते हैं, कभी रोते हैं, कभी थर्राकर किसी ठौर बैठ जाते हैं किसी वृक्ष को थाम रुदन करने क-

गते हैं, यहांतक कि रोते २ शरीर की सुधि जाती रहती है, फिर थोड़ी देर के पश्चात् आंखें खुलती हैं तो हे भक्तबत्सल ! हे अशरण शरण ! ऐसे २ मधुर शब्दों को उच्चारण करते धीरे २ आगे बढ़ते हैं फिर किसी ठौर खड़े हो नृत्य करने लगते हैं, तात्पर्य यह कि प्रेम से पूर्ण प्रकार मत्त हो रहे हैं। एवम् प्रकार प्रेमरस से भिंन हुए आप चलते २ मार्ग में एक पुष्करिणी के तट पर आन पहुंचे, पुष्करिणी अति सुहावनी थी, जल में नाना प्रकार के खिले हुये कमलों पर भ्रमर गूंज रहे थे, जल के ऊपर से शीतल, मन्द, सुगन्ध, समीर चल रहा था, यह शोभा देख आप की इच्छा हुई कि इस जल में स्नान कर आगे बढ़ूं। जैसे आप ने स्नान के निमित्त जल में प्रवेश किया क्या देखते हैं कि एक सुन्दर स्त्री पुष्करिणी के दूसरे तट पर आई औ स्नान करने लगी; आप इस की अनोखी छवि देख काम से बिह्वल होगये, उस सुन्दरीने स्नान कर अपना बाल सुधारा, मानो काम ने आप को फंसा लेने के लिये जाल सुधारा, अब तो आप की दशा एकदम पलटी, कुछ और की और ही होगई। सच है प्यारे सभासदो ! ईश्वर की माया दुस्तर है, दुर्निवार्य है, जिस ने विश्वामित्र ऐसे महात्मा को वेश्यामित्र बना दिया, जिसने नारद ऐसे ब्रह्मर्षि को मर्कट का मुंह बना इधर उधर फिराया था, जिसने पराशर ऐसे महर्षि को एक मलाह की कन्या के वश करदिया, जिसने ब्रह्मादि देवों तक भी न छोड़ा, भला उसकी प्रबलता के सामने इस बिचारे बिल्वमंगल का कहां ठिकाना लगे। किसी ने कहा है—मृगनयनी के नयनसर उठत मदन तन जाग। गयो कमण्डल भार में टररानो बैराग ॥ प्यारे श्रोतृगण ! वह सुन्दरी एक साहूकार की स्त्री अपने पतिवर्त धर्म में अति ही दृढ़ थी, जैसे स्नान कर अपने गृह की ओर चली बिल्वमंगल उस के पीछे २ चले, वह तो अपने घर के

भीतर चलीगई औ ये उस के द्वार पर घण्टों इस आशा पर खड़े रहे कि यदि एक बार वह फिर बाहर निकले तो उसकी फिर झांकी करूं। इतनेमें उसका पति, जो साधु सेवी था साधुओं को अपना इष्टदेव औ परमात्मास्वरूप ही जानता था, आन पहुंचा क्या देखता है एक साधु द्वार की ओर टक लगाये खड़ा है, देखतेही साष्टांग चरणों पर गिरा औ हाथ जोड़ घर में लेजा आसन पर बड़े प्रेम से बैठाला, पश्चात् अपनी स्त्री के समीप जा क्रोध कर यों बोला, रे दुष्टे! द्वार पर साधु ने खड़े २ इतना दुःख पाया तूने अब तक उनकी कुछ भी सुधि न ली। स्त्री ने उत्तर दिया—स्वामिन्! वह तो कोई साधु न होवे, वह तो कोई विषयी है जो पुष्करिणी से यहां तक मेरे पीछे २ विषइयों की सी बातें करता चला आया है। साहूकार बोला, नहीं तू झूठी है, मेरे साधु कदापि विषयी नहीं होते। जब उस पतिव्रता ने विल्वमंगल को बार २ विषयी कहा तब उसके पति ने यों आज्ञा दी कि यदि तू मेरे साधुओं को अपनी सुन्दरताई के अहंकार से विषयी कहा करती है तो ले परीक्षा करले! जा! तू अपना सम्पूर्ण शृंगार कर * ! थाल के साधु के समीपजा! उनकी आरती उतार पीछे साधु जो कुछ आज्ञा देवे वह विना वि-

---

* शृङ्गार—१६ प्रकार का है—१ शरीर का मैल उतारना। २ स्नान करना। ३ उज्वल बस्त्र पहनना। ४ काजल लगाना। ५ अलता से हाथ पैर रचाना। ६ बाल संवारना। ७ सिंदूर से मांग भरना। ८ ललाट पर चन्दन केसर का तिलक लगाना। ९ ठुड्डी पर तिल बनाना। १० मेंहदी लगाना। ११ शरीर पर सुगन्ध मलना। १२ आभूषणों को धारण करना। १३ फूलों की माला डालना। १४ पान चबाना। १५ दांत रंगना। १६ होठों को लाल करना।

मारे प्रतिपाल कर ! प्यारे सभासदो ! उधर तो यह आज्ञा दी औ इधर साधुमहाराज को मकान के छत पर लेजा एक सजे सजाये पलंग पर एकान्त बैठाल आप नीचे उतर आये औ वह पतिव्रता पति की आज्ञानुसार जैसे बिल्वमंगल के सामने जा खड़ी हुई तैसे उस सुन्दरी की शोभा देख आप अपने मन में यों विचारने लगे—रे बिल्वमंगल ! देख तो सही ! अभी तक तू साधु नहीं हुआ, तूने केवल साधु का वेष बना रखा है, थोड़ा विचार तो सही, । जिस के केवल वेष बनाने में तुझ को ऐसी सिद्धि प्राप्त हो रही है कि जिस असम्भव वस्तु की तू इच्छा करता है वह तेरे सन्मुख हाथ बांध आ खड़ी होती है, यदि तू सच्चा साधु होजावे अर्थात अन्तह्य और वाह्य दोनों से एक समान होजावे तो क्या श्यामसुन्दर तेरें सन्मुख हाथ बांध न आवैं ? अवश्य आवें । रे मूर्ख धिक । धिक । अरे ज्ञानान्ध । जिस पदार्थ को थूक कर तूने यह रूप बनाया फिर उस थूकी वस्तु को चाटने की क्या इच्छा करता है। देख संभल बैठ । उस अपने वृन्दावनविहारी को स्मरण कर । छोड़ इस कामविकार को त्याग ! इस पतिव्रताको माता कह पुकार।

एवम्प्रकार मनही मन आपको धिक्कार दे उस सुन्दरीसे बोले हे मा ! तू नीचे जा औ दो सूवे * ले आ ! वह पतिव्रता आपकी आज्ञानुसार दो सूवे लेआई, फिर आपने आज्ञादी, जा एक गलास में जल ला ! प्यारे सभासदो ! जैसे उधर वह जल लानेगई आपने उन दोनों सूवों को दोनों हाथों में ले अपनी आंखों में झट प्रवेश कर आंखें फोड़दी और यों कहा—हे दुष्ट नेत्रो ! यदि तुम न होते तो मैं

---

* बड़ी सूई जिस से टाट इत्यादि सींते हैं ।

इसने ऊंचे चढ़ इसप्रकार नीचे नहीं पतन होता, इसकारण " नरहे बांस न बजे बांसुरी " न तुम रहोगे न मुझे फिर इसप्रकार धोखा दोगे । आपकी यह दशा देख वह पतिव्रता भय से कांपती अपने पति से सब बातें जासुनाईं, सुनतेही उसने पहले तो उस स्त्री से कहा दुष्टे ! देख ! मैंने तो तुझसे प्रथम ही कही कि मेरे इष्टदेव साधु ऐसे नहीं होते, ले अब बता मैं तेरा क्या दण्ड करूं ? तूने जो ऐसे महात्मा में मनही मन विकार आरोपण किया इसकारण अन्तर्यामी महापुरुष ने तुझको उपदेश करनेके लिये ईर्षा मान अपनी आंखें फोड़दी, बता अब इस महापातक का क्या प्रायश्चित्त करूं ? देख अब मैं तेरी कैसी दशा करताहूं ! वह पतिव्रता भय से थर्रातीहुई हाथबांध नेत्रों में आंसू भर पति के चरणों में गिरी औ बोली स्वामिन् ! जो आज्ञा ! इस अधम शरीर के टुकड़े २ कर कुत्तों को भक्षण करादो, इस पापनी का यही उचित दण्डहै ! ऐसे बातें करते दोनों घबड़ाये हुए महात्मा के चरणों में जागिरे औ उनकी परिक्रमा करनेलगे । इनको परिक्रमा करते देख महात्मा उठखड़ेहुए औ इन दोनों की परिक्रमा करनेलगे औ बोले (भाई ! मैं महात्मा नहीं, तुम दोनों महात्मा हो जिनने इसप्रकार साधुसेवा में अपना तन, मन, धन, अर्पण कररखाहै । फिर उस साहूकार का हाथ पकड़ बोले मित्र ! देखो तुमको मेरा शपथ है इस पतिव्रता को कुछ मत कहना । यह मेरी माता ही नहीं वरु गुरु है जिसके द्वारा मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआहै)

साहूकार ने बहुत गिड़गिड़ाकर कहा भगवन ! मैं नजाने कौन पापी हूं कि मेरे घर में आपको ऐसा क्लेश उठाना पड़ा, इस घोर पाप से भगवान् मेरा कैसे उद्धार होगा । बिल्वमङ्गल ने साहूकार को नाना

प्रकार सन्तोष दिया औ बोले मित्र ! अब मैं आगे की यात्रा करताहूं मुझे शीघ्र श्रीवृन्दावन में पहुंच ब्रजकिशोर का दर्शन करनाहै। यद्यपि साहूकार ने बहुत रोका औ कहा भगवन्! इन नेत्रों की औषधि मैं उत्तमप्रकार कराऊंगा आप इन नेत्रों के चंगे होजाने तक इस दीन के गृह को न त्यागो। विल्वमङ्गल ने उत्तर दिया मित्र! मेरा वैद्य तो श्यामसुन्दर है वह औषधि करलेगा, इतना कह आप आगे बढ़े!

प्यारे श्रोतृगण! इन्हीं विल्वमङ्गल को अबसे सूरदास भी कहते हैं। अब आप पूर्ववत् नन्दनन्दन के ध्यान में मग्न वृन्दावन की ओर चले जा रहे हैं। चलते २ जब वृन्दावन के समीप एक सुनसान जंगल में पहुंचे आप के सन्मुख एक अत्यन्त गहरी खाई आगई जब चलते २ वह खाई आध नल्व * के लग भग रहगई तब भक्तवत्सल भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने, जो सदा यहां के पवित्र कुंजों में बिहार करते रहते हैं, विचारा कि जिस मेरे प्यारे सूर ने मेरे लिये आंखें फोड़दी हैं यदि इस खाई में गिरजावेगा तो अत्यन्त क्लेश पावेगा। जंगल सुनसान है यहां कोई मार्ग बतलानेवाला भी नहीं है इसलिये किसी प्रकार इसको मार्ग की खाई से चैतन्य कर देना चाहिये। ऐसा विचार श्यामसुन्दर ने एक छोटे बालक का स्वरूप धारण कर कुछदूर अलग से यों पुकारा—भाई सूर! आगे न जाइयो! आगे न जाइयो! खाई गहरी है गिरजाओगे! क्लेश पाओगे! दायें मुरकर जाओ! सन्मुख न जाओ! सूर ने अत्यन्त कोमल मधुर अमृतमय बाणी श्रवण कर बिचारा कि यहां सुनसान वन है, न कोई घर है न किसी ओर किसी मनुष्य का आहट मिलता है, यहां छोटे बच्चे का प्रवेश कैसे? हो न हो ये तो उसी आनन्दकन्द ब्रज-

---

* नल्व = ४०० हाथ।

चन्द्र के मधुर शब्द जान पड़ते हैं। ऐसा अनुमान कर कुछ मन ही मन सोच जैसे चल रहे थे वैसे ही उस खाई के सन्मुख चलते रहे। जब खाई दस पांच हाथ के समीप रही फिर श्यामसुन्दर ने उसी प्रकार चेताया। सुनते ही आप ने उत्तर दिया—रहने दो रहने दो! गिरूंगा तो मैं गिरूंगा तुम्हें इस से क्या। कोई मरा अथवा जीया तुम को इसकी क्या पड़ी। एवम् प्रकार "हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा,, हृदय में प्रीति भरे मुख से कठोर वचन उच्चारण करते सूर उस खाई के अत्यन्त निकट पहुंच गये, अब केवल एक पग और उठाने मात्र का विलम्ब है यदि उठाते हैं तो खाई में पतन होते हैं कि इतने में श्यामसुन्दर ने झट आगे पहुंच आप की भुजा थांभ आपको दांई ओर फिरादिया। जैसे श्यामसुन्दर ने भुजा पकड़ी सूर ने भी श्याम की कलाई पकड़ली। अब मनमोहन मधुर वचनों से यों कहरहे हैं—भई सूर छोडो छोडो देखो मेरी कलाई मुरकजायगी! छोडो! मुझे क्षुधा लग गई है घर मेरा यहां से दूर है। माता पिता मेरे विना भोजन नहीं करेंगे। थाल पर बैठ मेरी बाट जोहरहेहोंगे। मैंने तो तुम्हें सूर जान मार्ग बतादिया उलटे तुमने मुझे क्यों पकड रखा छोडो! छोडो! जाने दो! इतना सुन सूर ने यों उत्तर दिया—भगवन! तुम क्या नहीं जानते कि सूर जिसे पकड़ता है उसे शीघ्र नहीं छोड़ता। तिसपर और अधिक यह कि जो तुम ब्रह्मादि देवों से भी नहीं पकड़े जाते आज न जाने कैसे इस अंधे के हाथ पड़गये हो! फिर क्या मैं तुम्हें छोड़ दूं। मैं तो कदापि नहीं छोड़ता चाहे जो कहो। प्यारे सभासदो! इस प्रकार (भई छोड़ो छोड़ो! भगवन! नहीं छोडूंगो) इस प्रकार सूर औ श्याम दोनों परस्पर झगड़ रहे हैं। अब तो मुहूर्त मात्र दोनों को परस्पर झगड़ते हुये बीतगया है। एक बार सब मिल बोलिये हरे राम हरे राम रामराम हरे हरे

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

प्यारे श्रोतृगण ! इस अवसर पर मुझे एक भजन स्मर्ण हो आया है जो ठीक इस समय श्रवण कराने योग्य है। एकाग्र हो श्रवण कीजिये—

हमारे प्रभो अवगुण चित न धरो ।
इक नदिया इक नालो बहति है मैलो नीर भरो
जब दोऊ मिलि तब एक वर्ण भई गंगा नाम परो
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बाधक परो
सो दुविधा पारस नहिं राखै कंचन करत खरो
हौं माया बस जीव कहाऊं सूरश्याम झगरो
अब मेरो निस्तार करो नतु प्रभुप्रण जात टरो

(करतलध्वनि)

प्यारे सभ्यगण ! उस नटनागर मदनमोहन को कौन रोक सकता है। जब मुहूर्त्त मात्र ऐसे झगड़ते बीतगया तब श्यामसुन्दर ने सूर की भुजा छिटका अपनी कलाई झटक चल दिया, यह गये वह गये, अब तो अन्तर्ध्यान होगये। इधर सूर ने अछता पछता कर एक लम्बी सांस भरी औ यह दोहा पढ़ा—

कर छटकाये जात हौ निबल जानके मोहि ॥
हृदय से जो जाहुगे बली बखानूं तोहि ॥

अब विल्वमंगल श्री वृन्दावन में पहुंचे औ विचारने लगे कहां जाऊं ? मुझ अंधे को यहां कौन पूछेगा ? न किसी से जान न पहचान थोड़ी देर यों सोचते २ यही निश्चय किया कि अन्य किसी ठौर जाने से वृन्दावन के कुंजों में किसी वृक्ष के तले बैठरहना उत्तम है। जब

आपको वृक्ष के नीचे बैठे चार पांच दिन बिना अन्न जल होगये तब श्यामसुन्दर ने एक स्वर्ण की थाली पक्वानों से भरी भराई आप के आगे लाधरी औ बोले सूर को ! भोजन करलो ! सूर समझ गये औ आनन्द में मग्न हो इच्छा पूर्वक भोजन किया । अब तो नित्य हविष्य इत्यादि से भरी भराई थाली आप के आगे पहुंच जाती है आप भोजन कर श्यामसुन्दर की अलौकिक औ अनोखी छवि के ध्यान में मग्न रहते हैं। जब कुछ दिन ऐसे बीत गये आप ने प्रार्थना की—भगवन् ! क्या मुझे इन थालियों ही में ठगलाया करोगे वा किसी दिन इन सघन कुंजों के मध्य अपनी माधुरी मूर्ति का दर्शन भी दोगे ! जब आप को यों प्रार्थना करते महीनों बीतगये भक्तवत्सल भगवान नन्दजसुमति दुलारे, सिर मोरमुकट धारे, भाल मृगमद संवारे, नयन बांके रतनारे, अधर मुरली सुधारे, कछनी पीतपटवारे पग नूपुर झंझकार, गरे बनमाला डारे, त्रिभंगी मतवारे, त्रय तापहिं जो टारे, सूर नयनन के तारे, झट विल्वमंगल के सन्मुख प्रगट हो ऐसी अलौकिक जादू भरी बांसुरी टेरी कि सूर की दोनों आंखें खुलगईं, सूर मुहूर्त मात्र ऐसी अपूर्व झांकी का दर्शन करते रहे ।

प्यारे सज्जनो ! एक मुहूर्त के पश्चात् श्यामसुन्दर अन्तर्धान होगये औ सूर की आंखें जो थोड़ी देर के लिये खुलगई थीं फिर ज्यों की त्यों मूंदगईं । अवतो जब कभी सूर दर्शनकी अभिलाषा करते हैं नन्दनन्दन प्रगट हो झांकी दिखला जाया करते हैं । क्यों न हो भक्तवत्सलता भी तो इसी का नाम है, अपनाये की लाज तो हम पामरन को भी होती है फिर हमारे ब्रजकिशोर को क्यों न हो ॥

प्रिय श्रोतागण ! जिस दिन से विल्वमंगल की भयंकर दशा देख वेश्या ने परम तत्व उपदेश करदिया औ विल्वमंगल सब त्याग वन की ओर चलेगये उसी दिन से चिन्तामणि के चित्त में भी अ-

पने परम चिन्तामणि की प्राप्ति करने की अभिलाषा उपजी, यहांतक कि वह भी थोड़े दिनों के पश्चात् सब छोड़ श्री वृन्दावन को चली गई। वहां यह पता लगा कि बिल्वमंगल भी यहां ही किसी कुंज में विराजते हैं। ढूंढ़ती हुई आप के समीप आन पहुंची, आपके सूर होजाने का वृत्तान्त सुन बहुत पछतावा करने लगी। सूर ने आदर पूर्वक अपने समीप स्थान दिया जब भोजन के समय नियमानुसार थाल आया सूर ने उस से एक भाग वेश्या को दे भोजन करने की आज्ञा दी, वेश्या ने पूछा कैसा थाल है ? सूर ने कहा, श्यामसुन्दर नित्य एक थाल अपने पार्षदों द्वारा मेरे लिये भेज दिया करते हैं, वेश्या बोली यह तुम्हारा थाल है तुम लो, मैं तो तबही भोजन करूंगी जब मेरेलिये भी दूसरा थाल आवे। इतना भण कर चुपके एक ओर एक वृक्ष के तले मदनमोहन के ध्यान में जा बैठी। जब कई दिन इस प्रकार भूखे प्यासे बीतगये जगतरक्षक ने एक दूसरा थाल उसके लिये भी भेजा। वाह ! क्यों न हो ! सच्ची पतितपावनता भी तो इसी को कहते हैं, एवम् प्रकार दोनों भजन करतेहुये अन्तमें गोलोक को सीधार गये।

प्रिय सभासदो ! इस सूर के वृत्तान्त को इस प्रकार वर्णन करने का तात्पर्य यही था कि मनुष्य कैसे भी दुःसंग में क्यों न पड़ा हो जिस समय पूर्वजन्मार्जित पारलौकिक क्रिया का फल उदय होगा उसे ऐसे ही सुधार लेवेगा जैसे बिल्वमंगल को। इसलिये आप सब चिन्ता छोड़, आलस्य त्याग, ब्रह्म विद्या के प्रथम अंग सन्ध्या में तो अवश्य ही हाथ लगा दीजिये पार लगाने वाला आप का अन्तर बाहर सब कुछ देखरहा है आप की सच्ची रुचि देख पार लगा ही देगा।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! (इति)



नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

वक्तृता ३
LECTURE 3

विषय

ब्रह्मविद्या की प्रथम श्रेणी कर्म

के मुख्य अङ्ग

सन्ध्या

से

आयु की वृद्धि

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

संसारसंपातनिपातितानां मोहप्रमादेन विमोहितानाम् ।
दुःखार्णवप्लावितजीवितानां त्वमेव नस्तत्परमावलम्बनम् ॥
दुःखार्णवे शोकतरंगसंकुले मायाग्रहेऽहं पतितः स्वकर्मणा ।
नान्यागतिर्मे ऽद्य ऋते भवन्तं कृपाकटाक्षेण नयस्व पारम् ॥

आज बड़े आनन्द की वार्ता है कि हमलोगों के सनातनधर्म की उन्नति निमित्त यह सुन्दर मण्डली इस स्थान में सुशोभित हुई है।

आज मानो सनातन धर्म की रेलगाड़ी हर्ष की सीटी भरती हुई इस सभा रूप स्टेशन की ओर चली आरही है जहां रामनाम का सिग्नल (Signal) रकार औ मकार रूप दोनों भुजाओं से इस गाड़ी को स्टेशन में प्रवेश कराने के लिये नीचे झुका है औ जहां कर्म-रूप झण्डी दिखानेवाला सन्ध्या की हरी झण्डी दिखला रहा है, उपासना की घण्टी टिकट लेनेवालों को पुकार रही है, ज्ञान-रूप टिकटमास्टर नानाप्रकार के टिकट काट २ कर सभासद रूप मुसाफ़िरों (Passengers) को ईश्वर के युगल चरणारविन्द रूप राज-धानी तक पहुंचाने को तयार है।

प्रिय सभ्यगण ! इस धर्म के स्टेशन में चौरासी लक्ष टिकट कटती हैं जिनमें कोई सौ कोस कोई हज़ार कोस तक की पंहुचा देनेवाली साधारण टिकट है किन्तु एकटिकट इनमें सबों से उत्तम है जो पथिक को अत्यन्त सुन्दर प्रथमश्रेणी की गाड़ी में बैठाल ब्रह्म-लोक, विष्णुलोक, शिवलोक इत्यादि लोकों की हवा खिलातीहुई परम धाम तक पंहुचादेतीहै।

मेरे सभासदगण अवश्य इस मेरे कथनका तात्पर्य समझगयेहोंगे, अर्थात् ८४ लक्ष टिकटों से चौरासीलक्ष योनियों को समझना, जिनमें

और सब साधारण हैं, केवल मनुष्य योनिरूप टीकट सबों में उत्तम परमधाम को पंहुचानेवाली है। पृथ्वीमण्डल भर के सर्व मतावलम्बी इस सिद्धान्त में एकसम्मत हैं। देखिये मुसलमान भी इसको अशर-फुलमखलूक़ात (اشرف المخلوقات) अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि में उत्तम कहते हैं। ईसाई इसे "रेशनलबींइग" (Rational-Being) अर्थात् "ज्ञानयुक्त" बतलातेहैं।

प्रियश्रोतागण! है भी ऐसाही, क्योंकि (आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभि र्नराणम्। ज्ञानं नाराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिस्समानाः) अर्थात् भोजन, शयन, भय, काम, क्रोध इत्यादि तो सब योनियों में एकही समान है किन्तु मनुष्य में ज्ञान विशेष भी अधिक है इसलिये यदि किसी मनुष्यने अपने ज्ञान से काम नहींलिया तो जानो कि परमात्माने उसे मनुष्योंमें पशु बनादिया है

पशूगढन्ते नर भये भूले सींग अरु पूंछ
तुलसी रामभजन बिनुधिक् दाढ़ी अरु मूंछ

फिर गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहाहै (काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबही के। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सियपी के) फिर गरुड़पुराण प्रेतकल्प के दूसरे अध्याय में लिखाहै कि—

चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश्चजन्तवः
अण्डजाः स्वेदजाश्चैव उद्भिजाश्च जरायुजाः
एकविंशति लक्षाणि अण्डजाः परिकीर्त्तिताः
स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिजास्तत् प्रमाणतः
जरायुजाश्च तावन्तो मानुष्याद्याश्च जन्तवः
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं सुदुर्लभम्

अर्थात् १ अण्डज (अण्डे से उत्पन्न होनेवाले) २ स्वेदज (उष्णता से उत्पन्न होनेवाले कीड़े, खटमल, जू इत्यादि) ३ उद्भिज (वृक्ष इत्यादि स्थावर) ४ जरायुज गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, घोड़े, बैल इत्यादि) ये चारखान के जीव चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न हैं अर्थात् २१ लक्ष अण्डज, २१ लक्ष स्वेदज, २१ लक्ष उद्भिज २१ लक्ष जरायुज हैं, इन चौरासी लक्ष योनियों में मनुष्य योनि दुर्लभ है।

ईसाइयों के बाइबिल (इनजील) में भी मनुष्य योनि की श्रेष्ठता में यों वर्णन किया है।

And God said let us make man in our image after our likeness and let them have dominion over the fish of the sea, and over the fowl of the air, and over the cattle, and over all the earth and over every creeping thing that creepeth upon the earth.

So God created man in his own image, in the image of God created he him; male and female created he them. (Genesis Chapter I, Paraze 26 and 27)

एण्ड गौड सेड, लेट अस मेक मैन इन अवर इमेज, आफ़्टर अवर लाइकनेस, एण्ड लेट देम हैव डोमीनियन ओवर दि फ़िश औफ़ दी सी, ऐण्ड ओवर दी फ़ाउल औफ़ दी एयर, ऐण्ड ओवर दी कैटल, ऐण्ड ओवर औल दी यर्थ ऐण्ड ओवर एवरी क्रीपिंग थिंग दैट क्रीपेथ अपौन दी यर्थ।

सो गौड क्रियेटेड मैन इन हिज़ ओन इमेज, इन दी इमेज औफ़ गौड क्रियेटेड ही हिम; मेल एण्ड फ़ीमेल क्रियेटेड ही देम। (इनजील के जेनेसिस का अध्याय १ वाक्य २६, २७)

अब उपरोक्त इंजील के वाक्य का अर्थ सुनिये—

अर्थ—और ईश्वर ने कहा कि मनुष्य को मुझे अपनी प्रतिमा के अनुसार बनाने दो जो ठीक २ मेरी ही आकृति के समान हो और इन मनुष्यों को पृथिवी के सर्व चराचर पर अपना अधिकार रखने दो अर्थात् समुद्र के जलमें निवास करने वाली मछलियों पर औ वायु में उडने वाले पक्षियों पर, और अन्यान्य सर्व प्रकार के पशुओं पर, यहांतक कि सम्पूर्ण पृथिवी पर, और सर्व प्रकार के चलने फिरने वाले जीवों पर जो पृथिवी पर इधर उधर चल फिर सकते हैं।

तथा ईश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति समान उत्पन्न किया अर्थात् उसने मनुष्य को मानो ऐश्वर्य छाया औ प्रतिबिम्ब ही उत्पन्न किया, स्त्री पुरुष सबों को उस ने अपने अनुरूप बनाया।

प्रिय सभासदो! उक्त इंजील के प्रमाण से दो बातें सिद्ध हो जाती हैं एक तो यह कि मनुष्य चौरासी लक्ष योनियों में उत्तम औ श्रेष्ठ है, दूसरी बात यह है कि ईश्वर आकार वाला अर्थात् साकार भी है।

फिर जैसे किसी प्राणी की उत्तम श्रेणी की टिकट धर्म की गाड़ी के समीप हाथ से छूट गिरजावे औ उसकी ढूंढ़ में एक क्षण मात्र का विलम्ब होजावे औ गाड़ी सीटी दे चलदेवे तो टिकट वाला जैसे हाथ मलता औ पछताता रहजाता है, ऐसे ही जब यह शरीर रूप टिकट हाथ से गिरजावेगा तब पछताना पड़ेगा औ यही कहना पड़ेगा कि हा शोक! वह काम क्यों न किया जो आज के दिन काम आता। अतएव हम मनुष्यों को उचित है कि इस अपने टिकट का पूर्ण संभाल करें औ इससे यत्न पूर्वक काम लेवें।

हमारे नवशिक्षित युवक (नई रोशनी वाले जवान) यों कह पड़ते हैं कि हम यह बात नहीं मानते " ते सर्वे समानाः सन्ति,, वे सब जीव समान हैं, पूछिये क्यों ? तो उत्तर देते हैं कि " पांचभौतिकत्वात् तथा जरामरणधर्मेषु समानत्वाच्च,, अर्थात् आकाश, वायु, इत्यादि पांचों तत्वों के कार्य सबों में समान हैं औ वृद्ध होना मरजाना भी सबों में एकसा ही देख पड़ता है, इस कारण कोई विशेषता प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती जिस से मनुष्य योनि की उत्तमता औ श्रेष्ठता सिद्ध हो ।

प्यारे नवशिक्षितो ! सुनिये मैं आप को प्रत्यक्ष प्रमाण से मनुष्य योनि की श्रेष्ठता सिद्ध कर दिखलाता हूं । आप दो गेंद अर्थात् गोले समान आकृति के बना लीजिये जिनमें एक कांच औ दूसरा हीरे का हो फिर इन दोनों को किसी तुला (तराजू) के दोनों पलड़ों पर रख तोलिये तो आप प्रत्यक्ष देखियेगा कि हीरे का गेंद यद्यपि आकृति में अर्थात् व्यास औ परिधि में कांच के गोले के समान ही है किन्तु तौल में कांच से कितना अधिक भारी होता है, इसी प्रकार एक रूई दूसरा पत्थर का लीजिये, तोलने पर आप अवश्य पत्थर के गेंद से रूई के गेंद में बहुत ही अधिक गुरुआई पाइयेगा । अब विचारिये तो सही कि जो दो वस्तु देखने में समान हैं फिर एक में गुरुत्व का क्या कारण है, थोड़े ही विचार के पश्चात् आप पर यह बात प्रगट होजावेगी कि हीरा औ पत्थर के गेंद के अणु (अवयव) अत्यन्त घन (solid) हैं तथा कांच औ रूई के अवयव अधिक प्रसृत (diffused) अर्थात् फैले हुए हैं इसी कारण कांच औ रूई से हीरा औ पत्थर में सार अधिक है, ऐसेही मनुष्यों के मस्तक में बैल घोड़े इत्यादि पशुओं से अधिक सारांश है, यदी इस बात को और अधिक समझने औ सिद्ध करने की अभिलाषा हो तो आप दोनों

के मस्तक को तौल कर देखलीजिये इनके तौलने के निमित्त किसी तुला की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुलापर तौलने के लिये इनके मस्तकों को शरीर से विलग करना पड़ेगा औ विलग करतेही इनका सारांश शुष्क होजावेगा इसलिये इनके तौलने के निमित्त एक दूसरा यत्न बतलाताहूं, वह यह है कि बैल, घोड़ा, ऊंट, गधा इत्यादि पशुओं के १० दिन के बच्चों को भी यदि आप किसी ताल अथवा नदी के अथाह जलमें एकाएक डाल दीजिये तो ये बच्चे अपनी जान बचाने के उद्योग में जलके ऊपर स्वाभाविक हाथ पांव फेंकते चलेजावेंगे अर्थात् जल से निकलने का उपाय करतेरहेंगे औ इनका मस्तक हलका होने के कारण जलके ऊपर तैरता रहेगा इसलिये ये जलमें नहीं डूबेंगे किन्तु मनुष्य २० वर्ष का भी क्यों न होगयाहो यदि तैरनेकी विद्या नहीं जानता है तो जलमें गिरते के साथ डूबजावेगा क्योंकि मनुष्य का मस्तक अत्यन्त गरू है इसलिये जलके ऊपर नहीं ठहरसकता। इस से सिद्ध होताहै कि मनुष्य के मस्तिष्क में परमात्माने ज्ञानतत्त्व की रचना विशेष की है, अतएव मनुष्ययोनि रूप टिकट औरों से उत्तम अर्थात् प्रथम श्रेणी (First class) की है। इससे यत्न पूर्वक बड़ीही सावधानता के साथ काम लेना चाहिये। अर्थात् ब्रह्मविद्या की प्राप्ति ही इस योनि का मुख्य कार्य्य है। इसलिये मनुष्य मात्र को ब्रह्मविद्या में प्रवेश करने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिये।

प्यारे सभासदो! पूर्वदिवस के व्याख्यान में मैं आपको कहचुका हूं कि इस ब्रह्मविद्या (Divine Kuowledge) के २६ अक्षर औ चार श्रेणियां हैं जिनमें प्रथम श्रेणी "कर्म" के मुख्य अङ्ग सन्ध्या से अनेकप्रकार के लाभ होते हैं। विशेषकर सुख, आरोग्यता आयुवृद्धि, परमात्माप्राप्ति ये चारलाभ तो अवश्यही होतेहैं। इन चारों में सन्ध्या से परमात्माकी प्राप्ति कैसे होती है आप सुनचुके, अब आज

मैं आपको यह दिखलाऊंगा कि सन्ध्या से आयुर्वृद्धि कैसे होगी औ इसी के साथ २ दो बातें और भी सिद्ध होजावेंगी, प्रथम तो यह कि सन्ध्या नित्यकर्म में क्यों रखीगई है। दूसरी बात यह कि पूर्व के ऋषि, मुनि, प्रायः हज़ारों लाखों वर्ष के क्यों होतेथे जिनमें बहुतेरे अवतक जीवित सुनेजातेहैं। चलिये अब अपने विषये की ओर चलें। एकवार सब मिल कहिये "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे"।

सन्ध्या से आयुर्वृद्धि—हमारे सर्व साधारण मनुष्यमात्र यही समझतेहैं कि आयुपूर्ण होने की कोई विशेष तिथि नियत है, किन्तु ऐसा नहीं, आयु के लिये तिथि, पक्ष, मास, वर्ष इत्यादि कुछ भी नियत नहीं, आयु क्या है औ किसप्रकार नियत कीगईहै, सो सुनिये।

ॐ प्राणं देवा अनुप्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव त आयुर्यन्ति। ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणोहि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति।

तैत्तिरीयोपनिषदि द्वितीयो ब्रह्मवल्ल्यध्याये तृतीयोऽनुवाकः

अर्थात् (देवाः) अग्नि, मित्र, वरुण, कुबेर, इन्द्रादि देव सबही (प्राणं अनुप्राणन्ति) प्राणही के साथ २ अपना २ प्राणकर्म करतेहैं अर्थात् प्राणही से श्वासोच्छ्वास करतेहुए जीवित रहतेहैं, फिर (मनुष्याःपशवश्चये) जितने मनुष्य औ पशु इत्यादि चौरासी लक्ष योनि हैं सब प्राणही द्वारा जीवित रहतेहैं इसलिये (प्राणोहि भूताना-

प्रायुः) प्राणही सब जीवों की आयु है औ इसी कारण (सर्वमेव त-आयुर्यन्ति) वे प्राणी सर्वप्रकार से आयुष्मान् होतेहैं अर्थात् पूर्ण आयु पातेहैं (ये प्राणं ब्रह्मोपासते) जो प्राण रूप ब्रह्म की उपासना करतेहैं क्योंकि (प्राणोहि भूतानामायुः) प्राणही सब भूतों की आयु है (तस्मात् सर्वायुषमुच्यते) इसीसे इसको " सर्वायुष " कहतेहैं ।

प्रिय श्रोतृगण ! उक्तप्रमाण से यह भलीभांति सिद्ध होगया कि यह " प्राण " जो अहर्निशि जीवों के शरीर से (हँ) कहताहुआ बाहर निकलताहै औ (सः) कहताहुआ भीतर प्रवेश करताहै, " सर्वायुष " अर्थात् सर्व जीवों की आयु कहाजाताहै । अन्य श्रुतियां भी ऐसाही कहती हैं कि " यावदस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः "

अब यह जानना भी अतिही आवश्यक है कि यह प्राण किसप्रकार किस प्रमाण से कबतक इस शरीर में निवास करताहै । सो सुनिये, एकाग्रचित्त होजाइये ।

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हंसेति परमं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा ॥
एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम् ॥
उत्पत्तिश्च जपारंभो मृत्युस्तस्य निवेदनम् ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायां प्रथम पटलः

अर्थात् हकार उच्चारण करताहुआ जो बाहर जाताहै औ सकार कहताहुआ जो भीतर प्रवेश करताहै ऐसे (हंसः हंसः) इस परम मंत्र को यह जीव सदा जपतारहताहै । २१६०० इक्कीसहजार छै सौ वार प्रतिदिन सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक अर्थात् चौवीस घंटे में

इस परमानन्दमय वाणी को उच्चारण करताहै। जीवों की उत्पत्ति समय यह जप आरंभ होकर मृत्यु के समय समाप्त होजाताहै।

प्रिय सभासदो! उक्त प्रमाण से यह सिद्ध होजाताहै कि प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन २११६०० वार अपने प्राण से श्वासोच्छ्वास करताहै और इसी प्रमाण से किसी के शरीर में एक करोड़, किसी में दोकरोड़, किसी में चारकरोड़, किसी में लाख, किसी में दोलाख, किसी में हज़ार, किसी में पांचसौ, किसी में सौ, किसी में पचास, किसी में दस, किसी में पांच, किसी में दो, औ किसी में एकही प्राण देकर परमात्मा ने उसके कर्मानुसार उसकी आयु बनादी है अर्थात् जिसके शरीर में एकही प्राण दिया वह गर्भ से बाहर आतेही एकही वार हंसः उच्चारण करताहुआ मृत्यु को प्राप्त होजाताहै, तात्पर्य यह कि इसीप्रकार जिसके शरीर में जितना प्राण परमात्मा ने भरदियाहै वह उतनेही वार हंसः कहताहुआ अर्थात् प्राण लेताहुआ जीवित रहताहै औ अन्तिम प्राण के उच्चारण होतेही मृतक होजाताहै इसीकारण श्रुति ने यों कहीहै कि "**प्राणो हि भूतानामायुः**" प्राणही जीवों की आयुहै।

प्यारे श्रोताओ! अब एक बात यह भी जानने योग्य है कि संसार में दो प्रकार के जीवहैं। एक वे जिनको अत्यन्त अल्प श्वास दियेगये औ इसीकारण वे अल्पायु कहलाते हैं जैसे छाग, मशक, दंश, मत्कुण इत्यादि औ दूसरे वे जिनको अधिक श्वास दियेगये औ वे दीर्घायु कहलातेहैं जैसे काक, गृध्र, इत्यादि। किन्तु मनुष्यों में तो दोनोप्रकार के होतेहैं बहुतेरे अल्पायु औ बहुतेरे दीर्घायु। अब यह भी जानना अति आवश्यकहै कि अल्पायु औ दीर्घायु दोनों के प्रमाण कम से कम औ अधिक से अधिक कहांतक हैं सो सुनिये, मनुष्यों में कम से कम एक श्वास तक अल्पायु होतेहैं औ अधिक से अधिक

(७७७६०००००) सतहत्तर कड़ोड़ छिहत्तरलाख श्वास तक दीर्घायु होते हैं अर्थात् मनुष्यों की परमआयु सौ वर्ष तक है फिर लिखाहै " पश्येम शरदःशतं जीवेम शरदःशतं शृणुयाम शरदः शतम् इत्यादि " अर्थात् सन्ध्या के समय सन्ध्या करनेवाले सूर्यदेव से अथवा परमात्मा से यही प्रार्थना करतेहैं कि हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्षतक जीवें, सौ वर्षतक सुनें इत्यादि

प्रिय सज्जनो ! एक महा आश्चर्य्य की बात तो यह है कि यह प्राणी दीर्घायु से अल्पायु औ अल्पायु से दीर्घायु होसकताहै सो एकाग्राचित्त हो श्रवण कीजिये मैं पूर्ण रीति से श्रवण कराताहूं । बहुत विलम्ब हुआ इसलिये सब मिल एकबार कहलीजिये " हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ,, ।

अब विचारने योग्य है कि यदि किसी प्राणी को २१६०० एक्कीस हजार छे सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से एक सौ वर्ष का व्यय (खर्च) दिया जावे और वह पुरुष ठीक २ उतने ही प्रतिदिन के हिसाब से व्यय करै तो उस का द्रव्य ठीक २ सौ वर्ष में समाप्त होगा किन्तु यदि वह पुरुष प्रमाण से दुगना प्रतिदिन व्यय करे अर्थात् एक्कीस हज़ार छै सौ रुपयों के स्थान में ४३२०० तैंतालीस हज़ार दो सौ व्यय करे तो जो सौ वर्ष में समाप्त होता वह द्रव्य पचास ही वर्ष में समाप्त होजावेगा । तात्पर्य यह है कि वही द्रव्य प्रति दिन जितना अधिक व्यय होगा उतने ही थोड़े समय में समाप्त होजावेगा । इसीप्रकार मान लिया जावे कि किसी प्राणी को २१६०० के हिसाब से सौ वर्ष का श्वास अर्थात् पूर्ण आयु दी गई है वह यदि नियत प्रमाण से दूना श्वास प्रति दिन व्यय करे तो पचास वर्ष में

मृत्यु के गाल में चला जावेगा। अर्थात् जितना अधिक श्वास प्रति दिन व्यय करेगा उतना ही शीघ्र काल के समीप होता जावेगा। अब प्रमाण से अधिक श्वास क्यों औ किन कारणों से व्यय होता है? सो सुनिये।

२१६००० श्वास का २४ घंटे में व्यय होना उसी दशा में होसकता है जब मनुष्य चुप शान्त बैठा रहे, कोई दूसरा काम न करे किन्तु जब नाना प्रकार के व्यवहारों में प्रवृत्त होगा तो अवश्य ही प्रमाण से अधिक श्वास व्यय होंगे। अर्थात् केवल बैठे रहने में द्वादश अंगुल होंगे तो भोजन करने औ वमन करने के समय २४ अंगुल, चलते फिरते १८ अंगुल, नींद से सोजाने में ३६ से १०० अंगुल तक, क्रोध करते हुऐ ९० से १२० अंगुल तक, चिन्ताग्रस्त होने में ७२ अंगुल औ स्त्री प्रसंग में २७० से ९०० अंगुल तक अधिक श्वास लम्बे होकर व्यय होजाते हैं, तात्पर्य यह कि ऐसे अनेक प्रकार के शारीरक औ मानसिक कार्यों में अधिक श्वास व्यय होजाने से काल का शीघ्रही आगमन होजाता है अर्थात् जितने अधिक श्वास प्रतिदिन व्यय होते हैं उतना ही शीघ्र काल कराल के वशीभूत होना होता है। औ यही कारण विशेष है कि प्राणी परमआयु पाने पर भी १००वर्ष तक नहीं जीवित रहता।

प्यारे सभासदो! बहुतेरे मनुष्य तो इस स्थान में यों शंका करेंगे कि प्रतिदिन अनेक प्रकार के व्यवहारों में श्वास अधिक व्यय होने से यदि आयु शीघ्र पूर्ण होजाती है तो इस में अस्मदादि मनुष्यों का क्या दोष? जगत्कर्ता ने ऐसी रचना क्यों की कि श्वासोच्छ्वास के न्यूनाधिक होने पर आयु की न्यूनता औ अधिकता नियत करदी और उधर नानाप्रकार के संसृत कार्य हम लोगोंके साथ ऐसे लगा-

दिये जिनका करना हम लोगों पर धर्मशास्त्र से उचित कर दिया। जैसे स्त्रीप्रसंग, यदि अपने धर्मपत्नी के संग न कियाजावे तो पुत्र उत्पन्न न हो और पुत्र उत्पन्न न होवे तो पितरों का पिण्ड लोप होजावे, सृष्टि की वृद्धि भी न होवे, यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है और सर्वप्रकार विहित है। फिर आयुर्वेद यों कहता है कि भोजन के पश्चात् सुखपूर्वक शयन नहीं करोगे तो नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होंगे। भोजन करना भी अति ही आवश्यक है नहीं करने से शरीर एकबारगी निर्बल औ निकम्मा होजावेगा। जब भोजन करना पड़ा तो किसी विकारके कारण कभी २ वमन भी अवश्य होही जावेगा अथवा किसी रोग के हटाने के निमित्त भी डाक्टर वैद्य कभी २ वमन करा ही देते हैं। फिर वेद कहता है कि माता, पिता, गुरु, स्वामी, जब किसी काज के लिये बुलावें तो तुम्हारा धर्म है कि आलस्य त्याग झट दौड़ कर उन की आज्ञा का पालन करो। बालक, भृत्य, पढ़ने लिखने में अथवा किसी प्रकार की सेवा में आलस्य करें तो उनपर कभी कभी क्रोध की आंखें भी दिखा दिया करो। तात्पर्य यह कि एक ओर तो उस ईश्वर ने स्त्रीप्रसंग, शयन, भोजन, वमन, गमन इत्यादि कार्य भी विहित कर दिया और दूसरी ओर श्वासोच्छ्वास की ऐसी सूक्ष्म रचना करदी कि इन व्यवहारों के करने से आयु क्षीण होजाती है तो यह दोष उसी रचनेवाले का है हम मनुष्यों का क्या दोष है ? आयु क्षीण होती है होने दो। चलो हम आनन्द से खावें, पीवें, सोरहें।

प्यारे श्रोताओ! क्या ऐसा भी तीन काल में कोई पुरुष उत्पन्न हुआ है वा होगा जो जगतकर्त्ता की रचना में दोष निकाले। सैकड़ों हज़ारों ऋषि, मुनि, योगी इस संसार में होगये और होंगे पर आजतक ऐसा न हुआ कि उस परम चतुर सृष्टिकर्त्ता में किसी ने

अणुमात्र भी दोष निकाला हो अथवा अब निकाल सके। देखिये तो सही उसकी एक छोटी सी रचना भी कैसी चतुराई के साथ की हुई है कि थोड़ी दृष्टि देने से औ विचार करने से बुद्धिमानों की बुद्धि चक्कर में आती है और यही कहना पड़ता है कि हे दयामय! तू धन्य! धन्य!! धन्य!!! है। कीट से लेकर ब्रह्मादि पर्यन्त कौन है जो तेरी सूक्ष्म चतुराई का तनक भी समझ सके, दोष निकालना तो कोसों दूर है। देखिये मैं दोएक साधारण उदाहरण देकर उसकी रचना की चतुराई दिखलाता हूं। और उसकी असीम बुद्धिमत्ता को आप लोगों के समीप प्रकाशित करताहूं।

देखिये अपनी आखों की ओर देखिये कि इसकी कनीनिका (पुतली) ऐसी कोमल बनई कि तनक भी किसी प्रकार की धूल अथवा सूक्ष्म से मूक्ष्म तृण के पड़ने से दुखने लगे, क्लेश पावे, तो उस की रक्षा निमित्त ऊपर से पलकों की कैसी रचना करदी और उनमें कैसी वायु की चाल बनाई कि किसी बस्तु के समीप आतेही झट उसे छाप लेवें, और तृण इत्यादि न पड़ने देवें। कानों की ओर देखिये कि यदि कानों का ऊपर का भाग परदों के समान उठाहुआ नहीं बनाता तो नित्य स्नान के समय मस्तक पर जल डालते हुए सब जल नीचे बहकर कानों के छिद्र में प्रवेश करजाते फिर स्नान करना कठिन होजाता। पशुओं का कान आकाश की ओर खुला नहीं बनाया पृथिवी की ओर औंधा बनाया कि चलते फिरते बर्षा का जल उनके कानों में न पड़े। दांत औ जिव्हा की ओर ध्यान दीजिये कि ऐसी कोमल जिव्हा को ३२ कठोर दांतों के मध्य किस चतुराई के साथ बना रक्खा है कि बोलते समय हजारों लाखों बार जिव्हा चारों ओर नृत्य करती हुई दांतों से टकराई करे पर कहीं से कटने न पावे। देखिये भूख, प्यास कैसी दुखदाई बनाई तो उनकी निवृति के लिये अन्न, जल

पना दिया । ठंडक बनाई तो उस से रक्षा करने के निमित्त कपास औ अग्नि की रचना करदी । ऐसी २ सहस्रों अद्भुत रचना बुद्धिमानों की दृष्टि के समीप रखी हुई हैं जिनके वर्णन में बहुत समय व्यतीत होगा, अवकाश थोड़ा है और अपना विषय समाप्त करना है इसलिये आप बुद्धिमानों को इतना ही दिखलाना बहुत है ।

अब आप सज्जनों पर भली भांति प्रगट होगया कि ईश्वर की रचना में किसी प्रकार की चूक वा दोष नहीं है फिर प्रतिदिन के व्यवहारों से जो आयु की कमी होती है अवश्य उसकी रक्षा के लिये उस चतुर सृष्टिकर्ता ने कुछ यत्न किया ही होगा । सो सुनिये । एकाग्र चित्त होजाइये ।

यह तो आप सुन ही चुके हैं कि प्रति दिन श्वासोच्छ्वास से आयु घटती जाती है अब यह भी पूर्ण प्रकार सुन लीजिये कि उसी श्वासोच्छ्वास के निरोध से आयु की वृद्धि कैसे होती है ।

अब विचार पूर्वक देखिये कि यदि किसी प्राणी के सब श्वास व्यय होते २ केवल एक दिन के श्वास २१६०० बच रहे हों तो उस एक दिन के श्वास को किस प्रकार कितना निरोध करने से कितनी वृद्धि होगी ।

यदि आज कोई प्राणी सूर्योदय के समय अपना श्वास रोक लेवे और २४ घंटे तक रोके २ कल फिर सूर्योदय के समय निकाल देवे तो उस के २१६०० में केवल एक श्वास व्यय हुआ और २१५९९ बच रहे, फिर दूसरे दिन वैसे ही एक ही श्वास व्यय करे तो २१५९८ बच रहे, फिर तीसरे दिन आठों पहर में एक श्वास व्यय करे तो २१५९७ बच रहे । तात्पर्य यह है कि यदि

२१६०० के स्थान में प्राणी एक ही श्वास नित्य व्यय करे अर्थात् किसी गुरु से पूर्ण एक दिवारात्री अपना प्राण निरोध करना सीख लेवे तो उस के १२६०० श्वास २१६०० दिन में व्यय होंगे। २१६०० दिन को ३६० से भाग देकर वर्ष बनाइये तो पूरे ६० वर्ष होते हैं। अर्थात् २४ घंटे श्वास निरोध करने वाले के एक दिन की आयु ६० वर्ष बढ़ जावेगी, इसी हिसाब से जिस की आयु दो दिन की हो औ २४ घंटे श्वास का निरोध जानता हो तो १२० वर्ष, चार दिन की आयु शेष रहगई हो तो २४० वर्ष औ ३० दिन अर्थात् एक मास की आयु १८०० वर्ष फिर साल भर की आयु २१६०० वर्ष बढ जावेगी।

अब हमारे सभासद उक्त लेखा को भली भांति समझ गये होंगे औ उनको यह निश्चय होगया होगा कि पूर्व के ऋषि, महर्षि, औ योगियों की आयु जो सहस्रों औ लाखों वर्षकी होती थी उसके सत्य होने में तनक भी शंका नहीं हो सकती। सन्ध्या से पूर्व के लोगों का दीर्घायु होना यहां सिद्ध होगया।

अब हमारे सभासदों में बहुतेरे यों कहपड़ेंगे कि अजी! यह तो योगियों की बातें हैं हम गृहस्थों को ऐसी बातों से क्या लाभ? यदि हम गृहस्थ इस प्रकार दिनभर श्वास रोक कर घरमें बैठजावें तो बालबच्चे सब अन्न जल बिना भूखे प्यासे हो प्राण त्याग शीघ्र ही यमराज के धाम को सिधार जावेंगे, हम को तो नाना प्रकार के काम काज कर बालबच्चों को पालना ही परम धर्म है। हम लोगों को इस श्वास वांस से क्या मतलब?

सच है प्यारे गृहस्थो! सच है! यदि आप दिन २ भर यों श्वास रोक बैठ जावेंगे तो आपका सारा काज भ्रष्ट हो जावेगा

पर मैं आप के कल्याण निमित्त एक उत्तम लेखा बताता हूं उसे थोड़ा विचारिये। वह यह है कि २४ घंटे श्वास रोकने से जो एक दिन की आयु ६० वर्ष बढ़जाती है तो एक घंटा रोकने से २॥ वर्ष बढ़ जावेगी। औ इसी प्रकार केवल एक मिनट के निरोध का अभ्यास करने से १९ दिन की वृद्धि होगी अर्थात् जिस प्राणी के श्वास की चाल एक मिनट पर लौटने लगेगी उसके एक दिन की आयु १९ दिन बढ़जावेगी।

कदाचित् इस लेखा के समझने में आप को कुछ कलेश हुआ हो तो मैं फिर स्वच्छ कर समझाता हूं, विचार लीजिये। अर्थात् २४ घंटे पर लौटने वाला श्वास एक दिन को ६० वर्ष बढा देता है तो घंटे १ पर लौटने वाला एक दिन को ढाई वर्ष अवश्य ही बढा देवेगा। औ इसी प्रकार मिनट १ पर लौटने वाला श्वास एक दिन को १९ दिन बढ़ा देवेगा क्योंकि एक मिनट में जो १९ श्वास व्यय होते थे अब एक ही व्यय होने लगजावेगा।

अब आप भली भांति विचार देखिये कि जो प्राणी एक मिनट के निरोध का अभ्यास सिद्ध करलेवेगा उसकी आयु की वृद्धि प्रतिदिन होती रहेगी। फिर भोजन, शयन, वमन, गमन, इत्यादि कार्यों में जो गृहस्थों के श्वास प्रतिदिन प्रमाण से अधिक व्यय होजाते हैं वे प्राण के निरोध से फिर लौट कर एकत्र (जमा) हो जावेंगे।

आप इस बात को प्रत्यक्ष भी देख लें कि जैसे घड़ियों में २४ घंटे के पश्चात् कुंजी देने से फिर उनकी यंत्रों की खोईहुई शक्ति लौटआतीहै, [illegible] (Spring) की बिखरी हुई कमानी अपने स्थान पर आजाती है, ऐसे ही प्राणायाम से शरीर की रात्रि भर की खोई हुई शक्तियां

प्रातः सन्ध्या में और नानाप्रकार के कार्यों में दिन भर की खोई हुई शक्तियां सायं सन्ध्या में प्राणायाम द्वारा लौट आती हैं अर्थात् यह प्राणायाम शरीर रूप घड़ी की कुंजी है। अब आप किसी प्रकार इस जगतकर्ता को दोष नहीं दे सकते क्योंकि उसने श्वास का व्यय (खर्च) आप के साथ लगादिया तो उसके लौटाने के लिये आय (जमा) का भी उद्योग बतादिया, फिर यदि श्वासों के आय (जमा) का उपाय आप न करें तो आप का दोष है परमात्मा का नहीं।

अब आप यह पूछिये कि वह कौनसी क्रिया है जिसमें श्वासों के निरोध का उपाय बताया जाता है। सो सुनिये। एक वार कह कीजिये—हरे राम हरे राम, राम राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

प्यारे सभासदो! मैं बारम्बार कहआया हूं औ पुनः पुकार २ कहताहूं कि वह उत्तम क्रिया है सन्ध्या! सन्ध्या!! औ सन्ध्या!!! जिस में श्वासों के निरोध का यत्न अर्थात् प्राणायाम बतलाया जाता है औ इसी कारण इस सन्ध्या को वेदने नित्य कर्म में रखा है। कि नित्य नित्य भिन्न व्यवहारों में जितनी आयु की कमी होगी उतनी ही सन्ध्या करने से बचत होतीजावेगी। आपका विषय यहां सिद्ध होगया अर्थात् सन्ध्या से आयु की वृद्धि भली भांति दिखला दीगई।

प्यारे सभासदो! यही सन्ध्या है जिसे पूर्व में भारतनिवासी कैसी रुचि के साथ नित्य विधि पूर्वक किया करते थे। द्विजों को तो जिस दिन गले में जनेऊ पड़ताथा उसीदिन से सन्ध्या विधिपूर्वक बतलाई जातीथी औ उसी दिन से आचार्य्य प्राणायाम की शिक्षा आरंभ करदेतेथे किन्तु अब वर्तमान काल में जब से यज्ञोपवीत संस्कार की

क्रिया नाटक के समान कीजाती है, यथार्थ नहीं की जाती तबसे प्राणायाम की कैसी दुर्दशा होरहीहै। स्वयं आचार्य्य साहब ही नहीं जानते कि प्राणायाम किस पशुका नाम है फिर वेचारे चेला को क्या बतलावेंगे। झूठमूठ हाथों से नाक पकड़रक्खी औ इधर उधर देखने लगे। वेचारे एकदम कुछ नहीं जानते कि यह नाक मैंने क्यों पकड़ रखीहै। पूरक, कुम्भक, रेचक वेचारे न जाने किस गली में जाछुपेहैं। सच है क्रिया सिद्ध होवे तो कहांसे होवे। नाटक का काज तो नाटक साही होगा।

हमारे वहुतेरे श्रोता अपने मनही मन यह विचार झुंभला रहे होंगे कि क्या हम प्राणायाम नहीं जानते? क्या हम सन्ध्या नहीं जानते? हमतो नित्य सन्ध्या करतेहीहैं। जबसे हमारे गले में पवित्र सूत्र का बन्धन डालागयाहै हम नित्य सन्ध्या करतेहैं फिर स्वामीजी ने यज्ञोपवीत को नाटक क्यों कहा?

अहा! प्यारे सज्जनो! मैंने तो यज्ञोपवीत संस्कार को नाटक का खेल कहा उसका कारण यह है कि जैसे नाटक में एक कोई राजा वनगया उसने पचास विवाह करडाले उसकी एक २ रानी से दो २ लडके अर्थात् १०० वालक उत्पन्न हुए फिर उन १०० बालकों का भी विवाह होकर वहुतेरी सन्तान उत्पन्न हुई। अब वह राजा अपनी गोद में सैकडों पुत्र औ पौत्रों को खिलाता हुआ काल के वशीभूत हो यमलोक को सिधार गया, पुत्र औ पौत्रों ने उसका अग्निसंस्कार कर श्राद्ध करडाला।

अब थोड़ा विचारिये तो सही कि यदि-एक पुरुष के अनेक विवाह कियेजावें और उससे उक्तप्रकार वहुतेरी सन्तान उत्पन्न हों तो कितना समय होना चाहिये। आपको अवश्य कहना पड़ेगा कि सौ

दो सौ वर्ष से किसीप्रकार कम नहीं होसकता, पर नाटक में तो केवल एकही घंटा लगा अर्थात् सैकड़ों वर्ष का काम एक घंटे में समाप्त होगया, इसी प्रकार यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचर्य्य अवस्था को गुरु के समीप पूर्ण कर अपने गृह की ओर लौट स्नातक होना अर्थात् गृहस्थाश्रम में आना अधिक से अधिक ४८ वर्ष औ कम से कम १२ वर्ष का काम है। उपनयनविधि पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है कि

वेदꣳसमाप्य स्नायात् ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्य्यं वाऽष्टाचत्वारिꣳशकम् ॥ २ ॥ द्वादशकेऽप्येके ॥ ३ ॥ गुरुणाऽनुज्ञातः ॥ ४ ॥

अर्थात् वेदों को समाप्तकर ब्रह्मचारी स्नान करे अथवा ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य्य को समाप्तकर स्नान करे ॥ १, २ ॥ किसी आचार्य्य की यह भी सम्मति है कि गुरु से आज्ञा पाकर बारह ही वर्ष का ब्रह्मचर्य्य समाप्त कर स्नान करे अर्थात् गृहस्थाश्रम में आवे। मुख्य तात्पर्य यह है कि एकं २ वेद बारह २ वर्ष में पूर्ण रीति से समाप्त होते हैं इसलिये चारोवेदों का अध्ययन करनेवाला ४८ वर्ष, तीन का अध्ययन करनेवाला ३६ वर्ष, दो का अध्ययन करनेवाला २४ वर्ष औ केवल एक वेद का अध्ययन करनेवाला १२ वर्ष ब्रह्मचर्य्य में व्यतीत कर स्नातक होवे। और इसीकारण हमलोगों में कोई चतुर्वेदी कोई त्रिवेदी औ कोई द्विवेदी इत्यादि नामों से प्रसिद्ध था।

अब बताइये तो सही कि जो कांम कम से कम १२ वर्ष का था उसमें अब १२ घंटे भी नहीं लगते, उधर प्रथम वेदी में यज्ञोपवीत हुआ और दूसरी वेदी पर वेदारंभ कर थोड़ा भी विलम्ब नहीं होनेपाता हमारे आचार्य्य साहब तीसरी वेदी का कर्म आरंभ करदेतेहैं अर्थात्

झट पट उस ब्रह्मचारी को गृहस्थ बना डालतेहैं। तो ऐसी दशा में क्या आप इस उपनयन संस्कार को नाटक का खेल नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे। आपको कहनाही पड़ेगा कि वर्त्तमान काल में जितने संस्कार हैं सब नाटक के खेल के सदृश कियेजाते हैं।

प्यारे श्रोताओ! किसी ने कहा है "बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधिले" अर्थात् जो बात बीत गई उसे भूलजाइये औ अब आगे के लिये जिस उपाय से सब कुछ बनजावे वही कीजिये, देखिये पूर्ण धृति धारण कर किसी ऐसे गुरु के शरणागत होजाइये जो आपको उत्तम रीति से सन्ध्या सिखलाकर प्राणायाम भली भांति अभ्यास करादेवे। देखिये इस प्राणायाम से केवल आयु की वृद्धिही नहीं होती परु औरभी अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, लौकिक औ पारलौकिक लाभ होते हैं।

कात्यायनपरिशिष्टसूत्रे—वाङ्मआस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजो रिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह॥

अर्थात् प्राणायाम क्रिया के बल से मेरे मुख में वचन अर्थात् वाचाशक्ति, नासिका में प्राण अर्थात जीवित रहने की शक्ति (आयु) नेत्र में दृष्टि शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति, भुजाओं में बल, जंघों में उत्तम पराक्रम, औ इसी प्रकार मेरे शरीर के सब अवयवों में मेरी अभिलाषा अनुसार सर्वप्रकार की शक्तियां मेरे सहित उन्नति करें। तात्पर्य यह कि प्राणायाम करनेवालों की सारी शक्तियां पूर्ण प्रकार बढ़जाती हैं औ आयु की वृद्धि तो होतीही है। फिर अगस्त्यसंहिता का वचन है कि

प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम् ।
अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना ॥

अर्थात् विना प्राणायाम किये जितने कर्म कियेजाते हैं सब निरर्थक हैं इसलिये जो प्राणी सदा शुभ की इच्छा रखताहो उसे चाहिये कि प्राणायाम अवश्य करे क्योंकि प्रत्येक कर्म में प्राणायाम कर्तव्य है और इसी कारण जितने शुभ कर्म हैं सबों को शास्त्र ने "आचम्य प्राणायम्य" कहकर आरंभ किया है, अर्थात् सब कर्मों के आरंभ में आचमन औ प्राणायाम तो अवश्य ही करलेवे। क्योंकि सब कर्मों में चित्त की पवित्रता औ एकाग्रता की आवश्यकता है सो आचमन से पवित्रता औ प्राणायाम से एकाग्रता तो अवश्यही होती है।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।
योगी स्थाणुत्व माप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ॥

अर्थात् जब प्राण चलायमान होता है तब चित्त भी चलायमान होता है औ जब प्राण स्थिर होता है तब चित्त भी स्थिर होताहै और इसी से योगी ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच शान्ति लाभ करता है इसलिये चतुर प्राणी को उचित है कि वायु का निरोध करे। फिर अङ्गिरा का बचन है कि—

दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः ।
शोचमानस्त्वहोरात्रं प्राणायामैर्विशुध्यति ॥

अर्थात् जो प्राणी नानाप्रकार के पापों को करके दिनरात उनके ताप से जलता हुआ शोक में डूबारहताहै वह भी केवल प्राणायाम ही से शुद्ध होजाताहै॥ फिर कात्यायन का बचन है कि—

ओमिति व्याहरन् विप्रो यथाविधि समाहितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत्क्षणाज्ज्वलतेऽग्निवत् ॥
यथा पर्वतधातूनां दोषान् हरति पावकः ।
एवमन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते ॥

अर्थात् जो विप्र ओंकार उच्चारण करताहुआ पूर्ण रीति से व्याहृतियों के साथ तीन प्राणायाम करलेताहै वह उसीक्षण सर्व पापों से शुद्ध हो बलती हुई आग के समान तेजस्वी होजाताहै और जैसे पर्वत से निकलेहुए धातुओं को अग्नि शोधन कर उनके मलों को निकालदेताहै ऐसेही मनुष्यों के अन्तर्गत पापों के दोष प्राणायाम से भस्म होजातेहैं ॥

प्यारे सभासदो ! आप उक्त प्रमाणों से भलीभांति समझगये होंगे कि प्राणायाम से आयुकी वृद्धि के साथ २ और भी नानाप्रकार के लाभ हैं इसलिये आप सज्जनों को उचित है कि ऐसी उत्तम क्रिया पूर्ण और उचित रीति से सीखकर नित्य सन्ध्या के समय अभ्यास करें । हां इतना तो अवश्य है कि जो इस क्रिया को ठीक २ जानता हो औ स्वयं नित्य अभ्यास करता हो उसी से सीखें । केवल इधर उधर के ठगों औ पाषण्डियों के धोखे में पड़कर उलटी पलटी क्रिया न करने लगजावें । ऐसा करने से कईप्रकार की हानि होगी ॥

एक बात और भी आप को जतादेताहूं कि जब आप इस क्रिया में हाथ लगावें सबसे यम, नियम, के अङ्गो के पालन करने पर कटिबद्ध रहें क्योंकि विना यम, नियम, के क्रिया सिद्ध नहीं होगी ॥

विशेष कर इस क्रिया के साधन में धृति जो यम का छठवां *

* देखो वक्तृता नं० २ का ६५ पृष्ठ

अङ्ग है अवश्य पालन करना चाहिये। जबतक धृति बनीरहेगी इस साधन में चित्त की प्रवृत्ति भी बनी रहेगी औ जब धृति छूटजावेगी साधन भी छूटजावेगा। जिन पुरुषों में धृति नहीं है उनका यह स्वभाव है कि तनक भी शारीरिक अथवा मानसिक क्लेश संयोग वशात् सामने आया चट सन्ध्या के आसन को लपेट सपेट ताक पर रखछोड़ा और इस बेचारे आसन को ऐसा भूले कि ताक पर रखा २ सड़गया झींगुरों ने काट २ कर टुकड़े २ करडाले। मैंने बहुतों को यों पुकारते सुना है कि क्या करूं साहब! जबसे पूजा पाठ करने लगाहूं तब ही से नानाप्रकार की विपत्तियों को झेल रहाहूं। वह देखिये परसाल बूआ मरगई, इससाल भानजी जाती रही, अब थोड़े दिनों से धर्मपत्नी ऐसी रोगग्रस्त होरही है जिसकी औषधि इत्यादि में डाकृर औ वैद्यों को बुलाते २ नाकों दम आरहा है। बूआ भानजी के मरने की तो इतनी चिन्ता न हुई पर जब से स्त्री रुग्ण होगई है तब से मैं सन्ध्या बन्ध्या सभी छोड़ छाड़ चुप बैठरहाहूं। यदि स्त्री बच गई तो फिर सन्ध्या करूंहीगा नहीं जो मरगई तो जाती जिन्दगी फिर कभी पूजापाठ का नाम भी नहीं लूंगा॥

प्यारे श्रोताओ, विचारिये तो सही ऐसे २ धृतिरहित पुरुषों से क्या आशा की जासकती है जिनों ने कुटुम्बियों के मरने जीने पर पूजापाठ का करना औ त्यागना निर्भर रखा है। इसलिये मैं फिर बार २ अपने श्रोताओं को यही कहूंगा कि धृति का त्याग भूलकर भी न करें, चाहे हज़ारों लाखों उपद्रव क्यों न झेलने पड़ें पर कभी धर्म का त्याग न करें क्योंकि परमात्मा धर्म करने वालों की परीक्षा भी इसी प्रकार करता है। जब प्राणी उसकी कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण होजाता है तब उसपर ऐसी दयादृष्टि करता है कि अपने चरणों का समीपी बनालेता है। इसलिये धृति को तो अवश्य पालन

करनी चाहिये नैषध का वचन है कि "भज धृतिं त्यजभीतिमहेतुकाम्" धृति को भजो अर्थात् ग्रहण करो औ बिना कारण भय को छोड़दो। आप को एक महापुरुष का इतिहास कह सुनाताहूं जिससे यह बोध होजावेगा कि धृति क्या है औ उसे कैसे पालन करनी चाहिये। एक वार कहलीजिये "हरेराम हरेराम राम राम हरे हरे। हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" ॥

कथा मयूरध्वज की

महाराज मयूरध्वज ऐसे भगवद्भक्त हुए और इसप्रकार यम, नियम, के अंगों का पालन किया कि आजतक उनका यश सूर्य्य और चन्द्र के समान संसार में विख्यात है।

आप के धृतिधर्म की परीक्षा जिसप्रकार श्यामसुन्दर ने की औ जिस साहस के साथ आप इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए मैं अपने सभासदों को सुनाताहूं। यह इतिहास भिन्न २ पुराणों में भिन्न २ रीति से दिया हुआ है किसी में महाराज मयूरध्वज के स्वयं प्राण देने का साहस करना और किसी में उनके पुत्र ताम्रध्वज के प्राण का निछावर करना। इन दोनों में ताम्रध्वज के प्राण देने का वृत्तान्त अधिक ठौर में पायाजाता है इसलिये मैं इस स्थान में ताम्रध्वज के साहस के विषय वर्णन करूंगा। चित्त दे प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये।

वृत्तान्त यों है कि जब महाराज युधिष्ठिर महाभारतयुद्ध में विजय पाकर हस्तिनापुर की गद्दी पर शोभायमान हुए आपने अश्वमेध यज्ञ करने की अभिलाषा कर महावीर अर्जुन को अश्वमेध के अश्व के साथ दिग दिगन्तर की राजधानियों में भेज छोटे बड़े राजा महाराजा इत्यादि को अपने अधीन बनाने की आज्ञा दी, तदनुसार अर्जुन ने सबों को अपना अधीन करतेहुए जब सूर्य्यवंशियों की राजधानी कि

और अश्व लेजाने की इच्छा की तब महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र से जाकर यों प्रार्थना की, भगवन् ! अर्जुन ने देश देशान्तर के भूपतियों को अपने अधीन करतेहुए अब सूर्य्यवंशियों की ओर अश्व लेजाने की इच्छा की है किन्तु मुझे सूर्य्यवंशियों का पराक्रम भली भांति ज्ञात है ऐसा नहो कि अर्जुन को उनके संग अधिक कष्ट झेलना पड़े इसलिये उत्तम यह होगा कि आपने जैसे उसकी सहायता महाभारत में की है ऐसेही थोड़ा और क्लेश उठाकर उसकी सहायता करें । भगवान् श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर की प्रार्थना स्वीकार की और अर्जुन के संग रथ पर रथवान होबैठे । जब अश्व, महराज मयूरध्वज की राजधानी में आया उनके पुत्र ताम्रध्वज ने उसे रोक रखा और अर्जुन के साथ युद्ध करने को आरूढ़ होगया । युद्ध बड़े धूमधाम से होनेलगा। दोनों ओर से तीक्ष्ण बाणों की बौछार से वीर घायल होने लगे । जब अर्जुन का बाण ताम्रध्वज को रथ समेत सैकड़ों हाथ पीछे हटादेता है श्रीकृष्णचन्द्र कुछ नहीं बोलते पर जब ताम्रध्वज का बाण अर्जुन के रथ को केवल हाथ दो हाथ पीछे हटा देता है तब आप उच्च स्वर से बोलतेहैं । वाह र वीर ताम्रध्वज ! धन्य है तेरे माता पिता को ! जब अर्जुन ने कृष्ण को यों ताम्रध्वज के विषय बार २ वाह २ करते और उसकी वीरता की प्रशंसा करते देखा तब मारे ईर्षा के रहानगया, झट श्यामसुन्दर की ओर हाथ जोड़ बोले, भगवन् ! मैं अपने बाणों से उसे कोसों फेंक देताहूं तब आप कुछ नहीं बोलते औ वह मेरे रथ को केवल हाथ दो हाथ पीछे हटाताहै तो आप उसकी इतनी प्रशंसा करतेहैं । श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, अर्जुन ! उसके रथ में तो केवल घोड़ों का औ थोड़े से काष्ठ इत्यादि का बोझ है औ तेरे रथ पर तो मैं सारे ब्रह्माण्ड का भार लेकर बैठाहूं तिसे यह वीर ताम्रध्वज इस वेग से हटादेताहै । क्या ब्रह्माण्ड का बोझ हटादेना प्रशंस-

नीय नहीं है ? यह सुन अर्जुन बोले । भगवन् ! इस छोटे से बालक में इतनी वीरता होने का क्या कारण है ? श्री कृष्ण ने उत्तर दिया इसका पिता मयूरध्वज धृतिधर्म को पूर्ण रीति से पालन करता है इसी धृतिधर्म का यह प्रभाव है, फिर अर्जुन ने प्रश्न किया भगवन् ! धृति किसे कहते हैं औ मयुरध्वज में किस प्रकार की धृति है ? श्री कृष्णचन्द आनन्द कन्द ने धृति की व्याख्या कर यों आज्ञा दी कि चलो कल महाराज मयूरध्वज की धृति तुम्हें दिखाऊं ।

प्रातःकाल होते ही सन्ध्यादि से छुट्टी पा श्यामसुन्दर ने एक साधु का भेष बना अर्जुन को चेला बनाया और एक माया का सिंह बनाकर साथ लिये महाराज मयूरध्वज के द्वार पर पहुंचे । महाराज बड़े साधुसेवी औ भक्त थे, साधु का आगमन सुनते ही महलों से बाहर निकल आये, सत्कार पूर्वक साधु की अगवानी कर द्वार पर ला चरणामृत से घर सिंचवाया औ बोले भगवन् ! जो कुछ भोजन की इच्छा हो सामने लाऊं । साधु ने कहा भाई ! मेरा सिंह बहुत ही भूखा है प्रथमः इसे भोजन करादो पश्चात् मैं करूंगा । महाराज ने पूछा भगवन् ! बकरे, भैंसे, इत्यादि पशुओं में से जो आज्ञा हो लाऊं, साधु ने कहा मेरा सिंह पशुओं का भोजन नहीं करता मनुष्यों का मांस भक्षण करता है। महाराज ने कहा-जिन पुरुषों को मेरे राज्य में शूली इत्यादि के दण्ड देने की आज्ञा होचुकी है वे एक दिन तो मारे ही जावेंगे यदि आज्ञा पाऊं तो इनही में से एक दो को मंगालूं । साधु ने कहा नहीं ! नहीं !! मेरा सिंह ऐसे पापियों का मांस भक्षण नहीं करता यह तो केवल राजपुत्रों के कोमल मांस को भक्षण करता है इसलिये हे राजन् ! तू अपने राजकुमार ताम्रध्वज का मांस इस सिंह को भक्षण करा ! महाराज ने कहा जो आज्ञा, इतना कह महल के भीतर रानी से जा पूछा । प्रिये ! द्वार पर दो साधु आये हैं उनके साथ एक सिंह है उसे ताम्रध्वज का

मांस खिलाया चाहते हैं, इसमें तेरी क्या सम्मति है ? रानी ने उत्तर दिया—स्वामिन् ! आज मेरे इस गर्भ को सहस्रों धन्यवाद हैं जिस से मैंने एक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जो आज आतिथिसत्कार में काम आता है । अब राजा और रानी दोनों एक संग हो ताम्रध्वज के समीप पहुंचे, ताम्रध्वज अपने सखाओं के संग चौपड़ खेल रहा था माता पिता को आते देख झट उठ खड़ा हुआ औ हाथ बांध बोला हे तात ! क्या आज्ञा होती है ? किसलिये इतना कष्ट उठा यहां पधारे मुझही को क्यों न बुला लिया ? पिता ने कहा—बेटा द्वार पर साधु आये हैं वह अपने सिंह को तेरा शरीर भक्षण कराया चाहते हैं, इसमें तेरी क्या सम्मति है ? बालक ने उत्तर दिया, तात ! एक दिन तो यह शरीर मृत्यु के वश होहीगा औ इसकी तीन ही गति होगी, यदि इधर उधर डाल दियागया औ सड़गया तो कीड़े पड़गये अर्थात् क्रमि होगया, यदि काग, कुत्ते, श्याल इत्यादि भक्षण करगये विष्ठा होगया, यदि संबंधियों ने जलादिया तो भस्म होगया; अर्थात् क्रमि, विट्, भस्म यही तीन गति इस की होती हैं इसलिये आज मेरे इस शरीर को धन्यवाद है जो अतिथिसत्कार में काम आता है । इतना कह माता पिता के साथ होलिया औ बोला, मुझे शीघ्र साधु के समीप लेचलो । अब आगे २ ताम्रध्वज है औ पीछे २ माता पिता हैं । जब सब के सब द्वार पर साधु के समीप आये तब साधु अत्यन्त प्रसन्न हो बोले, हां ! हां !! यही कोमल बालक मेरे सिंह के आहार के योग्य है । बालक ने साष्टाङ्ग दण्डवत किया औ कर जोड़ महात्मा के सन्मुख खड़ा होगया ।

महात्मा ने आज्ञा दी—वत्स ! तू यहां बैठजा औ तेरे माता पिता अपने हाथ में आरा ले, तुझे दो टुकड़े कर डालें, फिर मेरा सिंह तेरे दाहिने अंग को भक्षण कर सन्तुष्ट होजावे औ

बायां अंग किसी स्थान में डाल दिया जावे। आज्ञा पाते ही राजकुमार चट साधु के समीप आनन्द पूर्वक बैठगया औ माता पिता की ओर देख बोला। हे मातः! हे पितः! आप अब विलम्ब न करें आरा से शीघ्र मुझे दो टुकड़े कर डालें, क्योंकि सिंह भूख से व्याकुल हो मेरे मांस की प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसा सुनते ही दोनों आरा ले बालक के मस्तक पर चलाया चाहते ही थे कि महात्मा ने कहा, सुनो! सुनो!! एक बात और सुनलो!!! तीनों महात्मा की ओर देखने लगे। महात्मा ने कहा यदि शरीर दो टुकड़े होने तक तीनों मेंसे किसी की आंख से आंसू चला तो मेरा सिंह यह मांस स्वीकार नहीं करेगा। तीनों ने उत्तर दिया, महाराज! आज हम-लोगों के धन्य भाग हैं जो आप ऐसे महानुभाव मेरे द्वार पर पधारे हैं आज हम से बड़भागी इस पृथिवीमंडल में कोई नहीं है जिसका शरीर अतिथिसत्कार में काम आरहा हो। हे कृपानिधे [illegible] श-रीर की क्या गिनती है यदि हम तीनों को आप का सिंह स्वीकार कर लेवे तो हम और भी अधिक अपने को धन्य २ समझें, आंख से आंसू क्यों निकलेगा, हम तीनों में किसी को शरीर अर्पण करने में तनक भी क्लेश नहीं है इसलिये आप की आज्ञानुसार किसी के आंख से आंसू नहीं निकलने पावेगा। इन तीनों की यह दशा देख राजमंत्री, पुरजन, परिजन, सुहृद, सखा, सब के सब शोकातुर हो-गये, देखने वालों का हृदय विदीर्ण होने लगा, सब के नेत्रों से अश्रु के प्रवाह चलनिकले, धीरज छूट गया, व्याकुलता बढ़ी, यह कठोर दृश्य किसी से देखा नहीं गया। मंत्री इत्यादि औ बहुतेरे सुहृदों ने हाथजोड़ महाराज से यों कहा राजन्! महात्मा को किसी और प्रकार से सन्तुष्ट करदेवें पर ऐसे कोमल राजकुमार को हाथ से न देवें। किन्तु महाराज ने हर्षपूर्वक सबों को समझाया। भाइयो मेरी

यही प्रतिज्ञा है कि मेरे द्वारपर जो अतिथि आकर जिसप्रकार का प्रश्न करे वह बिना किसी विचार के पूर्ण कियाजावे "नकार" शब्द का उच्चरण मात्र भी न होनेपावे। फिर प्यारे सुहृदा! यदि आज मैं पुत्रवियोग से घबड़ाकर अपना प्रण छोड़दूं तो मेरा सत्यसंकल्प नष्टहोताहै, धर्म जाता है, परलोक विगड़ता है, लोक में अपकीर्त्ति होती है क्योंकि—

रघुकुल रीति सदा चलिआई।
प्राण जाय वरु वचन न जाई॥

हम रघुवंशियों की सदा यह रीति चलीआई है कि प्राण जावे तो जावे पर बचन न जानेपावे। अहा! प्यारे सभासदो! सच है! किसी ने कहा है कि **धर्मस्य सूक्ष्मागतिः** धर्म की बड़ीही सूक्ष्म गति है। विचारिये तो सही, आज इनसे बढ़कर कौन धृतिधर्म्म का पालन करनेवाला होगा जो अपने प्राणप्रिय पुत्र को अपने हाथों से दो टुकड़े करडाले और आखों से आंसूतक न निकले। फिर हमारे राजकुमार ताम्रध्वज की साहस को तो देखिये जो अपने माता पिता के धर्म की रक्षा निमित्त अपना शरीर सिंह के अर्पण कर रहाहै, जिसके कोमल अङ्गों को क्षुद्र कंटकों ने भी कभी स्पर्श नहीं कियाथा, जिसके कोमल मस्तक की सूक्ष्म व्यथा को सुनतेही सैकड़ों डाक्टर, वैद्य, हाथों हाथ औषधि लिये हाथ बांधे खड़ेरहतेथे, जिसके कोमल मुखारविन्द पर श्रम के पंखे झलेजातेथे, जिसके हाथ पांव के तलवों में बहुमूल्य सुगन्धित तैल मलनेको दास दासियों खड़ीरहतीथी, जिसके शयन करने के निमित्त पुष्पों की शय्या सजी जाती थी, आज उस राजकुमार के मस्तक पर धर्म के कारण कठार आरा चलरहा है, चलने दीजिये, धृति धर्म की महिमा देखिये आइये जब तक आ-

रा चले हमलोग उस श्यामसुन्दर की ध्यां करते हुऐ हरे राम हरे राम उच्चारण करें देखिये क्या होता है।

प्यारे श्रोताओ! जब एवम्प्रकार ताम्रध्वज के मस्तक पर मुहूर्त्त मात्र आरा चला औ चलते २ नासिका तक पहुंचा तब राजकुमार के बायें नेत्र से थोड़ा अश्रु चला, महात्मा राजकुमार के कपोल पर अश्रु की धार देखते ही डपट कर ऊंचे स्वर से बोले। बस करो! बस करो!! मत आरा चलाओ!!! यह मांस मेरा सिंह स्वीकार नहीं करेगा। इतना सुनते ही बालक हाथ जोड़ नम्रता से बोला। साधो! मेरा क्या अपराध? मुझसे ऐसा कौन पाप हुआ जो मेरा मांस स्वीकार नहीं होता? अबतो मैं दो टुकड़े होचुका। अब तो मेरे प्राण के पयान का समय है। यदि अब मेरा मांस नहीं स्वीकार होगा तो न मैं स्वर्ग का रहा न नर्क का हुआ। महात्मन्! आप मेरा अपराध बतावें। यह सुन महात्मा बोले। देख तेरी बायीं आंख से आंसू चल रहा है औ मेरी प्रतिज्ञा थी कि यदि आंसू चलेगा तो तेरा मांस स्वीकार नहीं होगा। इतना सुनते ही बच्चा बोला। नाथ! आप ऐसा भूलकर भी न समझें कि क्लेश पाकर मैं आंसू बहारहा हूं। नहीं! नहीं! वरु मेरा बायां अङ्ग इस कारण रुदन कर रहा है कि दाहिने ने कौनसा पुण्य किया था जो आज अतिथिसत्कार में काम आता है औ मैंने क्या घोर पाप किया जो दूर फेंका जाता हूं

प्यारे सज्जनो! हृदय के डोला देने वाले इस कोमल वचन ने महात्मा को ऐसा मोम कर दिया कि मारे दया के रहा न गया झट आज्ञा दी कि सम्पूर्ण शरीर सिंह को भक्षण करा दो! ऐसा ही किया गया।

अब सिंह इच्छापूर्वक भोजन कर चुका महात्मा ने महाराज से

कहा । राजन् अब मेरे लिये भी भोजन का थाल ला । आज्ञा पाते ही पक्वानों से भरा भराया थाल सामने ला रक्खा औ भोजन की प्रार्थना की । महात्मा झट थाल के समीप बैठ गये और अर्जुन अपने शिष्य को थाल की दूसरी ओर बैठा कर बोले, हे राजन् ! तू भी अपनी धर्मपत्नी को एक ओर बैठजा ! एवम्प्रकार थाल की तीन ओर जब सब बैठ गये महात्मा ने महाराज से कहा, बेटा ! देख थाल का एक ओर शून्य दीख पड़ता है इसलिये तू अपने पुत्र ताम्रध्वज को लाकर इस चौथी ओर बैठादे तब मैं भोजन करूं । महाराज ने कहा भगवन ! ताम्रध्वज को कहां से लाऊं उसे तो सिंह भक्षण करगया है । इतना सुनतेही महात्मा लाल लाल आंखें निकाल बोले राजन ! देख जो तू ताम्रध्वज को नहीं लावेगा तो मैं कदापि भोजन नहीं करूंगा । ले अपना थाल रख । मैं जाता हूं । महात्मा को ऐसे क्रोधातुर देख महाराज बहुत व्याकुल हो चरण थाम बोले । महात्मन ! यदि आज मेरा धर्म ऐसही बिगाड़ डालना हो तो बिगाड़ डालो, मेरी प्रतिज्ञा भ्रष्ट कर डालो, मुझे अपयशी बनादो, पर अब मैं ताम्रध्वज को कहां से लाऊं । वह तो केहरी के पेट में पच रहा होगा । इतना कह महाराज अत्यन्त व्याकुल हुए और चारों ओर देख बोले । हे प्राणप्रिय पुत्र ताम्रध्वज ! देख ! तू कहां गया ! देख आज तेरे विना तेरे पिता का धर्म नाश होता है । हाय प्यारे सुहृदो ! क्या आज कोइ ऐसा नहीं जो ताम्रध्वज को प्रगट कर मेरा धर्म बचावे । हाय नाथ ! हे दीन बन्धो ! न जाने आज मेरे कौन से पाप उदय हुए ।

महाराज को इतना व्याकुल देख महात्मा बोले राजन् ! तू क्यों इतना मिथ्या धूम मचाता है ? जा ! जा ! अपने महल के भीतर जा और ताम्रध्वज को शीघ्र ला ! आज्ञा पाते ही महाराज महलों में

गये औ आते२ताम्रध्वज को इधर उधर ढूंढते हुए जब उस स्थान में जहां ताम्रध्वज नित्य शयन करता था पहुंचे, क्या देखते हैं कि राजकुमार पीताम्बर ओढे घोर निद्रा में शयन कर रहा है, देखते ही आश्चर्य के अथाह सागर में ऊब डूब होने लगे औ विह्वल होकर पुकारा बेटा ताम्रध्वज ! बेटा ताम्रध्वज ! ! पिता के शब्द का आहट पातेही ताम्रध्वज "हरे राम, हरे राम,, कहता हुआ उठ पड़ा, पिता ने बड़े आनन्द से गोद में ले मुखचुम्बन किया औ पूछा वत्स! तू तो मेरे देखते २ सिंह को भक्षण करा दिया गया फिर यहां कैसे आया, क्या यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रहाहूं ! राजकुमार ने कहा मुझको तो महात्मा गोद में ले यहां सोलागये औ आज्ञा देगये कि जबतक तेरा पिता तुझे बुलाने आवे तबतक तू सुखपूर्वक शयन कर जा।

इतना वचन बालक के मुखसे श्रवण करतेही महाराज आश्चर्य के महासागर में ऊब डूब होने लगे और ऐसा अनुमान किया कि हो न हो मेरे द्वार पर आज शाक्षात् स्वयम् परमात्माही का आगमन हुआ है ऐसा न हो कि जबतक मैं द्वारपर जाऊं तबतक वे अन्तर्धान होजावें एवम्प्रकार विचारकर ताम्रध्वज की भुजा पकड़ घसीटते हुए अत्यन्त शीघ्रता के साथ द्वार की ओर चले। इधर श्यामसुन्दर ने विचारा कि अवतो सारीबातें प्रगट होगई अब गुप्त रहने की आवश्यकता नहीं है, झट अपनी मोहिनी मूर्त्ति धारण करली, मस्तक पर मोरमुकुट वायु के लहरों से झोंके खाते हुए, ललाटपर चन्दन की रेखा विद्युत के समान चमकतीहुई, घुंघुराले केश के मध्य कुण्डल की अद्भुत झलक सूर्य्य की किरणों को लज्जित करती हुई, अधर मुरली मधुर ध्वनी से बजती हुई, कटि में पीताम्बर की कछनी सुर, नर, मुनि, को मोहित करतीहुई कैसी जानपड़ती है मानों त्रिभुवन की छवि एकठौर सिमटकर

त्रिभंगीरूप धारण किये खड़ी है। महाराज मोरध्वज अपने प्रियपुत्र ताम्रध्वज को साथ लिये बाहर आतेही श्यामसुन्दर की मनमोहिनी मूर्ति देख प्रेम में मग्न हो साष्टाङ्ग चरणों पर गिरे। श्यामसुन्दर ने दोनों को उठा हृदय में लगाया औ बोले—बेटा मयूरध्वज! तेरे समान धृतिधर्म का पालन करनेवाला "न भूतो न भविष्यति" न कोई हुआहै न होगा, मैं तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। वर मांग क्या मांगताहै? महाराज ने कहा भगवन! कलियुग में किसी धर्मात्मा की ऐसी परीक्षा न करनी जैसी आपने मेरी की। श्यामसुन्दर ने एवमस्तु कह मस्तक पर हाथ फेरा औ अभय करदिया।

महाराज मयूरध्वज ने अर्जुन का अश्व लौटादिया औ ताम्रध्वज का अपराध क्षमा करवाया।

प्रिये सभासदो! उक्तप्रकार जो प्राणी धृतिधर्म को धारण किये अपनी क्रिया का पालन करतारहेगा उसपर श्यामसुन्दर की वैसीही कृपा होगी जैसी मयूरध्वज पर। अब सब मिल एकबार बोलिये—हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥

इति



नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

वक्तृता ४
LECTURE 4

विषय

ब्रह्मविद्या की प्रथम श्रेणी कर्म

के मुख्य अङ्ग

सन्ध्या

से

आनन्द की प्राप्ति

ॐ यआत्मदाबलदा यस्यविश्वउपासते प्रशि-षंयस्यदेवाः।यस्यच्छायाऽमृतंयस्यमृत्युः कस्मैदेवाय हविषाविधेम ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्य्ययोगात्, अगति च गतिमत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविधविषयधर्म्मग्राहि मुग्धेक्षणानां, प्रणतभयविहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि ।

आज बड़े आनन्द की वार्त्ता है कि हमलोगों के सनातनधर्म की उन्नति निमित्त यह सुन्दर मण्डली इस स्थान में सुशोभित हुई है।

आज मानों सनातनधर्म की नौका हमारे सभासदरूप यात्रियों को लेकर भवसागर के एक किनारे से ऐसे वेग के साथ निकलचली है जहां कर्मकाण्ड रूप करुवार औ उपासना रूप पतवार काम, क्रोध, लोभ, मोह, औ अहंकार, रूप लहरों को काटते चलेजारहे हैं । औ जहां ज्ञान का मस्तूल अपने ऊंचे शृङ्ग से ब्रह्मलोक के साथ बातें कररहाहै । जहां उपदेष्टा रूप कप्तान हरिनाम रूप कंपास को लगायेहुए विवेक औ विराग के बन्दरगाहों में दृढ़ता का लंगर डालताहुआ, प्रेम का पाल उड़ाता हुआ, औ इन यात्रियों को काल के तूफ़ान से बचाता हुआ ईश्वर के युगल चरणारविन्द रूप दूसरे किनारे तक पहुंचाने को तयार है ।

प्रिय सज्जनो ! मैं तीनदिन से लगातार आपको सन्ध्या के विषय वक्तृता श्रवण करारहाहूं। प्रथम दिवस के व्याख्यान में जब मैं ने सन्ध्या का शब्द मुंह से बाहर निकालाथा तब आपलोगों को सन्ध्या एक तुच्छ क्रिया जानपड़ीथी किन्तु अब देखने से औ गत दो दिवस के व्याख्यानों पर विचारने से आप बुद्धिमानों पर भलीभांति प्रगट हुआ होगा कि सन्ध्या कोई साधारण क्रिया नहीं है वरु सब क्रियाओं की माता है, जैसे माता अपनी अनेक पुत्रियों को दूध पिलाकर पालती औ पुष्ट करती है ऐसीही यह सन्ध्या लौकिक, पारलौकिक, शारीरिक, औ मानसिक सर्वप्रकार की क्रियाओं को पुष्ट करती है, मैं बारंबार कहता चला आताहूं कि कोई क्रिया बिना सन्ध्या सिद्ध नहीं होसकती ॥

ईश्वर-की प्राप्ति (وصال بزيدانيا) (Emancipation) औ आयुकी वृद्धि (ترقي حيات) (Longivity of life) सन्ध्या से क्यों औ कैसे होती हैं आप पूर्णप्रकार श्रवण करचुके हैं । अब उसी सन्ध्या से आनन्द अर्थात् सुख कैसे लाभ होता है आज श्रवण कराऊंगा ।

सन्ध्या से आनन्द

अर्थात्

सुख की प्राप्ति

मेरे प्रिय सभासद भलीभांति विचार देखें कि इस सृष्टि में क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या कीट, क्या पतंग, क्या देवता, क्या पितर, क्या ऋषि; क्या मुनि, सबही आनन्द की खोज में अहर्निश इधर उधर फिर रहे हैं, चाहे वह आनन्द विषयानन्द हो अथवा ब्रह्मानन्द वा परमानन्द हो पर जीव मात्र को आनन्द ही की खोज है ।

अब पूछना चाहिये कि जीव मात्र केवल आनन्द की खोज में क्यों परिश्रम कर रहे हैं ? उत्तर यह है कि जो पदार्थ जिस संपूर्ण (كل)(Whole)का अंश (جز)(Portion) होता है अर्थात् जो जहां से निकल कर अलग होता है वह फिर अपने संपूर्ण अर्थात मूल ही की ओर दौड़ता है । जैसे किसी मिट्टी के खण्ड अथवा पत्थर के टुकड़ों को आकाश की ओर चाहे कितना भी बल लगा कर फेंकिये तो वे कुछ ऊपर जा झट पृथिवी की ओर गिर जावेंगे आकाश की ओर नहीं जावेंगे क्योंकि वे मट्टी के अंश हैं इसलिये अपने संपूर्ण पृथिवी ही की ओर दौड़ते हैं । इसी प्रकार अग्नि की ज्वाला, धूम, औ वाष्प इत्यादि को आप चाहे कितना भी यत्न कर पृथिवीकी ओर रोकिये पर वे कदापि न रुकेंगे झट आकाश की ओर

दौड़ जावेंगे । तात्पर्य यह है कि मट्टी औ जलका मण्डल (भूमण्डल) नीचे है इसलिये मट्टी औ जल के पदार्थ छोटे से छोटे अथवा बड़े से बड़े क्यों न हों सब भूमण्डल की ओर खिंचेंगे औ अग्नि का मण्डल जो सूर्य्यमण्डल है वह ऊपर की ओर है इसलिये धूम, वाष्प, (भाप) औ ज्वाला इत्यादि सब आकाशही की ओर खिंच जावेंगे " बैलून उड़ते आपलोगों ने देखाही होगा। "

उक्त उदाहरणों से आप समझ गये होंगे कि प्रत्येक अंश अपने संपूर्ण की इच्छा करता है । अथवा यों कहलीजिये कि जो जहां से उत्पन्न होता है वह सदा अपने उत्पात्तिस्थान की अभिलाषा करता है, देखिये बछवे गैया की ओर, बच्चे मैयाकी ओर, किस प्रेम औ उत्साह से दौड़कर उनमें लिपट जातेहैं औ प्रसन्न हो दूध पान करने लगजाते हैं ।

वेद, शास्त्र, श्रुति, स्मृति इत्यादि से सिद्धांत किया हुआ है कि यह जीव ब्रह्म का अंश है औ ब्रह्म आनन्द स्वरूप ही है इसी कारण यह जीव अपने संपूर्ण आनन्द की सदा इच्छा करता है। क्या ज्ञानी, क्या मूढ़, सब आनन्द ही की इच्छा कर रहे हैं । हां इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा कि मूढ़ विषयानन्द की इच्छा करते हैं औ ज्ञानी, ब्रह्मानन्द वा परमानन्दकी इच्छा करते हैं। जो कुछ हो किसी प्रकार का आनन्द क्यों न हो, है वह आनन्द, इतना तो सब ही जानते हैं कि विषयानन्द नश्वर अर्थात् थोड़ी देर के लिये है औ ब्रह्मानन्द वा परमानन्द सनातन औ स्थायी है इसलिये विषयानन्द में चित्त लगाना निरर्थक है औ ब्रह्मानन्द वा परमानन्द की ओर दौड़ना सार्थक है ।

यदि किसी को शंका हो कि जीव ब्रह्म का अंश कैसे है तो देखो प्रथम वक्तृता पृष्ट २९ से २८ तक ।

अब रहा यह कि ब्रह्म आनन्द स्वरूप ही है और उसी आनन्द

से सब उत्पन्न हुए हैं इसमें क्या प्रमाण ? सो सुनिये एकाग्र चित्त होजाइये ।

आनन्दमयोऽभ्यासात् (ब्रह्मसूत्र अध्याय १ सूत्र १२)

अभ्यासात् अर्थात् नानाप्रकार के ग्रन्थों में बारम्वार ब्रह्म के विषय आनन्द शब्द का प्रयोग होने से वह आनन्दमय कहा जाता है जैसे तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है " आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् " ऐसे और भी अनेक श्रुतियों में ब्रह्म को आनन्दमय ही सिद्ध किया है ।

यदि शंका हो कि व्याकरण के **मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४ । ३ । १४३ ।** अर्थात् "प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्याद् विकारावयवयोः " (तात्पर्य यह है कि वेद को छोड़ अन्य ग्रन्थों में विकार तथा अवयव के अर्थ प्रकाश करने में प्रातिपदिक से परे " मयट् " प्रत्यय हो, आहार अथवा वस्त्रवाचक को छोड़ कर) इसलिये इस सूत्र के अनुसार ब्रह्म के विषय आनन्दमय शब्द प्रयोग करने से ब्रह्म विकारवान् हुआ तो इसके उत्तर में वेदान्त शास्त्र के कर्त्ता श्री व्यासदेव फिर कहते हैं कि—

विकारशब्दान्नेतिचेन्नप्राचुर्यात् (अध्याय १ सूत्र १३)

नहीं, विकारवान नहीं, किन्तु उसी व्याकरण के अन्य सूत्र से **तत्प्रकृतवचने मयट्** ५ । ४ । २१ । अर्थात " प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं तस्य वचनं प्रतिपादनम् ,, तात्पर्य यह है कि पूर्ण रूप से प्रारम्भ की हुई वस्तु के कहने में समस्त प्रथमान्त से परे मयट् प्रत्यय हो, पुनः बाहुल्य करके प्रारम्भ की हुई वस्तु का कथन जिसके विषय हो उसअर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से परे "मयट्" प्रत्यय हो, बाहुल्य करके जो आरम्भ कियाजावे उसे प्रकृत कहते हैं इसी कारण यहां सूत्र में प्रकृतवचने कहा ।

उक्त सूत्र से यह सिद्धान्त हुआ कि जिसमें बहुत आनन्द हो वह आनन्दमय है। इसी कारण उस ब्रह्म को आनन्दमय वार वार श्रुतियों ने कथन किया है।

फिर श्रुति का वचन है कि—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति०

अर्थात् आनन्द ही से ये सब चराचर जीव उत्पन्न होते हैं औ आनन्द ही से पालन कियेजाते हैं फिर अन्त में आनन्द ही की ओर जातेहैं और उसी आनन्द में प्रवेश करजाते हैं। इस अर्थ को अधिक फैलाकर वर्णन करने से मुख्य व्याख्यान का विषय रहजावेगा समय थोड़ा है फिर किसी और दिन के व्याख्यान में प्रसंग देखकर विधिपूर्वक वर्णन करूंगा जबतक वर्त्तमान विषय के सिद्धान्त निमित्त संक्षिप्त अर्थ कहकर श्रोताओं को केवल इतनाही जनादेताहूं कि सब जीव आनन्द ही से उत्पन्न होते हैं, पालेजाते हैं, औ उसी में लय होजाते हैं।

अब भलीभांति यह बात सिद्ध होगई कि जीव ब्रह्म का अंश है, सो ब्रह्म आनन्दमय है और उसी से सब निकलेहुए हैं, इसीकारण सब के सब आनन्द ही की अभिलाषा करते हैं।

देखिये छोटे २ अबोध बालक जबतक उनके अन्तःकरण पर किसीप्रकार के द्वन्द्व का आवरण नहीं पड़ता तबतक माता पिता की आंखे बचा अवकाश पा कैसी फुरती से झट घर से बाहर निकल खेल, कूद, तमाशे, नाच, रंग में दौड़जातेहैं। बकरियों के छोटे २ बच्चे कैसे आनन्द से इधर उधर दौड़ते रहते हैं। मृगशावक अर्थात् मृगों के बच्चे चौकड़ियां भरतेहुए कैसे आनन्द से समय विताते हैं। चिड़िया

सांझ सकारे, वन, वाटिका, औ बागों में भिन्न २ पुष्पों औ डालियों पर किस प्रकार चारों ओर उड़तीहुईं आनन्द से चहचहे मारती हैं, मछलियां सरिता, सरोवर, इत्यादि के गंभीर जल में कैसी कलोलें करती हैं । भौंरे कमल इत्यादि पुष्पों पर किस आनन्द से गुंजार करते हैं । तात्पर्य्य यह कि जीवमात्र के स्वभाव सेही सिद्ध है कि आनन्द ही उनका स्वयम्स्वरूप है ।

छोटे बड़े सबही जबकभी कोई वस्तु, तस्तु, सोना, चांदी, हीरा लाल, मोती, वस्त्र, हाथी, घोड़े, बाइसिकल, मोटर, इत्यादि किसी स्थान से पाजातेहैं तो कैसे आनन्द होतेहैं सबों पर भली भांति प्रगट है । इसीप्रकार पुत्र, कलत्र, इत्यादि नानाप्रकार के विषयों को देख जीवमात्र आनन्द को प्राप्त होतेहैं ।

अब शंका यह है कि विषय तो अनित्य है, सदा निन्दनीय है, इसमें कुछ भी सार नहीं है, महात्माओं ने इसे मृगतृष्णा के समान धोखा देनेवाला वर्णन किया है फिर इसमें आनन्द का प्रवेश कैसे हुआ ? तो उत्तर यह है कि सब पदार्थों में ब्रह्मसत्ता व्यापने के कारण उस ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द का बिम्ब पड़रहाहै इसीकारण अविद्याग्रस्त प्राणियों के अन्तःकरण पर माया का आवरण पड़े रहने से इन पदार्थों में भी आनन्द का भान होता है । जैसे एक किसी पात्र को जल से भरकर सूर्य के सन्मुख रखदीजिये तो आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि उस पात्र के जल में सूर्य है, उसकी किरणें सामनेवाली दीवाल पर वैसी ही पड़रही हैं जैसे सच्चे सूर्य की किरणें दूसरी भीत पर । हां इतना भेद तो अवश्य है कि जितना ताप वा प्रकाश यथार्थ सूर्य के किरणों में है उतना बिम्बवाले में नहीं, पर कुछ न कुछ है तो सही, इसी प्रकार किसी सुन्दर चित्र को देख क्षणमात्र के लिये आप का चित्त कैसा मोहित औ आकर्षित होता है मानो आप यथार्थ उसे देख रहे हैं जिसका वह चित्र है । मैंने

बहुतों को देखा है कि अपने स्वर्गवासी माता, पिता, पुत्र, मित्र, इत्यादिकों के चित्र को देख रोने लगजाते हैं औ दिन २ भर अन्न जल ग्रहण नहीं करते, अब थोड़ा विचारिये तो सही, उस चित्र में तो चित्रवाले के शरीर अथवा मुख का रत्ती मात्र भी रुधिर अथवा मांस नहीं है केवल दो चार लकीरें टेढी सीधी खिंची हुई हैं फिर देखने से इतना शोक क्यों व्यापा तो कारण यही है कि वह चित्र किसी का बिम्ब है अतएव उस बिम्ब में क्षणमात्र के लिये आनन्द अथवा शोक का भान होता है। इसी प्रकार विषयानन्द उस ब्रह्मानन्द का बिम्ब होने के कारण जीवमात्र को अपनी ओर खींच लेता है।

प्यारे सभासदो! यह लौकिक आनन्द उस यथार्थ आनन्द के समान अनन्त औ असीम नहीं, कहीं न कहीं जाकर इस का अन्त होजाता है इसी कारण श्रुति ने लौकिकआनन्द का उदाहरण दिखलातेहुए यथार्थ ब्रह्मानन्द का अनुमान करा दिया है अर्थात् लौकिकआनन्द को सामने रखकर उस अलौकिक आनन्द का महत्व वर्णन कर उसकी प्राप्ति की श्रद्धा दिलाई है। जैसे किसी ने लन्दन (London) की शोभा नहीं देखी तो उसको जनानेके लिये यह पूछना पड़ता है कि तुमने मुम्बई (Bombay) की शोभा कभी देखी है? वह उत्तर देता है कि हां साहब देखी है, तब उसको यों कहना पड़ता है कि जितनी शोभा तुमने मुम्बई में देखी है उससे सौगुना अथवा हज़ारगुना लन्दन की शोभा अधिक जानो। ऐसा कहने ही से सुननेवाले को लन्दन की शोभा का महत्व जानपड़ता है औ उसके देखने की श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार मनुष्यों को लौकिक आनन्द अर्थात् मानुषी आनन्द का बोध पहले से है इसीलिये श्रुति ने लौकिक आनन्द दिखलाते हुए ब्रह्मानन्द को कैसे दिखलाया है सो सुनिये एकाग्र चित्त होजाइये।

ॐ सैषाऽऽनन्दस्य मीमाꣳसा भवति। युवा स्यात्साधु युवाऽध्यायिकः। आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषाआन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितॄणांचिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजानांदेवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं अजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्म्मदेवानामानन्दः। ये कर्मणादेवानपि यन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये

शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको ब्रह्मणआनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । स यश्चायंपुरुषे यश्चासावादित्ये । स एकः ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् द्वितीयाध्याय ब्रह्मानन्द वल्ली अष्टम अनुवाक

अर्थात् अब आनन्द का विचार होता है । पहले मानुषी आनन्द दिखलाते हैं । मनुष्य युवा हो श्रेष्ठ हो, चारों वेद, उपवेद, श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, शिक्षा, छन्द, (न्याय, मीमांसा, इत्यादि षटशास्त्र) मंत्र, तंत्र, भूतविद्या, पिशाच विद्या इत्यादि जितनी विद्या हैं सब में परिपूर्ण हो, गुरु से सब प्रकार की शिक्षा पाए हुए हो, दृढ़ हो, बली हो, औ संपूर्ण पृथिवीमंडल का वित्त जिसको पूर्ण रूप से प्राप्त हो अर्थात् संपूर्ण भूमण्डल का अकेला एकही चक्रवर्त्ती राजाधिराज हो । इतने पदार्थ जिस मनुष्य में हों उसका आनन्द एक मानुप आनन्द कहा जाता है । ऐसे १०० मानुप आनन्द को एकत्र कीजिये तो वह एक मनुष्यगन्धर्व * का आनन्द कहा जाता है अर्थात् एक मनुष्यगन्धर्व का आनन्द पहले कहे हुए मानुपआनन्द से सौगुना अधिक है । सो उस ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय को प्राप्त है जो सर्वकामनाओं को हत करचुका है अर्थात् निष्काम होगया है । फिर वे जो १०० मनुष्यगन्धर्वों के

* मनुष्य होकर जो कर्म, उपासना के बल से गन्धर्वपने को प्राप्त हुआ है, जो अन्तर्धानादि होने की शक्ति रखता है, औ सूक्ष्म कार्य कारण करके अतिनाहक शरीरवाला है, इसलिये उसको शीत, उष्ण की पीड़ा कम व्यापती है । सो मनुष्यगन्धर्व कहाजाता है ।

आनन्द हैं। सो एक देवगन्धर्व † का आनन्द है। सो निष्काम श्रोत्रिय को आप से आप प्राप्त है। फिर वे जो १०० देवगन्धर्वों के आनन्द हैं सो एक चिरलोकवासी पितरों का आनन्द है। सो निष्काम श्रोत्रिय को स्वयं प्राप्त है। फिर जो १०० चिरलोकवासी पितरों के आनन्द हैं सो एक आजानजदेव * का आनन्द है। सो कामना रहित श्रोत्रिय को होताही है। फिर वे जो १०० आजानजदेवों के आनन्द हैं सो एक कर्मदेव का आनन्द है, जो वेदोक्त अग्निहोत्र इत्यादि कर्मों को विद्या के ज्ञान सहित कर देवभाव से उत्पन्न होते हैं उनको कर्मदेव कहते हैं। सो निष्काम श्रोत्रिय को प्राप्त है। फिर जो १०० कर्मदेवों के आनन्द हैं सो एक देवता का आनन्द है अर्थात् देवानन्द है। सो कामना रहित श्रोत्रिय पाता है। कर्मदेव के आनन्द से केवल देवता का आनन्द सौ गुना अधिक इसी कारण से कहा कि कर्मदेव तो अपने कर्मानुसार नियत काल तक देवलोक का सुख भोग लौट आते हैं औ देवता † वे हैं जो आदि सृष्टि से ब्रह्मा के संकल्प से उत्पन्न हो प्रलय काल पर्यन्त देवलोक में स्थित रहते हैं। फिर वे जो १०० देवताओं के आनन्द हैं सो एक इन्द्र का आनन्द है क्योंकि इन्द्र देवताओं का अधिपति है। सो निष्काम श्रोत्रिय को सहज में ही प्राप्त है। फिर जो १०० इन्द्र के आनन्द हैं सो एक बृहस्पति

---

† जो सृष्टि के आरम्भ से जाति से ही गन्धर्व लोक में गन्धर्व होकर उत्पन्न हुए हैं वे देवगन्धर्व कहे जाते हैं।

* जो श्रुति स्मृति उक्त कर्मों को करके देवलोक में देवभाव से उत्पन्न हो किसी नियत काल तक फल को भोगते हैं उन को आजानजदेव कहते हैं।

† अष्टवसु ८, एकादश रुद्र ११, द्वादश आदित्य १२, चन्द्रमा प्रजापति २ ये सब मिल ३३ देवता हैं।

का आनन्द है। क्योंकि यह बृहस्पति इन्द्र का गुरु है जिसकी आज्ञा में इन्द्र वर्तता है औ जिसको ईश्वर तुल्य जानता है । इसलिये बृहस्पति का आनन्द इन्द्र से सौ गुना अधिक है। सो कामना से रहित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ को सदा प्राप्त है। फिर वे जो १०० बृहस्पति के आनन्द हैं सो एक त्रैलोक्यमय शरीर वाले विराडभिमानी प्रजापति का आनन्द है। सो श्रोत्रियं अरु कामना से रहित पुरुष को होता है। फिर वे जो १०० प्रजापति के आनन्द हैं सो एक ब्रह्मा का आनन्द है। सो श्रोत्रिय कामना रहित को होता है अर्थात् जो एक विराट शरीर वाले प्रजापति का आनन्द है तिस आनन्द से शतगुण अधिक ब्रह्मा नाम करके हिरण्यगर्भ का आनन्द है। अर्थात् जहां आनन्द का अतिशय होजाता है। जहां सर्व प्रकार के आनन्दों के भेद की एकता होजाती है, जहां आनन्द का निमित्त धर्म औ तिसको विषय करनेवाला ज्ञान एकता को प्राप्त होजाता है। सो यह जो हिरण्यगर्भ का आनन्द भी जिस आनन्द रूप सागर के सामने एक बूंद के समान है सो ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द है। सो यह आनन्द कामना से रहित पुरुष को प्राप्त होता है। क्योंकि उस को मानुषी आनन्द से लेकर हिरण्यगर्भ तक के आनन्द की भी इच्छा नहीं है इसकारण वह परमानन्द को प्राप्त है। क्योंकि जब तक किसी वस्तु की इच्छा रहेगी तब तक उस की प्राप्ति के अर्थ श्रम होगा और उस श्रम में कभी २ कुछ उपद्रव होजाने से और उस प्राप्त हुए अर्थ के वियोग होजाने के भय से सदा चिन्ता बनी रहती है इसकारण कामना करनेवाला सदा दुखी रहता है। अतएव जिस निष्पाप धर्मात्मा श्रोत्रिय पुरुष की जितनी २ कामना अधिक निवृत्त हुई हैं सो तिस के अनुसार अधिकाधिक आनन्द को प्राप्त होता है, तात्पर्य यह है कि जिसको मानुषी आनन्द अर्थात् चक्रवर्ती के आनन्द की कामना उठ गई है उसे मनुष्यगन्धर्व का आ-

नन्द प्राप्त है, और जिसे मनुष्यगन्धर्व के आनन्द की कामना उठगई है उसे देवगन्धर्व का आनन्द प्राप्त है । इसी प्रकार जिसे देवगन्धर्व की भी कामना निवृत्त होगई है उसे पितरों का आनन्द प्राप्त है । अर्थात् उत्तरोत्तर आनन्द का तिरस्कार करते हुए जिसने हिरण्यगर्भ के आनन्द का भी तिरस्कार किया है उसे ही अलौकिक ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। (यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये) सो जो यह अलौकिक आनन्द सो इस पुरुष में है और सो इस आदित्य में है । (स एकः) सो एक ही है अर्थात् सो एक ब्रह्मानन्द है, सदा एक रस है जब एक बार प्राप्त हुआ तो फिर नाश नहीं होता।

प्रिय श्रोताओ! अब आप समझ गये होंगे कि मानुषीआनन्द से हिरण्यगर्भ का आनन्द दशमहासंख गुणा अधिक है सो गणना कर आप को बताता हूं सुनिये ।

मनुष्य का आनन्द		१
मनुष्यगन्धर्वका	,,	१००
देवगन्धर्व का	,,	१००००
पितरों का	,,	१००००००
आजानजदेवका	,,	१००००००००
कर्मदेव का	,,	१००००००००००
देव का	,,	१००००००००००००
इन्द्र का	,,	१००००००००००००००
बृहस्पति का	,,	१००००००००००००००००
प्रजापति का	,,	१००००००००००००००००००
ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ)	,,	१००००००००००००००००००००

प्रियसज्जनो ! जिस प्राणी ने इस हिरण्यगर्भ के आनन्द को भी जो मानुषीअनन्द से दस महासंख गुना अधिक है तिरस्कार कर दिया है उसी को उस ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द की प्राप्ति है। क्योंकि यह परमानन्द एक महासागर है तहां हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का आनन्द एक महानद के जल के समान है, प्रजापति का आनन्द नदी के जलवत् है, बृहस्पति का आनन्द एक बड़े ताल के तुल्य है, तह इन्द्रका आनन्द छोटे तालके समान है, फिर देवता का आनन्द एक सरोवर के जल ऐसा है, तहां कर्मदेवों का आनन्द कुण्ड के तुल्य है, फिर आजानजदेवों का आनन्द वापी के जल समान है तहां पितरों का आनन्द एक बड़े कूप के ऐसा है, देवगन्धर्वों का आनन्द एक छोटे कूप के जल के समान है, मनुष्यगन्धर्वों का आनन्द एक गृहस्थ के घर के जल इतना है, औ चक्रवर्त्ती का आनन्द अर्थात् मानुषीआनन्द एक ग्लास के जल के समान देख पड़ता है। अथवा यों कहलीजिये कि वह परमानन्द लवण की एक बड़ी विशाल खान है, तहां ब्रह्मा का आनन्द लवण का एक बहुत बड़ा ढेर है जो पर्वत के समान एक स्थान में रैलीब्रादर्स *कम्पनी (Ralli-Brothers & Co) की दूकान में पड़ा है। प्रजापति का आनन्द वह लवण है जो हमारे देश के बनिये ऊंटों पर बोझकर बेचने को लिये जारहे हैं अथवा रेलगाड़ियों में लदा जारहा है, बृहस्पति का आनन्द वह लवण है जो छोटे २ बनिये अपनी दूकान पर रख कर विक्रय कर रहे हैं, तहां इन्द्र का आनन्द वह लवण है जो एक गृहस्थ के भंडार में एक बोरे में रखाहुआ है, देवताओं का आनन्द

---

* यह एक बहुतही बड़ा सौदागर है जिसका वाणिज्य वर्त्तमान काल में यूरोप, अमेरिका, इत्यादि देश देशान्तरों में फैलरहा है ॥

वह लवण है जो उस गृहस्थ के नित्य दिन के व्यय के लिये एक पात्र में रखा है, कर्मदेवों का आनन्द वह है जो किसी एक पात्र के दाल, शाक में दिया गया है तहां आजानजदेवों का वह आनन्द है जो एक प्राणी के भोजन में आगया है, फिर पितरों का आनन्द वह लवण का अंश है जो एक प्राणी प्यासा होने पर थोड़े मिर्च के साथ मिला कर जलपान करता है, देवगन्धर्वों का आनन्द लवण का वह अंश है जो छोटे २ चार पांच मास के बच्चों को किसी औषधि में मिलाकर देते हैं, फिर मनुष्यगन्धर्वों का आनन्द लवण के उस अंश के ऐसा है जो बच्चों को देने के समय कुछ हाथ में लगा रहजाता है, तहां चक्रवर्ती का आनन्द अर्थात् मानुषीआनन्द लवण का वह एक छोटा कण है जो पृथिवी पर गिर गया है ।

प्रियसभासदो! उक्त प्रकार अंशांशी भाव कर के यह आनन्द ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका पर्यन्त व्याप रहा है जिसके आश्रय जीव मात्र वर्त्तमान हैं ।

अब परमानन्द कैसे प्राप्त होता है जिज्ञासुओं को इसकी प्राप्ति के लिये क्या यत्न करना चाहिये सो सुनिये ! यदि शंका हो कि पहले तुम कहआये हो कि किसी प्रकार के यत्न में परिश्रम नहीं करना चाहिये निष्काम रहना चाहिये, फिर अब परमानन्द के लिये यत्न कैसा ? तो उत्तर यह है कि जब तक प्राणी निष्काम नहीं हुआ तब तक तो उसी निष्काम होने का यत्न करना आवश्यक है क्योंकि माता के गर्भ ही से सर्वसाधारण शुकदेव के समान निष्काम तो उत्पन्न नहीं हुआ है । सिद्धान्त काल में मनुष्य यत्न रहित औ कामना रहित होजाता है । साधन काल तक तो परमानन्द की प्राप्ति के लिये यत्न करना ही होगा । सो कैसे औ क्या करना होगा एकाग्र चित्त होकर सुनिये सुनाता हूं । बहुत बिलम्ब हुआ इसलिये एकवार सब मिलकर बोलिये ।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति है कि—

सर्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म
सोयमात्मा चतुष्पात् ॥

अर्थात् इस विश्व के दशो दिशा में औ भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनों काल में जोकुछ देखेगये, देखेजाते हैं औ देखेजावेंगे, ये सब ब्रह्मही है फिर कहते हैं (अयमात्माब्रह्म) यह आत्मा ब्रह्म है अर्थात् अपने हृदय की ओर अंगुली दिखलाकर बोलते हैं " अयमात्मा " यह जो आत्मा सो ब्रह्म है अर्थात् मैं ब्रह्म हूं। सो ब्रह्म आनन्दरूप ही है यह पहले सिद्ध करआये हैं अतएव यह आत्मा भी आनन्दरूपही हुआ। क्योंकि रेखागणित (Geometry) के प्रथम स्वयंसिद्ध (1st Axiom) से यह बात सिद्ध है कि जो दो वस्तु एककिसी वस्तु के बराबर होंगी वे सब आपस में बराबर होंगी (Things which are equal to the same thing are equal to one another) तो यहां देखते हैं कि—

आत्मा = ब्रह्म (अयमात्मा ब्रह्म)
आनन्द = ब्रह्म { आनन्दमयोऽभ्यासात् अथवा
आत्मा = आनन्द { आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्

अर्थात् उक्त प्रमाणों से आत्मा भी बराबर है ब्रह्म के औ आनन्द भी बराबर है ब्रह्म के इसलिये आत्मा बराबर हुआ आनन्द के, शंका यह उत्पन्न होगी कि जब आत्मा बराबर है आनन्द के अर्थात् आनन्द रूप ही है, आनन्द से परे नहीं है, सो आनन्दरूप आत्मा मैं हूं तो फिर किस आनन्द के खोज में मुझको यत्न करना

है। जब मैं आनन्द तीनों काल में एक रस बना ही हूं तो फिर खोज ढूंढ किस आनन्द केलिये ? तहां उत्तर यह है कि आत्मा के आनन्द रूप होने में तो सन्देह ही नहीं परन्तु जागरित औ स्वप्न इत्यादि अवस्थाओं में, बाहर और भीतर की नानाप्रकार की चित्तवृत्तियों के साथ चक्कर खाने से इसे अपने यथार्थ स्वरूप का भान न होकर कुछ काल द्वन्द्वों का संस्कार सन्मुख होने के कारण दुःखित सा देख पड़ता है औ उतने ही काल तक यह जीवात्मा कहा जाता है जब तक ये वृत्तियां निरोध न होंगी तब तक अपने यथार्थ आनन्द रूप का भान नहीं होगा। जैसे किसी पात्र में जल रखकर उस पात्र को दायें बायें हिला दीजिये फिर उस हिलते हुए जल में अपना मुंह देखिये तो दो चार नाक औ दो चार सिर दीख पड़ेंगे, यथार्थ रूप नहीं दीखेगा। अथवा तमाशा करने वाले को आपने देखा होगा कि आग की बनेटी बना जब अत्यन्त शीघ्रता के साथ चारों ओर से चक्कर देने लगता है तो एक अग्नि का गोलाकार मण्डल बन जाता है, जब तक वह चक्कर देता रहता है तब तक यथार्थ रूप का भान नहीं होता जब तमाशा वाला हाथ रोक लेता है तब दोनों ओर दो जलते हुए गेंद भिन्न २ दीख पड़ते हैं, तब ज्ञात होता है कि यह चक्कर नहीं है, गेंद हैं, जिन में आग जलरही है। इसी प्रकार अन्तर औ बाहर की वृत्तियों के भेद से यह आनन्दरूप आत्मा दुःखित जीवात्मा के सदृश दीखपड़ता है।

इसी कारण यत्न करना उचित है जिसमें ये वृत्तियां निरोध हों औ आनन्द का प्रकाश हो—सो कब कैसे किस दशा में होगा सो सुनिये।

अभी जो मैंने आप को माण्डूक्योपनिषत् की श्रुति सुनाई है जिसका अर्थ कर रहा हूं उसी में आगे यह लिखा है "सोऽयमात्मा

चतुष्पात्" अर्थात् यह आत्मा जो आनन्द रूप है उसके चार पाद अर्थात् टांग हैं। क्या घोड़े औ बैल के समान चार टांग हैं ? नहीं ! नहीं ! ! फिर क्या एक रुपये की जैसे चार पावलियां होती हैं ऐसे हैं ? नहीं ! नहीं !! ऐसे भी नहीं । तो फिर कैसे सो सुनिये । इसकी केवल चार अवस्था हैं । जागरित । १ । स्वप्न । २ । सुषुप्ति । ३ । तुरीय । ४ ।

ॐ जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।

माण्डूक्योपनिषद् श्रुति ३

अर्थात् उक्त चार अवस्थाओं में जागरित वह अवस्था है जिस समय प्रज्ञा जो वस्तु तस्तु की ग्रहण करने वाली बुद्धि सो बाहर की ओर रहती है अर्थात् शरीर से बाहर की ओर चेष्टा करती रहती है, देखती है, सुनती है, इत्यादि २ । अर्थात् इस जगी हुई अवस्था में बुद्धि वृत्ति का बाह्य विषयों के साथ सम्बन्ध रहता है इसी कारण इसको बहिःप्रज्ञ कहा फिर सप्ताङ्ग * है अर्थात् जगी हुई अवस्था में सम्पूर्ण विश्व का साक्षी होने के कारण इसे सप्ताङ्ग कहा है । अर्थात् स्वर्ग लोक जिसका मस्तक है । सूर्य जिसका नेत्र है । वायु जिसका प्राण है । आकाश जिसके शरीर का मध्यभाग है । जल जिसका मूत्र स्थान है । पृथिवी जिसके दोनों पाद हैं। अग्नि जिसका मुख है । फिर एकोनविंशतिमुखः अर्थात उन्नीस १९ हैं मुख जि-

---

* तस्यहवै तस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलोबस्तिरेवरयिः पृथिव्येवपादौ " अग्निहोत्रकल्पनाशेषत्वेनाग्निमुखत्वेनाहवनीय उक्तः " ' वैश्वानर के सातों अंगों का यह श्रुति प्रमाण है ॥

सके। अर्थात् आंख, नाक, कान इत्यादि पांच ज्ञानेन्द्रिय। हाथ, पांव, लिङ्ग इत्यादि पांच कर्मेन्द्रिय। मन, चित, बुद्धि, अहंकार चार अन्तःकरण। प्राण, अपान, उदान इत्यादि पांचों प्राण यही उन्नीस जिसके मुख हैं। तात्पर्य यह है कि जगी हुई अवस्था में यही उन्नीस शक्तियां जगी रहती हैं जिससे विश्व के सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। फिर कहते हैं "स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः" अर्थात् इस जागरित अवस्था में आत्मा उक्त १९ शक्तियों से अर्थात् आंख, नाक, कान इत्यादि इन्द्रियों से विश्व के स्थूल पदार्थों का भोगने वाला है इसलिये वैश्वानर कहाजाता है अर्थात् विश्वरूप जो नरनाम विराट्स्वरूप है, कहने का तात्पर्य यह है कि जागरितअवस्था में आत्मा विराट् रूप विश्व का साक्षी होने से वैश्वानर* कहाजाता है, यही इसका प्रथमपाद है।

अब पूछिये कि इस प्रथमपाद अर्थात् जागरित अवस्था में कहीं ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द का लेश है तो कहना चाहिये कि कदापि नहीं अर्थात् जागी हुई अवस्था में अपना स्वरूप जो आनन्दरूप सो कहीं भी नहीं है। यदि आप को शंका हो कि प्रथम तुम बकरी के बच्चे, छोटे २ बालक, पशु, पक्षी, सब में आनन्द दिखला आये हो अब कहते हो कि जागरित में कहीं आनन्द नहीं, ऐसा क्यों? तो उत्तर यह है कि वह आनन्द क्षणिक है, स्थायी नहीं, देखिये बच्चे खेल तमाशे में आनन्द से उछल कूद रहे हैं कि इतने में भूख लगगई भोजन की चिन्ता व्यापी अथवा पिता ने आनकर धमकाया बस उस आनन्द का झट अभाव होगया, भय व्याप गया, अर्थात् यह आनन्द केवल उस परमानन्द का आभास मात्र है यथार्थ में नहीं, यथार्थ

* "विश्वेषांनराणामनेकधानयनाद्विश्वानरः" यद्वा विश्वश्चासौ नरश्चेति विश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः।

आनन्द वह है जिसका तीनों काल में कभी नाश नहीं होता, चाहे प्रलय हो चाहे सृष्टि हो पर परमानन्द सदा एक रस रहता है सो इस जागरित अवस्था में नाना प्रकार के द्वन्दों के कारण किसी भी प्राणी को प्राप्त नहीं क्योंकि बुद्धि विषयों की ओर लगी रहती है।

अच्छा तो चलिये किसी और अवस्था में चलिये, देखें आनन्द मिलता है कि नहीं—कहां चलियेगा चलिये स्वप्न की ओर चलें।

ॐ स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयःपादः ॥

मण्डूक्योपनिषद् श्रुति ४।

अर्थात् स्वप्न अवस्था में प्रज्ञा जो बुद्धि सो शरीर के अन्तरमुख प्रवाह करती है इस कारण इसको अन्तःप्रज्ञ कहते हैं, इस दशा में भी जागरित ही के समान सप्तांग सात अंगवाला विराट् है औ वैसे ही आंख, कान, इत्यादि उन्नीस १९ मुख हैं। जैसे जागरित में सम्पूर्ण विश्व को देखता है और इन्द्रियों से नानाप्रकार के कार्यों का साधन करता है इसीप्रकार स्वप्न में भी ॥ जागरित औ स्वप्न में केवल भेद इतना ही है कि जागरित में इन स्थूल इन्द्रियों से स्थूल विषयों का ग्रहण करते हुए दुःख सुख का भोगक्ता होता है औ स्वप्न में "प्रविविक्त भुक्" अर्थात् वासनामय सूक्ष्म भोग अथवा विरल भोग का भोक्ता है, जिन स्थूल पदार्थोंको जागरित में ग्रहण किया था उसी की वासना को लिये हुए स्वप्न में उन के सूक्ष्म संस्कार को ग्रहण करता हुआ दुखी, सुखी, होता है। यही द्वितीयःपादः इस की दूसरी अवस्था है।

अपने सभासदों के पूर्ण बोध निमित्त इन दोनों अवस्थाओं का

भेद एक नवीन उदाहरण देकर स्पष्ट करताहूं ॥

मेरे सभासदों ने आलोकलेख्यकार * (Photographer) के काच † (Lens) को तो देखाही होगा कि उस काच के सन्मुख यदि सैकड़ों हज़ारों हाथ की लम्बी चौड़ी कोई वस्तु आजावे तो वह ज्यों की त्यों दो चार इंच अथवा दोचार अंगुल के लम्बे चौड़े पत्र पर खिचजाती है। श्री जगन्नाथजी का मन्दिर, अथवा बौद्धदेव का मन्दिर ताजवीवी का रौज़ा, देहली का जुमां मस्जिद औ कलकत्ते का फ्रांट-विलियम, इनसबों को आपने एक चारअंगुल के पत्रपर ज्यों का त्यों खिचाहुआ देखा होगा।

फिर इसके उलटा आपने एक दूसरे प्रकार का काच देखाहोगा जिसको बृहंणयन्त्र (Magnifyer) कहते हैं। इसमें यह गुण है कि उस चार अंगुल के पत्र पर खिंचेहुए उक्त मन्दिर औ मस्जिद इत्यादि को फिर उतनाही बड़ा अर्थात् हजारों हाथ का लम्बा चौड़ा बनाकर नेत्रों के सामने देखादेता है। आपने प्रायः बाज़ारों में तमा-शाकरनेवाले के मस्तक पर एक छोटीसी पेटिका (Box) देखी होगी। वह तमाशावाला बच्चों को पुकारता जाता है औ कहताजाताहै आओ बच्चो! एक पैसे में देहली, कल्कत्ता, बनारस इत्यादि सब नगरों को देखलो! अर्थात् बच्चे जब उस पेटिका के काच होकर उन छोटी तसवीरों को देखते हैं तब उनके नेत्रों के सामने उक्त बड़े २ नगर देख पड़ते हैं।

---

* कांच द्वारा मूर्त्ति बनानेवाला अर्थात् तसवीर खींच नेवाला

† जिस कांच होकर वस्तुओं का विम्ब आलोकलेखक यन्त्र के भीतर एक प्लेटपर अर्थात् दूसरी काचकी पट्टिका पर पड़ताहै।

अब आप समझ गये होंगे कि एक काच में यह गुण है कि बड़ी वस्तुओं को छोटी बनाकर एक छोटे पत्र में रख लेवे औ दूसरे में यह गुण है कि उस छोटी मूर्त्ति को बड़ी कर दिखलावे । अब आप यह पूछिये कि काच एक साधारण वस्तु में ये दो विचित्र गुण क्यों औ कैसे होगये । तो अवश्य यही कहना पड़ेगा कि ये दोनों कांच घिसते २ अत्यन्त स्वच्छ बनाये जाते हैं इनकी अत्यन्त स्वच्छता औ निर्मलता इन दोनों विचित्र गुणों के कारण हैं ।

इसी प्रकार आत्मा जो इन काचों से भी कोटगुण बढ़कर स्वच्छ औ निर्मल है जब जागिरत का साक्षी होता है तब उसका सूक्ष्म संस्कार आलोकलेखक यन्त्र के समान निर्मलता को स्वीकार कर अन्तःकरण की पेटिका पर खींच रखता है फिर जब सो जाता है तब उसी खिंचे हुए सूक्ष्म संस्कार को बृहणयन्त्र के काच के समान स्वच्छता को स्वीकार कर उन सूक्ष्म संस्कारों को भीतर ही भीतर बहुत ही विस्तार बनाकर देखने लगजाता है इसलिये फिर ये आकाश पृथिवी, बाग, बगीचे, घर, द्वार, नगर, बाजार, सब ज्यों के त्यों स्वप्न में देखने लगजाते हैं । इसी कारण श्रुति ने इसको "तैजसो द्वितीयः पादः" कहा अर्थात् तैजस* है औ यही दूसरा पाद है ।

अब पूछना चाहिये कि प्रथम अवस्था जागरित में तो द्वन्द्वों के झमेल के कारण कहीं आनन्द नहीं मिला अब इस दूसरी अवस्था स्वप्न में कहीं आनन्द है वा नहीं ? तो वही नकारात्मक शब्द प्रयोग करना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि नहीं ! नहीं !! इस अवस्था

---

* तैजस इसीकारण कहा है कि आंख, नाक, कान, हाथ पांव, तो स्थूल रूप से हैं नहीं, इनकी सूक्ष्म शक्ति स्वयं प्रकाश जो तेजस्वरूप है वही सब इन्द्रियों का व्यवहार करती है ।

में भी सूक्ष्म द्वन्द्वों ही के कारण कहीं आनन्द का लेश मात्र भी नहीं है। तो फिर क्या करना चाहिये आगे चल कर देखना चाहिये कि किसी अवस्था में आनन्द है वा नहीं। जागरित औ स्वप्न से तो हाथ धोबैठे। चलिये अब सुषुप्ति की ओर चलें और देखें क्या होता है।

ॐ यत्र सुप्तो न कंचनकामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञाघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥ माण्डूक्योपनिषद् श्रुति ५॥

अर्थात् जब सोजाने पर "न कंचनकामं कामयते" न किसी कामना की अभिलाषा करता है और "न कंचन स्वप्नंपश्यति" न किसी प्रकार का स्वप्न देखता है "तत्सुषुप्तम्" वही सुषुप्त है अर्थात् अत्यन्त गाढ निद्रा है जिसमें किसी प्रकार की वृत्ति का झमेल नहीं रहता। इन्द्रियों की चाल एक दम रुकजाती है। इसी कारण कहा "एकीभूतः" अर्थात जागरित औ स्वप्न में जो इन्द्रियां नानाप्रकार के द्वन्द्वों में प्रवृत्त होरही थीं वे सुषुप्त अवस्था में एक स्थान में सिमट कर शुद्ध चेतन स्वप्रकाश आत्मा में लय होगईं। जैसे तमाशा करने वाला नट आप के सन्मुख काष्ठ अथवा पत्थर की एक वटिका (गोली) लेकर खेल करता है, एक हाथ में गोली रखता है औ दूसरे हाथ की अंगुलियों से उस एक गोली से अनेक गोलियों को निकालता जाता है औ कहता जाता है "आ! आ!! आ!!! यह आगई एक, यह आगई दो, यह आगई तीन, देखो यह आगई चार, देखो भाई पांचवीं भी आई तो गई, तात्पर्य यह है कि एक गोली से अनेक गोलियां देखला देता है। देखने वालों को आश्चर्य होता है कि यह

कैसी जादू की बटिका है जिस से इतनी बटिकायें निकल पड़ीं। फिर वह तमाशा वाला झट यों कहता है कि देखो भाइयो अब मैं इन सब गोलियों को उसी में अन्तर्धान करदेता हूं। इतना कह फिर यों कहना आरम्भ करता है—जा! जा!! जा!!! यह गई एक, यह गई दूसरी, यह गई तीसरी, जा बे चौथी तूभी जा! एवम् प्रकार एक २ कर सब बटिकाओं को एक में प्रवेश करदेता है। देखने वाले आश्चर्य समझते हैं औ उस बटिका को जादू की बटिका कहते हैं।

प्यारे सभासदो! इसी प्रकार इस एक चैतन्य स्वप्रकाश आत्मा को आप जादू की बटिका समझें। जागरित और स्वप्न इन दो अवस्थाओं में इसी एक चैतन्य बटिका से चक्षु, श्रोत्र इत्यादि १९ बटिकायें स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से एक २ कर निकलती आती हैं औ देखना, सुनना इत्यादि भिन्न २ कार्यों में अलग २ लगती जाती हैं, जब सुषुप्ति आती है तब यही १९ बटिकायें धीरे २ एक २ कर उसी एक चैतन्य आत्मा रूप बटिका में लय होती जाती हैं यहां तक कि नट की बटिका के समान केवल एक ही बटिका अर्थात् आत्मा ही आत्मा रहजाता है और कुछ नहीं रहता। इसीकारण श्रुति ने इस सुषुप्तअवस्था को एकीभूत कहा है।

अब आगे कहते हैं कि **प्रज्ञानघन एव आनन्दमयो ह्यानन्दभुक्।** अर्थात् इस अवस्था में प्रज्ञा जो घट पट की जानने वाली बुद्धि वह इन्द्रियों को संग लिये घन हो जाती है। जैसे रात्रि में अन्धकार व्यापने के कारण बाग, बगीचे, मन्दिर, इत्यादि सब काले ही काले एकरूप देख पड़ते हैं, आम्र, इमली, कटहल, बबूल इत्यादि वृक्षों का भेद नेत्र से जाता रहता है सब सिमट कर घन होजाते हैं इसीप्रकार स्वप्न अवस्था में अविद्या रूप अन्ध-

कार के व्यापने से देखना, सुनना, बोलना इत्यादि क्रियाओं को क-रने वाली इन्द्रियां और घट, पट, की विवेक करने वाली बुद्धि सब सिमट कर घन होजाती हैं। किसी प्रकार की उपाधि नहीं रहती। जागरित औ स्वप्न में जो नानाप्रकार के द्वन्द्वों में मन के स्फुरणरूप परिश्रम के कारण अशान्ति फैली रहती है वह मिटजाती है इसी-कारण श्रुति कहती है कि आनन्दमय औ आनन्दभुक् अर्थात् आ-नन्दमय है औ आनन्द का भोग करनेवाला है। फिर कहते हैं "चेतो-मुखः" अर्थात् जागरित औ स्वप्न के प्रतिबोध रूप चित्त के द्वार होने से 'चेतोमुखः' कहा अर्थात् किसी घर के द्वार पर दोहरे कपाट (किवाड़) लगा दीजिये औ उन कपाटोंके मध्य एक दीपक जला रखिये, फिर आप देखेंगे कि जब भीतर वाले कपाट को खोलदेते हैं तब घर के भीतरकी ओर प्रकाश फैलता है जब भीतर वाले कपाट को बन्द कर बाहर वाले को खोल देते हैं तब घर के बाहर की ओर प्रकाश होता है, जब दोनों को खोल देते हैं तो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश होताहै औ जब दोनों को बन्द करदेतेहैं तब भीतर बाहर सर्व-त्र अन्धकार होजाताहै। दोनों कपाट के मध्य वह दीपक स्वयं जलता रहताहै। अर्थात् वह दीपक बाहर औ भीतर दोनों के बीचोंबीच रखा-हुआ है इसकारण दोनों ओर के प्रकाश का मुख है। इसीप्रकार जा-गरित अवस्था में हृदयकमल अर्थात् अष्टदलकमल की आठों पंखरि-यों के खिल जाने से मन रूप भ्रमर बाहर की ओर प्रकाश करता है, और स्वप्न में इन आठों पंखरियों के संपुटित होजाने से मन रूप भ्रमर भीतर की ओर प्रकशा करता है। औ जब यह भ्रमर न कमल के बाहर जाता है न भीतर जाता है ठीक मुख पर स्थित रहता है तब सुषुप्ति होजाती है। इसी कारण इस अवस्था को 'चेतोमुखः' कहा, यदि तनक मुख से बाहर होजावे जागरित होजावे, तनक भीतर की ओर होजावे झट स्वप्न लग जावे। फिर इस अवस्था को श्रुति "प्राज्ञ-

स्तृतीयःपादः" कहती है अर्थात प्राज्ञ है, तात्पर्य यह है कि भूत, भविष्य औ वर्त्तमान, तीनों काल, जागरित स्वप्न औ सुषुप्ति, तीनों अवस्था का बोध रूप है। यदि शंका हो कि पहले कहआये हो कि सुषुप्ति में सर्व प्रकार के ज्ञान से रहित होजाता है अब कहते हो कि सब का बोध रूप है, सो कैसे ? तो उत्तर यह है कि इस में तो तनक भी सन्देह नहीं कि सुषुप्ति में अविद्या व्यापती हैं पर इससे क्या, जो चैतन्य स्वप्रकाश है वह तो सर्वज्ञ है ही शरीर के सम्बन्ध करके ऐसी दशा भान होरही है होने दीजिये। जैसे हीरा मिट्टी के गोले के भीतर वन्द करादिया जावे तो उसकी चारों ओर मट्टी ही मट्टी देखी जावेगी, देखने वाले हीरा नहीं कहेंगे न हीरे का मूल्य मिलेगा, पर भीतर की ओर तो हीरा ज्यों का त्यों स्थित है उस में कोई विकार नहीं है। इसी प्रकार सुषुप्ति में चैतन्य स्वप्रकाश सर्वज्ञ अपने रूप में स्थित है अतएव उस को प्राज्ञ (प्रकर्ष कर के सब कुछ जानने वाला) कहते हैं। इसीसे इसको प्रज्ञप्ति नाम वाला तृतीय पाद भी कहते हैं।

"प्यारे सज्जनो ! अब पूछना चाहिये कि इस तीसरी अवस्था में आनन्द की प्राप्ति है वा नहीं ? आप अवश्य कहेंगे कि है क्योंकि आप अभी सुन चुके हैं कि यह अवस्था आनन्दमय औ आनन्दभुक् है। जब श्रुति एवम्प्रकार इसे आनन्दमय औ आनन्द का भोगने वाला कहती है तो अब और इस से बढ़कर कौन सा उत्तम प्रमाण है जो इसे आन्दमय नहीं कहेगा। इसलिये जिस आनन्द को जागरित औ स्वप्न में नहीं पाया था उसे ढूंढते २ सुषुप्ति में तो पाया।

अब शंका यह हुई कि जब सुषुप्ति अर्थात् घोर निद्रा ही में आनन्द है तो आनन्द के लिये अन्य यत्नों की क्या आवश्यकता रही, अब तो मनमाना वर पाया। अब तो सर्व प्रकार का परिश्रम औ सत्यादि सर्व प्रकार की क्रिया छोड़ मथुरा जी के चौबेजी अथवा गया-

जी के पंडाजी के समान भंग का एक बड़ा गोला बना उसे गुड़ के साथ मिला सायंकाल ६ बजे श्री यमुनाजी के तट पर जा यमुनाजल के साथ निगल जाइये फिर देखिये रात्रि को कैसी घोर निद्रा लगती है औ आनन्द होता है कि कानों के समीप तोप के गम्भीर शब्द का भी पता न लगेगा, ऐसी सुषुप्ति लगेगी कि मारे खर्राटों के किसी दूसरे का समीप बैठना कठिन होजावेगा, सवेरे को बिना प्रहर दिन चढे आंखें तो कदापि न खुलेंगी। यदि यह इच्छा हो कि जैसे रात्रि भर सुषुप्ति का आनन्द लिया है वैसे ही दिन भर भी लेवें तो लीजिये दस बजे उठ कर तनक मुंह हाथ धो फिर एक डेढ पाव का चढा लीजिये और यजमान के यहां लड्डू औ पेड़े खाकर "जय जमुना मैया की" (लड्डुवे चकाचक) यों कोलाहल मचाते हुये सो जाइये, बस आनन्द होजाने का यह सहज यत्न है।

उत्तर यह है कि सुषुप्ति को आनन्द मय होने में तनक भी सन्देह नहीं भली भांति सिद्ध कर आया हूं पर बात यह है कि एक तो आप सुन ही चुके हैं कि इस अवस्था में अविद्या व्यापती है औ दूसरे यह चिरस्थाई नहीं, थोड़े काल के लिये है अर्थात् निद्रा टूटजाने के पश्चात् उस आनन्द का अभाव होजाता है।

पहले मैं कहआया हूं कि जैसे हीरा को मट्टी के गोले में लपेट रखिये तो उसे कोई हीरा नहीं कहता यद्यपि वह तीन काल में हीरा से इतर कुछ अन्य पदार्थ नहीं पर मट्टी के गोले के कारण हीरा का प्रकाश फैलने नहीं पाया। इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में आनन्द मानों अविद्या रूप मट्टी के गोले में बन्द है इस कारण उस आनन्द का प्रकाश फैलने नहीं पाता, फिर वह चिरस्थाई भी नहीं तो ऐसा आनन्द ही किस कामका। तात्पर्य यह है कि अविद्या ने यथार्थ रूप को प्रकाश होने न दिया इसी कारण सोलहआना पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हुआ

जैसे एक काष्ठ का राजा बनाइये उसे एक रत्न जड़े हुए सिंहासन पर बैठाल उस के सन्मुख उस के राज्य भर के धन, सम्पत्ति, हीरा, लाल औ मोती लाधरिये, १०९ तोपों की सलामी दीजिये, सब छोटी बड़ी प्रजा उसके सन्मुख आनकर जुहार (सलाम) करे, घोड़े, हाथी, पैदल चतुरंगिनी सेना आगे से खड़ी रहे, अर्थात् सम्पूर्ण राज्यसुख एकत्र कर दीजिये पर उस काष्ठ के राजा को क्या ज्ञान है कि मेरे सन्मुख हीरे मोती हैं वा कंकर पत्थर हैं, वह पुतला क्या जाने कि तोपों की सलामी प्रदान हुई अथवा चुहिया बोली, प्रजागण ने जुहार किया कि गालियां दीं, तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण राज्यसुख प्राप्त होने पर भी अप्राप्त सा देख पड़ता है, ऐसे ही सुषुप्ति आनन्द रूप होने पर भी आनन्दरूप नहीं कहा जासकता अब जान पड़ा कि जागरित स्वप्न औ सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में अविद्या ही व्यापने के कारण अपने यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता।

प्यारे सुहृद्गण! तीनों अवस्थाओं में ढूंढते २ मैंने आप का समय बहुत लिया पर अब तक आनन्द नहीं हाथ लगा। कोई हानि नहीं एक बार और पुरुषार्थ कीजिये चलिये आगे बढ़ कर चौथी अवस्था में देखें क्या होता है, कहीं ईश्वर मनोकामना सिद्ध कर ही देगा।

बीच में मुझे एक बात दूसरी स्मरण हो आई वह कहकर फिर चौथे पाद की ओर चलूंगा। पहले कथन किये हुए राजा के पुतला का दृष्टांत सुनकर हमारे नवीन प्रकाश वाले अत्यन्त प्रसन्न हुए होंगे और इस दृष्टान्त को प्रतिमाखण्डन में प्रमाण समझ कर झट यों कह पड़ेंगे कि देखो स्वामीजी ने कैसी उत्तम बात कही, काठ का पुतला क्या जाने कि उसके सन्मुख क्या होरहा है। इसीप्रकार मन्दिरों की प्रतिमा के आगे आरती करना, भोगलगाना, इत्यादि सब निरर्थक हैं क्योंकि वह क्या जाने क्या होरहा है॥

प्यारे नवीन मतावलम्बियो ! इस समय प्रतिमापूजन पर व्याख्यान देने से मेरा विषय रहजायेगा । समय थोड़ा है औ बहुत कुछ कहना है । आपकी शंका उस दिन तो अवश्य ही निवृत्त होजावेगी जिस दिन मैं प्रतिमापूजन पर व्याख्यान दूगां, जबतक एक मोटीसी बात कहकर सुनाताहूं । वह राजा जिसका पुतला बनायागयाहै प्राकृत नर है, सर्वज्ञ औ अन्तर्यामी नहीं, इसलिये वह नहीं जानता कि मेरेलिये संसार में किसने क्या किया । पर ईश्वर सर्वज्ञ अन्तर्यामी है वह ठौर २ का वृत्तान्त जानता है, वह तो प्रसन्न होहीगा कि मेरे भक्तों ने मेरी प्रतिमा बनाकर इतनी स्तुति औ इतना मान कियाहै, तो यदि मैं उनको प्राप्त होऊंगा तो न जाने कितनी स्तुति औ प्रार्थना करेंगे, ईश्वर तो इस उत्तम भाव को समझकर अवश्यही प्रसन्न होगा । यदि आपकी भी कोई मूर्त्ति आलोकलेख्यकार (Photographer) के यहां से मगाकर अपने मकान के द्वारपर लटका देवे औ घर से निकलते, पैठते, उसे नमस्कार करलिया करे तो आप भी सुनकर अवश्य प्रसन्न होंगे औ लोगों से पूछेंगे कि भाई वह कौन आदमी है जो मेरी तसवीर को प्रणाम कियाकरता है और जब वह आपको मिलेगा आप अवश्य उससे अत्यन्त प्रेम करेंगे । कहिये साहबो यह बात ठीक है ना ! आप तो ठीक काहे को कहियेगा । आप तो कहियेगा कि हां मूर्त्ति बना कर मान करना अच्छा मानते हैं पर जिसकी मूर्त्ति ही नहीं उसकी प्रतिमा कैसे बनेगी ? प्रिय समाजिओ ! यह बात दूसरी है कि ईश्वर की मूर्त्ति है वा नहीं, यह तो मैं प्रतिमापूजन के व्याख्यान में पूर्ण रीति से बताऊंगा कि वह मूर्त्तिमान् औ अमूर्त्तिमान् दोनोंहै औ दोनों की प्रतिमा हो सकती है । इस समय तो इतना ही बताना था कि व्यक्ति विशेष को अपनी मूर्त्ति की पूजा सुन प्रसन्नता होती है । वह राजा जिस का पुतला बना कर प्रजा ने जुहार किया है यदि सुन लेगा तो प्रजागण पर अत्यन्त प्रसन्न होगा

मेरा दृष्टान्त तो दूसरे अर्थ में है इस अर्थ में नहीं । आप की शंका के भय से बीच में इतना कहना पड़ा ।

प्यारे सभासदो ! अब चलिये अपने विषय की ओर चलें । चौथी अवस्था आगे आरही है उसमें आनन्द को ढूंढें । पहले सब मिल कर एक बार कह लेवें—"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" ॥

ॐ नान्तःप्रज्ञं न वहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यम-ग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ माण्डूक्योपनिषद् श्रुति ॥ ७ ॥

तीन अवस्था पहले कथन कर आया हूं उनको मेरे सभासद भली भान्ति समझगये होंगे अब श्रुति चौथी अवस्था का वर्णन जैसे करती है सो सुनाता हूं सुनिये ।

नान्तःप्रज्ञं अर्थात अन्तःप्रज्ञ जो स्वप्न सो नहीं, वहिःप्रज्ञ जो जागरित सो भी नहीं, उभयतःप्रज्ञ जो जागरित औ स्वप्न दोनों मिली हुई अवस्था सो भी नहीं, प्रज्ञानघन जो सुषुप्ति सो भी नहीं प्रज्ञ जो वस्तु तत्त्व का जानने वाला सो भी नहीं औ अप्रज्ञ जो एकदम कुछ नहीं जानने वाला अर्थात मृतिका इत्यादि जड़ वस्तुओं के समान प्रज्ञा रहित सो भी नहीं । फिर नेत्र का विषय न होने से "अदृष्ट" अर्थात् देखा न जावे । ज्ञानेन्द्रियों का विषय न होने से अ-व्यवहार्य्य अर्थात् किसी प्रकार का व्यवहार के योग्य नहीं फिर क-

मेन्द्रियों का विषय न होने से " अग्राह्यं " अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं। यदि कहिये कि उस का कुछ लक्षण बताओ तो श्रुति कहती है अलक्षणं, फिर अन्तःकरण जो मन, बुद्धि इत्यादि तिन का विषय न होने से अचिन्त्यम् अर्थात चिन्ता करने के योग्य नहीं औ वाणी अथवा शब्दादि प्रमाणों का विषय न होने से अव्यपदेश्यं अर्थात् उपदेश इत्यादि करने के योग्य नहीं तात्पर्य यह कि यह चौथी जो तुरीयावस्था है उसे एक अद्भुत ही जानिये। इस अवस्था में न ज्ञानी, न मूढ, न जड़, न चैतन्य, न हां, न ना, न कर्ता, न अकर्ता, न देखनेवाला, न नहीं देखनेवाला, न सुननेवाला, न नहीं सुननेवाला, अर्थात् न आंख वाला न अन्धा, न कानवाला न बहरा, न जिव्हा-वाला न गूंगा, न मोटा न पतला, न लम्बा न नाटा, न ऊंचा न नीचा, न बालक न वृद्ध, न त्रिकोन न चौकोन, न नीला न पीला, न एक न दो, किसी भी विशेषण से युक्त नहीं कर सकते। श्रुति का एवं प्रकार निषेध मुख वचन सुनते २ जब जिज्ञासुओं की बुद्धि चक्कर में आई और घबराहट उत्पन्न हुई तब श्रुति ने ऐसा विचारा कि निषेध मुख वचन सुनते २ जिज्ञासु शून्य वादी न बनजावे अर्थात् उस शुद्ध चैतन्य स्वप्रकाश को शून्य न जान जावे इस कारण उन के सन्तोष के लिये विधिमुख विशेषणों का प्रयोग किया और यों कहा कि एकात्म प्रत्ययसारं एकाग्रता के प्रत्यय ज्ञान का सार अर्थात सर्वत्र से एकाग्र होते २ अत्यन्त एकाग्रता से जो फल हो वही। फिर प्रपंचोपशमम् अर्थात् जिसके सम्यक् ज्ञान से द्वैत रूप प्रपंच का समूल नाश होजावे फिर कहते हैं शान्तम् मन आदि अन्तःकरण के संकल्पों से उत्पन्न जो नानाप्रकार के क्षोभ उससे रहित। परम शान्त। फिर कहते हैं शिवं अर्थात् परमानन्दमय। और सर्वत्र पूर्ण अखण्ड अनन्त और निराश्रय होने के कारण अद्वैत अर्थात् जहां फिर कोई दूसरा नहीं अथवा कुछ अन्य जिस के समान नहीं। चतुर्थमन्यन्ते स आत्मासविज्ञेयः

इसी को चौथी अवस्था वाला मानते हैं यही आत्मा है यही जानने के योग्य है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामायण के उत्तरकाण्ड में कहा है।

तीन अवस्था तीन गुण तेहि कपास ते काढ़।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़॥
यहि विधि लेसै दीप ज्ञानराशि विज्ञानमय।
जातहि तासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

अर्थात् जागरित, स्वप्न औ सुषुप्ति तीनों अवस्था, रज, सत्व औ तम तीनों गुण रूप कपास को तोड़ कर तुरीय रूप रूई निकाल जो विधि ऊपर की चौपाइयों में कह आये हैं उस प्रकार विज्ञान से मय औ ज्ञान से भरी बाती बनाकर जलावे तो उसके समीप मदादि विकार रूप पतंग जाते ही जल जावें औ परम शान्ति औ परमानन्द का प्रकाश होवे।

फिर मुसलमानों के धर्म में योगियों ने कहा है।

مرغ شاخ درخت لاهوتیم گوهر درج گنج اسراریم

(मुर्ग़ शाख़ दरख़्ते लाहूतेम। गौहरे दुर्जे गंजेअसरारेम)।

अर्थात् (लाहूत) तुरीय रूप वृक्ष के डाल का मैं एक मुर्ग़ अर्थात् पक्षी हूं औ (इसरार) गुप्त भेद रूप (गंज) कोष (ख़जाने) के (दुर्ज) डिब्बे का मैं एक (गौहर) मोती हूं। तात्पर्य यह है कि अन्य मतावलम्बी भी तुरीय को स्वीकार करते हैं। अतएव इस अवस्था की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये क्योंकि यही अवस्था परमानन्द का स्वरूप है। जिस परमानन्द के ढूंढ में आप चले थे वह यही तुरीय है।

अब हमारे सभासदों को यह शंका अवश्य हुई होगी कि जिस प्रकार हम लोगों ने जागरित, स्वप्न औ सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं को समझ रहे हैं समझना क्या वरु उसका अनुभव दिन रात कर रहे हैं, मूढ औ ज्ञानी सब इन तीनों को एक रंग भोग रहे हैं, यदि श्रुतियां इन अवस्थाओं को नहीं भी कथन करतीं तब भी हम लोग इनको जानते ही थे इन के अधिक कहने की कोई आवश्यकता न थी, मुख्य तात्पर्य तो आनन्द का था सो श्रुति ने चौथी अवस्था में बतला दिया पर हम लोगों को एकदम कुछ भी समझ में नहीं आया कि क्या ? जैसे हम लोग सुषुप्ति का आनन्द लेते हैं, अनुभव करते हैं औ समझते हैं ऐसे तुरीय को तो कुछ भी नहीं समझते। केवल श्रुति ने लम्बी चौड़ी बातें अवश्य कहदीं औ परमशान्ति औ परमानन्द सब कुछ वर्णन करादिया पर स्वाद तो कुछ न मिला। जैसे किसी बच्चे को कोई पुरुष अपने साथ दौड़ाता लिये चला जावे और कहता जावे दौड़े चले आओ वह बड़ा लड्डू सेर भर का दूंगा। पर जब वह बालक पीछे २ कोसों दौड़ जावे तो वह पुरुष झट हाथ झाड़ दे औ बच्चा उसका मुंह देखता रहजावे ऐसे ही हमलोग श्रुति के पीछे दौड़ते हुए जब तुरीय तक आये तब श्रुति ने शुष्क उत्तर देदिया कि न जाना जावे, न कहा जावे, न देखाजावे, न ग्रहण किया जावे, न चिन्ता करने में आवे इत्यादि २ फिर कुछ काल के पश्चात परमशान्त औ परम आनन्द इत्यादि कह कर सन्तोष देदिया पर यह कहने मात्र ही रहा।

सच है प्यारे श्रोतागण ! आप की शंका अत्यन्त योग्य है। इस में तो कुछ सन्देह ही नहीं कि प्रथम तीनों अवस्थाओं के समान जब तक तुरीय का भी स्वाद न मिले अर्थात् जब तक यह चतुर्थ पाद तुरीय परमानन्द स्वरूप स्वप्न, औ सुषुप्ति के समान आप में उत्पन्न न हो तब तक आप कैसे समझेंगे। मैं इस अवस्था के उत्पन्न होने का यत्न भी आप को बताऊंगा जब तक मुझे एक दृष्टान्त स्मरण

हो आया है सो सुन लीजिये।

किसी ग्राम में बहुतसी छोटी २ लड़कियां कपड़े के पुतले पुतलियां अर्थात दुलहा दुलहिन बना कर खेलती थीं, ऐसे खेलते २ कुछ दिनों के पश्चात् उन में एक लड़की बड़ी विवाहने योग्य होगई उसका विवाह पिता ने कर दिया, जब वह अपने स्वामी के साथ ससुराल चलने लगी तब अन्य छोटी २ लड़कियों ने उस से यह बात कही कि हे सखी! तू तो अब ससुराल जाती है जब लौट कर वहां से आवेगी तब फिर हम लोगों के साथ जैसे अब खेलती है वैसे खेलेगी वा नहीं? उस बड़ी लड़की ने प्रतिज्ञा की औ बड़े प्रेम से बोली सखियो! जब मैं लौट कर आऊंगी तो जिस स्नेह से अब तुम्हारे साथ खेलती हूं तैसे तब भी खेलूंगी। एवम्प्रकार वह तीन चार साल के पश्चात् लौट आई, एक दिन अपनी मैया के साथ बैठी थी कि इतने में वे छोटी २ लड़कियां कपड़े के दुलहा दुलहिन लिये हुये उस के समीप आई औ बोली— सखी इन दुलहे दुलहिन का बिवाह कर इन को एक संग सुलादे। वह बड़ी लड़की मैया के समीप ऐसे खेल खेलने में कुछ लज्जित हुई औ नेत्र के संकेत से उनको वहां से हटादिया। उस समय तो वे हटगई पर एक दिन फिर उस बड़ी लड़की को उन ने एकान्त स्थान में पाकर यों प्रश्न किया। क्यों सखी! अब तू हमारे साथ दुलहा दुलहन का खेल क्यों नहीं खेलती उसने उत्तर दिया— सखियो अब मुझे यह खेल खेलने में लज्जा आती है। क्योंकि यथार्थ में दुलहा दुलहन क्या है और इन में परस्पर क्या सुख है यह मैं पूर्ण प्रकार जान गई हूं- उन लड़कियों ने फिर प्रश्न किया, वह कैसा सुख है मुझे बतादे? उस बड़ी लड़की ने नानाप्रकार की बातें बनाई औ बहुत कुछ वर्णन करगई पर इनने एक न मानी। तब उस ने कही, सखियो! मैं लाखों बातें बताऊं औ इस स्वामी के मिलन के सुख के विषय हजारों ग्रन्थ लिख कर

छोड़ दूं तथापि तुमको रत्ती मात्र भी इस सुख का बोध नहीं होगा जिसे मैं सोलह आना जान चुकी हूं । हां जब तुम्हारा विवाह होगा, स्वामी मिलेगा, तब तुम बिना कहे सुने समझ जाओगी कि वह कौनसा आनन्द है ।

प्यारे श्रोताओ ! इस दृष्टान्त से आपलोग समझ गये होंगे कि जैसे बिना बिवाह किसी कन्या को स्वामी मिलन का सुख प्राप्त नहीं होता चाहे उस के सामने इस बिषय में हजारों बात कीजिये वा ग्रन्थ का ग्रन्थ लिख जाइये, इसी प्रकार मैं आप के सन्मुख हजारों व्याख्यान इस विषय पर दूं औ आप हजारों ग्रन्थ इस विषय पर पढ़ जाइये पर जब तक उस परब्रह्म रूप स्वामी से आप का मिलन न हो तब तक आप तुरीयानन्द नहीं समझ सकते ।

अब मैं आपको यह बताऊंगा कि इस स्वामी के मिलन का औ तुरीयानन्द (परमानन्द) लाभ होने का क्या यत्न है । इतना तो आप अवश्य स्मरण रक्खेंगे कि तुरीयानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द, आत्मानन्द, निजस्वरूप का बोध, मोक्ष, मुक्ति, परमगति, उद्धार, निस्तार, कल्याण, क्षेम, हर्ष, सुख, प्रमोद, तृप्ति, शान्ति, परमपद, कैवल्य, इत्यादि सब उसी एक आनन्द का नाम है जिसका यत्न आप अभी श्रवण करेंगे । यदि इनमें कुछ भेद हो तो इतना ही होगा जैसे गुड़, शक्कर, बूरा, राव, चीनी, मिसरी, औ कन्द में जो कुछ हो मिठास सब में सार तत्व है इसी प्रकार उक्त शब्दों में आनन्द सार है ।

सब से पहले तो आप अपने मन में यह दृढ प्रतिज्ञा कीजिये कि इस आनन्द के प्राप्ति निमित्त जोकुछ यत्न होगा उसमें अशंक होकर परिश्रम करूंगा फिर जैसे खाना, पीना, सोना, कचहरियों में जाना, इत्यादि लौकिक कार्य्यों के साधन निमित्त आप अपने घरमें

समय नियत करलेतेहैं ऐसे प्रातः काल, औ सायंकाल एक मुहूर्त्तमात्र इस क्रिया के लिये भी समय निश्चय करलीजिये औ एक एकान्त स्थान में जहां किसी प्रकार का कोलाहल न हो जा बैठिये औ नित्य कर्म सन्ध्या के सब अंगों को विधि पूर्वक समाप्ति कर सन्ध्या के मुख्य अंग प्राणायाम में कुछ काल परिश्रम कीजिये। बृहत्सन्ध्या* जो सन्घया के जानने निमित्त एक उत्तम पुस्तक है उसे मंगा कर किसी विद्वान् से अथवा अपने गुरु से पूर्ण प्रकार पढ जाइये औ उसमें जिस प्रकार प्राणायाम का विधि बतलाया हुआ है ठीक २ वैसे ही गुरु द्वारा सीख कर नित्य निरन्तर अभ्यास कीजिये फिर आप अभ्यास करते करते जब १०८ मात्रा प्राणायाम की पूरी करने लग जावेंगे तब आप में तुरीयावस्था प्रगट होने लगजावेगी। मात्रा क्या है औ कितने समय को एकमात्रा कहतेहैं औ वह एक मात्रा कैसे पूरी कीजाती है सब बातें इस सन्ध्या सीखने के साथ आपको जानपड़ेंगी

मैं आपको सबकुछ ठीक २ बतादेता पर यह व्याख्यानका समय है। व्याख्यान में यदि मैं आसनलगा प्राणायाम की मात्रा बताने लगजाऊं तो सब लड़के जो यहां बैठे हैं कहने लगजावेंगे कि स्वामीजी कुछ नटवाजी की कला भी जानते हैं इसलिये यह क्रिया गुप्त रीति से सन्ध्या के समय एकान्तस्थान में बताने की है। किसी विविक्तस्थान में अधिकारियों औ श्रद्धावानों को बतासकता हूं।

प्रिय सज्जनो! यदि यम, नियम, के अंगों का पालन करते हुए आप श्रद्धा औ विश्वास पूर्वक कुछ काल सन्ध्या विधि पूर्वक करते हुए प्राणायाम को यत्नपूर्वक १०८ मात्रातक पंहुचा देवेंगे

---

* यह पुस्तक मैनेजर त्रिकुटीमहल शहर मजफ्फरपुर के पास पत्र भेजने से मिलेगी॥

तब आप में एकाग्रता ऐसी प्रगट होगी कि प्रथम तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विषयों से चित्त हट जावेगा, निष्कामपने की गन्ध आप के दशों दिशाओं में फैलने लग जावेगी, जब आप निष्काम होकर नाना प्रकार की इच्छा, औ भय इत्यादि से रहित हो जावेंगे तो परमानन्द लाभकरेंगे । मैं आनन्द के वर्णन करतेसमय पहले से आपको कहताचला आयाहूं कि " श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य " अर्थात् चक्रवर्ती के आनन्द से लेकर ब्रह्मा के आनन्द तक को जिस कामनारहित ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय ने त्याग करदिया है अर्थात पूर्ण रीति से निष्काम होगया है उसको वह परमानन्द प्राप्त है और वही मुक्त कहाजाता है । सो निष्कामपना आपको इस प्राणायाम ही से सिद्ध होगी । इसी की प्राप्ति का यत्न करना मुख्य है । श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द ने भी इसी तात्पर्य्य को प्राणायाम ही द्वारा सिद्ध करने के निमित्त अर्जुन को उपदेश किया है ।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ ॥
यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः ।
विगतेच्छा भय क्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

गीता अध्याय ५ श्लोक २७, २८

अर्थात् जो मुनि (मननशील ज्ञानी) इन्द्रियों को मन बुद्धि इत्यादि अन्तःकरण के साथ दमन किये हुये, सदा मोक्ष ही में चित्त को लगाये हुये, बाह्य इन्द्रियों के विषयों को बाहर ही रोके हुए अपने नेत्रों को गुरु के बताये हुए विधि से दोनों भउहा के भीतर उलट कर स्थिर किये हुए, नासिका के भीतर संचार करने वाले प्राण

अपान को सम करता हुआ अर्थात् प्राणायाम करता हुआ इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो रहा है अर्थात् निष्काम हो रहा है वही सदा मुक्त है अर्थात् परमानन्द को प्राप्त है।

लीजिये साहब! अब मेरी प्रतिज्ञा यहां पूरी होगई। मैंने जो आज व्याख्यान आरम्भ करते हुए यह प्रण किया था कि सन्ध्या से सुख अर्थात् आनन्द की प्राप्ति श्रवण कराऊंगा, सो मैं आप को दिखला चुका और वह आनन्द अर्थात् तुरीय आप ही में है यह जनाकर सन्ध्या द्वारा उसे प्रगट करने का यत्न करना चाहिये यह उपदेश कर चुका। मैं अपना काम कर चुका अब आप जाइये अपना काम कीजिये अर्थात् सन्ध्या करने का प्रबन्ध कीजिये।

बहुतेरे प्राणी ऐसे भी हैं जो मन ही मन यों कहरहे होंगे कि स्वामीजी ने जैसे सब बातें उपदेश की ऐसे ही हमारे बदले सन्ध्या भी करलिया करते तो अति उत्तम होता, क्योंकि हमलोगों को तो सायंकाल इष्टमित्रों के साथ बाइसिकल पर चढ़कर शहर की ठंडी हवा खाने और दोमंज़िलों पर चढ़कर स्वर्गलोक की अप्सराओं से भी बढ़ीहुई वारांगनाओं के साथ ठहाके उड़ाने से छुट्टी नहीं मिलती। फिर यदि हमलोग सन्ध्या करने लगजावें तो मद्य बेचने वाले कलाल बेचारे दुखी होकर रोने लगजावेंगे इनको कौन पूछेगा। इनपर भी तो दया करनी उचित है सो हमलोग तो भाई सन्ध्या वन्ध्या नहीं करते हमारे स्थान में स्वामीजी ही स्वयं कर लिया करें।

सच है प्यारे आनन्द मूर्तियो! सच है। आपकी तो सदा आनन्द ही में कटती है फिर आपको लौटकर आनन्द के यत्न करने की क्या आवश्यकता। जो वस्तु जिसे न प्राप्त हो वह उसके लिये उपाय करे आप को तो सब प्राप्त ही है। पर इतना स्मरण रहे कि

यह विषयानन्द है, नश्वर है, एकदिन अत्यन्त दुःखदाई है। एक दिन हाथमलना औ पछताना पड़ेगा औ यह कहना पड़ेगा कि वह काम क्यों नहीं किया जो आज काम आता। मैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना करूंगा कि वह आप की बुद्धि उधर से फेर अपनी ओर लगावें।

प्रिय श्रोतागण! अब समय थोड़ा है आपका विषय भी समाप्त होचुका है, अर्थात् सन्ध्या से सुख की प्राप्ति यह सिद्ध होचुका पर थोड़ा और विलमजाइये औ कुछ और सुनलीजिये। इस आनन्द की प्राप्ति के लिये जो प्राणायाम क्रिया में परिश्रम करना बतायागया है उसके साथ ब्रह्मविद्या के बारहवें अक्षर सन्तोष * को ग्रहण करना अवश्य चाहिये, यदि प्राणी पहले सन्तोषी नहीं होगा तो प्राणायाम क्रिया से निष्काम पना सिद्ध नहीं होगी। क्योंकि असन्तोषी पुरुष का हृदय दिन रात तृष्णा की ज्वाला से जलता रहता है। यह चाहिये, वह चाहिये, इसी चिन्ता में इधर उधर मारा फिरता है। मारे लोभ के कभी दयानन्दी कभी सनातनधर्मी, कभी ईसाई, कभी मूसाई, कभी दरयादासी, कभी उदासी, बनता फिरता है जहां कहीं किसीने कुछ देदिया चट उसी का धर्म उपदेश करने लग गये। मैंने बहुतेरों को देखा है कि कुछ काल दयानन्दी रहे जब उधर की दूकान फीकी पड़ी झट् सनातन धर्म की ओर चले आये जबतक सनातनधर्म में कुछ मिलता रहा तबतक सनातन धर्म के पालतू तोता बनरहे जब कुछ इधर भी खैंचातानी देखी तब झट अपनी गद्दी अलग जा जमाई फिर कपड़े की दूकान खोलदी, कुछ दिनों के पश्चात् रेलवे के ठेकेदार होबैठे फिर कुछ काल थियेटर का परदा उठाने गिराने लगे, नहीं जो कहीं किसी राजधानी के अधिकारी बनगये तो मालिक का कोषागार

---

* देखो वक्तृता २ पृष्ठ ६९

(खज़ाना) शून्य करदिया, अथवा प्रजा को जड़ से खोद खागये, तात्पर्य्य यह कि असन्तोषी का कहीं भी ठिकाना नहीं लगता।

योगशास्त्र के आचार्य्य पतञ्जलि कहते हैं कि:—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः

अर्थात् सन्तोष से वह उत्तम सुख लाभ होता है जिससे उत्तम अन्य कोई सुख किसी स्थान में नहीं है। समय न रहने से मैं इस विषय पर अधिक व्याख्यान न देकर केवल एक कथा ऐसे सन्तोषी पुरुष की सुनाताहूं जो अनेक इतिहास पुराणों में विख्यात है। इसके श्रवण करने से आप समझ जावेंगे कि सन्तोष धारण करनेवालों पर ईश्वर की कैसी कृपा होती है।

एकाग्र चित्त हो श्रवण कीजिये।

सुदामा ब्राह्मण की कथा।

यह सुदामा श्री कृष्णचन्द्र के परम प्रिय सखा थे, बचपन में एकसंग पाठशाला में श्री सांदीपनि नाम गुरु के पास अध्ययन किया था। यह पाठशाला से लौट कर समावर्त्तन संस्कार के पश्चात् गृहस्थाश्रम को स्वीकार कर शुकी नाम कन्या बिवाह लाये। प्रारब्ध वश धनसम्पत्ति से हीन रहे। ब्राह्मण को जिस प्रकार इन्द्रियजित, कामना रहित, संतोषी होना चाहिये ठीक वैसे ही थे। आप सच्चे ब्राह्मण थे। भिक्षा से जो कुछ थोड़ा बहुत मिल जाता उसी से दोनों स्त्री पुरुष अपने प्राण की रक्षा कर ईश्वर भजन में मग्न रहते थे। जब दरिद्रता ने अधिक दुःख दिया यहां तक कि धेले का तेल शरीर में मर्दन करने को मिलना कठिन होगया, शुकी के वस्त्र फटकर जब सैकड़ों टुकड़े होगये, केश तपस्विनी के समान सिमट कर एक लट

बन गया, अन्न के अभाव से चार २ पांच २ दिवस भूखे रहने लगी तब वह एक दिन अपने पति सुदामा से जाकर यों बोली—

पांव दियो चलिबे फिरबे को हाथ दियो हरि कर्म सिखायो।
नासिका दीन्ह सुगन्धन सूंघन नैन दियो हरि दर्श दिखायो॥
कान दिये सुनिबे हरिको यश जीभ दियो हरि को यश गायो।
सुन्दर साज कियो करुणानिधि पेट दियो यह पाप लगायो॥

स्वामिन् ! उस जगत्कर्त्ता ने शरीर में जो हाथ, पांव, आंख, कान, दिये सब उत्तम काज किये क्योंकि इन सबों से उत्तम२ काज सिद्ध होते हैं पर यह जो पेट देदिया यह एक बहुत बड़ा पाप लगा दिया, जिसकारण प्राणी चोरी, डांका, औ औरभी अनेक प्रकार के निन्दित कर्म करने लग जाता है, जब इसकी व्याकुलता होती है सब ज्ञान ध्यान विसरजाते हैं। अब भिक्षा से भी उतना अन्न प्राप्त नहीं होता, क्या करूं ? किधर जाऊं ? किस से कहूं ? डरते २ मैं आप के शरण आई हूं और यह प्रार्थना करती हूं कि आप एकबार अपने मित्र श्री कृष्णचन्द आनन्दकन्द द्वारकाधीश के समीप जाइये वे अवश्य आप की दरिद्रता दूर करेंगे। इतना सुन सुदामा बोले, पिये! दरिद्रता के समय कुछ मांगने के तात्पर्य से मित्रके समीप जाना उचित नहीं। मांगना ऐसी छोटी क्रियाहै कि भगवान कोभी बलि के द्वार पर मांगनेके समय छोटा रूप धारण करना पड़ा अर्थात् बामन होगये। प्रिये! मांगनेवाले की बिद्या, मर्य्यादा, महिमा औ बड़ाई मांगनेके साथ लोगोंकी दृष्टि से जाती रहती है। मांगनेवाला तृण और तूर से भी हौला समझा जाता है। कहावत है कि मांगन भलो न बाप सों जो प्रभु राखै टेक। फिर हे प्रिये! मैं क्या एक छोटीसी बात इतने बड़े प्राण प्रिय मित्र से मांगने जाऊं। तू चुप घर में सन्तोष से बैठी रह किसी प्रकार तो दिवस कट ही जावेंगे। सुदामा की बात सुन शुकी मौन साध

घर में जा बैठती है। पर जब अधिक कष्ट पाती है उसी प्रकार समीप जा प्रार्थना करती है। एवम् प्रकार जब अनेक बार शुकी को प्रार्थना करते देखा तब आप को कुछ दया आई औ बोले, अच्छा तू जो बारंबार ऐसे कहती है तो अब मैं जाऊंगा, मांगना तो मुझ से कदापि नहीं बनेगा पर इसी मिस से श्यामसुन्दर मनमोहन प्यारेका दर्शन तो होजावेगा।

इतिसञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिंदधे।
अप्यस्त्युपायनंकिञ्चि द्गृहे कल्याणि दीयताम्॥

श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ८० श्लोक १२

एवम् प्रकार श्यामसुन्दर के दर्शन निमित्त द्वारका जाने का विचार मन में कर शुकी से बोले, यदि मेरे प्राणप्रिय सखा के भेट के योग्य घर में कुछ होतो हे कल्याणि! मुझे दीजिये।

प्रिय सभासदो! सुदामा तो अपने मन में यही विचार रहे हैं कि इतने बड़े महाराज के सन्मुख बिना कुछ भेट लिये जाना उचित नहीं। जहां बड़े २ धनवान, स्वर्ण का थाल रत्नों से भर भेट करने के लिये खड़े रहते हैं वहां मुझ दरिद्री के भेट की उनको क्या चाहना है औ मुझ दरिद्री की भेट ही क्या होगी। उधर शुकी भी चुप बैठी मन ही मन चिन्ता से व्यग्र होरही हैं कि क्या करूं! गृह में तो कुछ है नहीं, ऐसे चिन्ता करते २ रोने लगी, नेत्रों से आंसू झर झर बहनेलगा, मन ही मन कहनेलगी, हे दई! तू ने मुझ अभागिन को ऐसी दरिद्रा बनाई कि आजतक तेरी रचना में कोई न हुआ होगा, हे नाथ! पास एक कौड़ी नहीं क्या लाऊं? क्या दूं? पर इतना सुनतीहूं कि श्यामसुन्दर दया औ शील के सागर हैं,

जो कोई भक्त प्रेमपूर्वक एक छोटीसी वस्तु भी उनके सन्मुख ला धरता है तो उसे बहुत समझकर बड़े आदर से स्वीकार करते हैं। चलो ग्राम से कुछ भिक्षा कर लाऊं। ऐसे विचार ग्राम में जा ब्राह्मणों के घर भिक्षा कर चारमूठी पृथुकतण्डुल चांवल की बाहुरी* मांग लाई।

याचित्वा चतुरोमुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान्
चैलखण्डेन तान वद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम्॥

श्रीमद्भा० दशम स्कं० अ० ८० श्लो० १४

सुदामा की फटी हुई लिंगौटी से एक छोटा खण्ड निकाल उस बाहुरी की पोटली बांधी औ चलने के समय घर के द्वार तक पति के साथ आई, उस पोटली को आप के हाथ सौंप नेत्रों में अश्रु भरलाई औ बोली—

स्वामिन्! इस बाहुरी को यत्नपूर्वक लेजाइये, इसे भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के सन्मुख रख मेरी ओर से यों कहना कि आप की दरिद्री दासी सुकी ने यह बाहुरी भेंट दे दोनों कर जोड़ यों प्रार्थना की है कि हे भगवन्! विधाता ने मुझे तेरी भेट के योग्य नहीं बनाया, इसलिये मैं अत्यन्त लज्जित हो यह बाहुरी भिक्षा मांग तेरी भेट निमित्त भेजतीहूं। यदि मेरे हृदय की गति जान तू अन्तर्यामी एक दाना भी अपने कोमल मुख में डालेगा तो मैं अपने को बड़भागिनि समझूंगी।

---

* बाहुरी—इस को किसी देश की हिन्दी भाषा में फरही, कहीं मूढी औ कहीं चूड़ा भी कहते हैं।

इतना कह मुख पर अंचल डाल रोती हुई घर के भीतर चली गई । इधर सुदामा ने द्वारका का मार्ग लिया । आप धीरे २ प्रेम में मग्न चले जारहे हैं औ बिचारते जाते हैं कि क्या जाने मेरी स्मृति श्यामसुन्दर को है वा नहीं । क्योंकि बचपन में जब से पाठशाला से संग छूटा तब से आज तक फिर मिलने का संयोग न हुआ वे तो द्वारकाधीश हैं मैं एक दरिद्र ब्राह्मण, भला मुझ ऐसों की वहां क्या गिनती है, जहां इन्द्र, वरुण, कुवेर द्वार पर हाथ बांधे खड़े रहते हैं, बिना आज्ञा राजमन्दिरों के भीतर जाने नहीं पाते तहां मुझ को कौन पूछेगा ।

ऐसी २ अनेक शंकायें मनमें उठकर आप की चाल को ढीली कर देती हैं, पर फिर थोड़े काल में श्यामसुन्दर के शील, स्वभाव, स्मरण होते हैं तो मनही मन कहते हैं नहीं । नहीं ।। मेरा सखा ऐसा नहीं कि मुझे भूल जावे, मुझे उसके शील, स्वभाव, भली भांति स्मरण हैं कि जब पाठशाला से छुट्टी पा हम दोनों बाहर निकलते थे तो वे मेरे गले में अपनी भुजा डाल गलबहियां किये हुये प्रकार प्रेम भरी मधुर बातें करते औ कहते कि—सखे मैं तेरे प्रेम को कभी नहीं भूलूंगा । वे सत्य संकल्प हैं । वे कभी मुझ को न भूलेंगे जैसे ही पहुंचूंगा वैसे ही वे दौड़ कर जैसे बचपन में गले लगाते थे ऐसे अब भी लगावेंगे । उनके दर्शन से मैं कृत्यकृत्य हो जाऊंगा । ऐसे विचार करते प्रेम में मग्न चले जारहे हैं ।

किसी २ कथा लिखने वाले ने यों भी लिखा है कि जब चलते चलते आप को तीन दिवस बीत गये और आपकी चाल से तीन दिवस का मार्ग और शेष रहगया अर्थात आधे मार्ग पर जब आप आये तो बहुत थक गये । एक सुनसान मैदान में थकथकाकर आप बैठ गये । आप सबों पर भली भांति प्रगट है कि जो प्राणी मार्ग कबही

नहीं चलता उसके लिये बिना किसी यान (सवारी) के चलना कैसा कठिन काम है, तिस पर भी बिना पदत्राण (जूता) फिर दुर्बल, औ खिन्न। ऐसों के लिये मार्ग चलना तो मानों मृत्यु का सामना करना है।

जब सुदामा से चला न गया मार्ग में बैठ गये। जब पांव के तलवों की ओर देखा मारे फफोलों के देखा न गया, फफोलों की भी यह दशा होरही है कि चलते २ फूट २ गये हैं, अब फिर उठ कर नंगे पांव चलना तो अति ही कठिन देख पड़ता है। अब आप विचारने लगे कि अभी कोसों चलना है औ पांव के तलवों की यह दशा हो रही है, अब मार्ग कैसे चलूंगा—हे नाथ! हे प्रभो! न जाने मैंने पूर्व जन्म में क्या चूक की जिस कारण मेरी ऐसी दशा होरही है। अब तो तेरा दर्शन दुर्लभ है। अब तो इसी सुनसान मैदान में मेरी मृत्यु लिखी थी जो यहां घसीट लाई है। नाथ! तू दीनबन्धु, भक्तवत्सल, अनाथोंका नाथ, करुणानिधान, औ दयासागर कहा जाता है सो तू मुझ दीन को ऐसे क्यों भूल गया। कहां जाऊं! किस से कहूं! कौन ऐसा है जो मुझ दुखिया को सवारी पर बैठाल अब द्वारका पहुंचावेगा। अब तो मैं न इधर का रहा न उधर का, यदि घर की ओर लौटूं तो नहीं बनता क्योंकि वह भी अब बहुत दूर पीछे छूट गया।

प्यारे सभासदो! एवम् प्रकार विलाप करते २ रुदन करने लगे और रोते २ निद्रा लगगई, रात्रि होगई। इधर तो सुदामा रोते २ सोगये हैं उधर द्वारकाधीश, भक्तवत्सल, अर्द्ध रात्रि के समय निद्रा से चौंक पड़े औ झट उठ बैठे, श्री रुक्मिणी जी जो चरणों की सेवा कर रहीं थीं घबड़ा कर बोलीं—नाथ! आज यह चौंकना कैसा? आप

ने उत्तर दिया—प्रिये! इस समय मेरे एक भक्त पर बहुत क्लेश पहुंच रहा है वह मुझ को पुकारते पुकारते सो गया है, इस कारण मेरा चित्त उदास है, अब मुझे निद्रा नहीं आती। ऐसा कह आप कुछ सिसकने लगे, श्री रुक्मिणी जी फिर बोलीं—नाथ! आप तो भक्तवत्सल हैं, सर्व शक्तिमान हैं, एक पल में राई को पर्वत कर सकते हैं आप के लिये एक भक्त का कष्ट दूर करना कौनसी बड़ी बात है। आप ने कहा—सच है! मैं ऐसा ही करूंगा। तुम यहां ही बैठी रहो मैं अभी आता हूं। इतना कह आप शयन मन्दिर से बाहर निकल आये औ गरुड़ का आवाहन किया, गरुड़ आन पहुंचे, आप गरुड़ पर चढ़ सुदामा के समीप पहुंचे औ सुदामा को धीरे गरुड़ पर चढ़ा द्वारका नगर के राजभवन के सामने एक राजपथ के किनारे उतार दिया औ गरुड़ को आज्ञा दी कि अब मेरा काज होगया तुम जाओ उधर गरुड़ चले गये, इधर द्वारकाधीश शयन भवन में प्रवेश कर सोगये, रुक्मिणी पूर्ववत् चरणों की सेवा करने लगीं।

प्यारे श्रोतागण! क्यों न हो। जब श्यामसुन्दर की ऐसी भक्त-वत्सलता औ दीनदयालुता है तब तो हमारे आप के समान हजारों लाखों दीन, दुखी, उसके चरणों की आशा कर रहे हैं-चलिये अब आगे चलें। एक बार सब मिल कहिये—हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

इधर प्रातःकाल होते ही सुदामा की निद्रा टूटी। इधर उधर देख आप विचारने लगे कि मैं द्वारका के ध्यान में सोगया हूं इस लिये स्वप्न में द्वारका की शोभा देख रहा हूं। पर कुछ काल के पश्चात् जब शरीर की पूरी सुधि हुई औ दृढ़ निश्चय होगया कि यह स्वप्न नहीं है मैं तो जागरित अवस्था में हूं यह तो ठीक द्वारका ही

है इतना निश्चय होते ही आप के नेत्रों में आंसू भरआया औ प्रेम में मग्न हो कहने लगे । अहा ! दीन बन्धो ! तू धन्य है ! तेरी अगाध महिमा का थाह आज तक ब्रह्मादि देवों को भी न लगा, मुझ पामरन की क्या गिनती है । न जाने तूने द्वारका को खींच मेरे समीप कर दिया अथवा मुझको किसी प्रकार घसीट कर द्वारका में रख दिया । हे गोविंद ! तेरी गति तू ही जाने ! ऐसे विचार करते प्रेम से विह्वल बहुत दिनों के विछुड़े हुए सखा के मिलने के उत्साह में मग्न राजद्वार की ओर चले ।

उधर श्यामसुन्दर प्रातःकालिक नित्यकर्म सन्ध्यादि से छुट्टी पा राज सिंहासन पर विराजमान हुए, श्री रुक्मिणी जी सन्मुख आ हाथ बांध खड़ी हो प्रार्थना करने लगीं कि स्वामिन् ! आज रात्रि के समय जिस भक्त को आप ने स्मरण किया था उनका दर्शन हम दासियों को भी होगा वा नहीं । भगवान ने उत्तर दिया । हां ! थोड़ा धीरज धरो मेरे भक्त अब आते ही होंगे ।

इधर सुदामा राजद्वार पर पंहुच पौरियों से प्रार्थना करनेलगे भई ! द्वारकाधीश से जा कहो कि आप का एक मित्र सुदामा नाम ब्राह्मण आपसे मिलने आयाहै । आप का बचन सुन और यह दरिद्र दशा देख पौरियों को क्रोध आया औ बोले—अरे दरिद्र ब्राह्मण ! तू चेतकर नहीं बोलता, अरे छोटा मुंह बड़ी बात, भला विचार तो सही, कहां राजाधिराज द्वारकाधीश, कहां तू एक दरिद्र ब्राह्मण। उन से तुझ से मित्रता कैसी ? मित्रता, वैर, व्याह, तो समान से ही होती है भला ऐसी भी कहीं मित्रता होती है । जा ! हट ! चल ! यहां से चल ! दूर हट के खड़ा हो !

हमारे दीन दुखी सुदामा पौरियों की बातें सुन मारे भय के एक

ओर खड़े होजाते हैं औ कुछकाल के पश्चात् फिर पौरिया से प्रार्थना करते हैं कि भई! मेरी थोड़ीसी भी महाराज से जा कहो। उन पौरियों में एक वृद्ध दयावान था वह बोला। विप्र थोड़ा धीरज धरो मैं तुम्हारा वृत्तान्त जासुनाऊंगा। कुछ काल के पश्चात् वह वृद्ध पौरिया भीतर गया औ श्यामसुन्दर के सन्मुख हाथ बांध बोला—

सीसपगा नझँगा तनुमें नहिं जानि को आहि बसै केहि ग्रामा। धोतीफटीसी लटीदुपटी अरु पांव उपानहकी नहीं सामा॥ द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सों बसुधा अभिरामा। पूछत दीन दयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

भगवन्! द्वार पर एक ब्राह्मण अत्यन्त दीन दुखी जिस के मस्तक पर न पगड़ी है, न शरीर में कोई वस्त्र है, न पांव में जूता है, न जाने कहां का रहने वाला है, एक फटी लिंगोटी पहने खड़ाहै और बोलताहै कि द्वारकाधीश मेरे मित्र हैं। श्यामसुन्दर ने पूछा नाम क्या बताता है। पौरिया बोला। सुदामा। इतना सुनतेही आप पानका बीड़ा जो मुख में डाला चाहतेथे वहां ही पटक एक बार जो प्रेम से विह्वल हो सिंहासन से कूदपड़े औ सुदामा से मिलने को दौड़े, पीताम्बर कहीं छूटा, पटुका कहीं गिरा, करवस्त्र (रूमाल) कहीं रहगया, बड़े वेग के साथ दौड़ते हुए सुदामा के गले से जा लिपटे औ प्रेम में मगन हो अश्रुपात करते हुए बोले— अहा सखे! आज मेरे धन्य भाग्य हैं जो आपने अपने शुभागमन से मेरा गृह पवित्र किया। सुदामा से तो अब कुछ बोला ही नहीं जाता; केवल नेत्रों से आंसू झर झर झररहा है औ आप मौन हुए श्यामसुन्दर के गले से लिपट रहे हैं।

प्यारे सभासदो ! एक ओर कहां द्वारकाधीश नाना प्रकार के रत्नजटित आभूषण वस्त्र धारण किये औ कहां एक ओर दरिद्र ब्राह्मण मैली, कुचैली, फटी लिंगोटी पहने। इन दोनों के मिलने का यह अद्भुत दृश्य देख द्वारकावासी परस्पर यों बातें करने लगे कि क्यों न हो ! श्यामसुन्दर के साक्षात दीनबन्धु होने में तनक भी सन्देह नहीं है। देखो तो सही। आप अपने दीनबन्धु ऐसे बिरदको किस प्रकार प्रगट कर रहे हैं।

हे नाथ ! कभी हम दीनों की ओर भी ऐसी कृपा दृष्टि होगी वह कौनसा दिन होगा कि सुदामा के सदृश हमारे दुखी नेत्रों को अपने रतनारे नैनों से मिला सुखी करोगे (हंस)

तत्पश्चात् सुदामा को गृह में लेजा पलंग पर बैठा अपने हाथ से पूजा की सामग्री के पूजन कर चरण पखार उस जल को अपने मस्तक पर डाला औ अगर, चन्दन, केसर, से सुगन्धित अनुलेपन बना सुदामा के शरीर में लेपन किया।

अथोपवेश्य पर्य्यङ्के स्वयं सख्युःसमर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥
अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥

श्रीमद्भागवत दशमस्कंध। अ० ८०, श्लोक २०, २१

उक्त प्रकार पूजन करनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द ने सुदामा से कुशल मंगल पूछा फिर दोनों मित्र परस्पर बातें करने लगे। द्वारकाधीश अपने सखा सुदामा से यों पूछते हैं कि हे सखे!

आप, मैं, औ श्री बलदेवजी अर्थात् दाऊजी उज्जैन नगरी में गुरु कुल में निवास कर विद्याध्ययन करते थे सो आप कभी स्मरण करते हैं ? जिस गुरु के चरणकमलों के प्रताप से विद्या पाकर हम लोगों ने अपना जन्म सुधारा है ऐसे श्री सांदीपनी नाम गुरु महाराज की स्मृति आप को कभी होती है ?

सवै सत्कर्मणां साक्षात् द्विजातेरिह सम्भवः।
आद्योऽङ्ग यत्राऽऽश्रमीणां यथाऽहंज्ञानदो गुरुः॥
नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह।
ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम्॥
नाहमिज्या प्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा॥

श्रीमद्भागवत दश० स्कं० अ० ८० श्लो० ३२, ३३, ३४.

अर्थात् श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द फिर बोलते हैं कि हे मित्र! इस संसार में जिस से जन्म मात्र होता है वह पिता प्रथम गुरु है औ जो उपनयन संस्कार कर गायत्री प्रदान करता हुआ वेदादि अध्ययन कराता है वह द्वितीय गुरु है, और जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, औ संन्यासी चारों आश्रमियों को ज्ञान उपदेश करने वाला गुरु है वह तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप है अर्थात् जैसे मैं सर्वेश्वर गुरु हूं ऐसे पूज्य है।

हे ब्रह्मन्! इस संसार में वर्णाश्रमियों के मध्य वेही परम विवेकी औ अपने यथार्थ प्रयोजन के साधन में चतुर हैं जो मुझ गुरु मूर्ति के उपदेश द्वारा भवसागर के घोर पार को तरजाते हैं।

मैं जो सर्व भूतों का अन्तरात्मा हूं सो गृहस्थों के नाना प्रकार के यज्ञ से, ब्रह्मचारियों के उपनयनादि संस्कार से, वानप्रस्थों के तप से औ संन्यासियों के शमदमादि धर्म से इतना प्रसन्न नहीं होता हूं जितना श्री गुरुमहाराज के चरणकमलों की सेवा से।

प्यारे श्रोताओ ! इतना वचन कह श्यामसुन्दर फिर पूछने लगे कि हे सखे! उस दिन की बात आप को स्मरण होती है जिस दिन हम लोगों को गुरुपत्नी ने वन में इंधन लाने को भेजा था। जब हम लोग बहुत दूर वन में चले गये तो महा घोर वर्षा होने लगी अत्यन्त दुःसह पवन चलने लगा। रात्रि होने पर भी वर्षा निवृत्त नहीं हुई। घोर अन्धकार रात्रि में हम लोग का मार्ग भूल गया, इधर उधर फिरने लगे। मार्ग सर्वत्र जल मय होगया। विद्युत की भयंकर गर्जना से हमलोग डरपने लगे। हमलोगों ने एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए इधर उधर फिरते रात्रि बिताई। इधर श्री गुरुमहाराज अपनी धर्मपत्नी सहित हम लोगों के लिये अत्यन्त व्याकुल होते रहे। न भोजन किया, न शयन किया। प्रातःकाल सूर्योदय होते ही श्री गुरुमहाराज हमलोगों को ढूंढते हुए वन में पहुंचे और हमलोगों को दुःखित देख बोले। हा कष्ट ! हे पुत्रो ! तुम लोगों ने मेरे लिये इतना दुःख उठाया। धन्य हो ! तुमलोग सच्चे शिष्य हो। शिष्यों का गुरु के उपकार के लिये अपना सब धन औ शरीर निष्कपट प्रेम से अर्पण करदेना ही बहुत बड़ा धर्म्म है।

एतदेवहि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम्।
यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ॥

दश० स्कं, अ० ८० श्लो० ४१

ऐसी २ और भी बहुतसी बातें गुरुकुल में वास करने के समय की हैं जो आप को स्मरण होती ही होंगी। सुदामा ने उत्तर दिया भगवन्! सत्य है। त्रिलोकी में वह कौनसा पदार्थ है जो गुरुचरणों की सेवा से प्राप्त न हो। हे भगवन् वेद तो आप का अङ्ग हैं फिर आप का हमलोगों के साथ गुरुकुल में वेद पढ़ना और गुरु के लिये शारीरिक क्लेश उठाना तो केवल एक लीला मात्र हम पामरन के उपदेश के लिये है।

ऐसे परस्पर संलाप करते हुये श्यामसुन्दर सुदामा की ओर देख मन्द २ मुसकराते हुये बोले—हे सखे! मेरे लिये कुछ भेट (सौगात) लाये हैं वा नहीं? अब तो सुदामा उस चाहुरी की पोटली को जिसे मारे लज्जा के पहले ही से कक्ष में दबा रक्खा था और भी अधिक दबाये जाते हैं औ मन में विचार रहे हैं कि जहां गृह में चारों ओर कंचन के खम्भ लगे हैं रत्नजटित पलंग पर बैठा हूं, पटरानियां नानाप्रकार के आभूषण पहने खड़ी हैं, ऐसे स्थान में जो फटे मैले कुचैले चीर में बंधी चारमूंठी चाहुरी को भेट धरूं तो सब छोटे बड़े हंस देवेंगे और मुझको मूर्ख समझेंगे। जब कुछ काल मारे लज्जा के सुदामा संकोच से कुछ न बोलसके तो श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने उन के मनकी गति जान औ शुकी का प्रेम स्मरण कर मुसकराते हुये हाथ को कुछ आगे बढ़ा सुदामा के कक्ष के समीप लेजा चीर के एक छोर को पकड़ खींच लिया औ बोले—(स्वयं जहार किमिद-मिति पृथुक तण्डुलान्) अहा मित्र! यह क्या है? चाहुरी है। अहा! कैसा उत्तम सौगात मेरे लिये लाये हैं फिर मुझे देने में विलम्ब क्यों करते थे? इतना वचन सुनते ही सुदामा के नेत्रों में अश्रु भरआये औ बोले, भगवन्! मेरे प्रस्थान के समय मेरी भार्या शुकी ने यह भेट आप के लिये दी औ चलते २ यह वचन बोली कि भगवान् श्री कृष्ण-

चन्द के सन्मुख यह वाहुरी रख मेरी ओर से यों कहना, हे भगवन्! आपकी दरिद्री दासी शुकी ने करजोड़ यों प्रार्थनाकी है कि विधाताने तो मुझे तेरे भेंट के योग्य नहीं बनाया तथापि मैं अत्यन्त लज्जित हो यह वाहुरी जो भिक्षा मांग तेरे लिये भेजती हूं इसमें से यदि मेरे हृदय की गति जान औ प्रेम पहिचान एक दाना भी अपने कोमल मुख में डालोगे तो मैं अपने को बड़भागिनि समझूंगी, ऐसे कहती हुई मुखपर अंचल दे रोती घरके भीतर चलीगई और मुझे इधर भेजा।

इतना वचन सुदामा के मुख से श्रवण करते ही प्रीति की रीति जानने वाले श्यामसुन्दर प्रेम से भरआये औ दोनों नेत्रों से अश्रुपात करते हुये बड़ी शीघ्रता के साथ एक मूठी वाहुरी मुख में डाली एक लोक की सम्पदा सुदामा को प्रदान की जब दूसरी मूठी मुंह में डालने की इच्छा की तब श्री भगवतपरायण रुक्मिणीजी ने हाथ पकड़ लिया औ बोली भगवन् ! भक्तों को असीम संपदा प्रदान करने के लिये आप का एक ही मूठी तण्डुल ग्रहण करना बहुत है अब फिर दूसरे के ग्रहण करने की क्या आवश्यकता । भक्तवत्सल भगवान ने उत्तर दिया, अहा ! प्रिय रुक्मिणि ! तूने आज मेरे उत्साह में बड़ी ही बाधा की । आज सुदामा औ उसकी भार्य्या शुकी का प्रेम देख मेरी इच्छा थी कि तीन मूठी तण्डुल ग्रहण कर तीनों लोक की सम्पत्ति प्रदान करूं ।

इतना कह सब पटरानियों को आज्ञा दी कि आज मेरे सखा सुदामा की पहुनई के लिये तुम सब मिल अपने हाथों से नाना प्रकार के व्यञ्जनादि तयार करो । एवम्प्रकार बहु विधि पाकादि तयार करा स्वर्ण के थाल में सँवार सुदामा को भोजन करा दूध के फेन सदृश श्वेत बिछावन पर शयन करा दिया। सुदामा ने उस रात्रि को

स्वर्ग का सुख पाया। प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् सुदामा ने घर जाने की आज्ञा मांगी। द्वारकाधीश ने बड़े प्रेम से आप को विदा किया। कुछ दूर साथ साथ जा मार्ग पर पहुंचा विदा करते समय गले से लगा यों कहा कि सखे! कभी २ अपने शुभागमन से मेरा गृह पवित्र करते रहना, जो कुछ अपराध मुझसे हुए हों उनको क्षमा करना औ मुझे भूलना नहीं। इतना कह विदा कर लौट आये।

अब सुदामा घर की ओर चले औ यों विचारने लगे कि क्या कारण मित्र ने मेरा सन्मान, सत्कार, तो इतना अधिक किया जो मेरे योग्य नहीं था पर चलने के समय एक फूटी कौड़ी भी नदी।

कितने कथा लिखने वाले तो यों लिख गये हैं कि सुदामा ने क्रोध में आकर द्वारकाधीश को बहुत से दुर्वचन कहे औ यों कहा कि यह गाय का चरानेवाला जाति का अहीर भाग्यवश राजा होगया पर फिर तो जाति स्वभाव नहीं गया। यह क्या जाने कि राजा के यहां कोई आवे तो उसे कैसे विदा करना चाहिये। पर प्यारे सभासदो! यह बात झूंठ है। लिखने वाले ने अपने मन की गति लिख मारी होगी। सुदामा बड़े ज्ञानी औ संतोषी थे भला यह ऐसा क्यों कहने लगे। इन्होंने तो विचारते २ अपने मन में यों विचारा कि द्वारकाधीश मेरा परम प्रेमी है, मेरा सच्चा मित्र है, सर्व प्रकार मेरे कल्याण का इच्छुक है, इस लिये धन नहीं दिया कि—

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।
इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात्॥

यह निर्धनी जो धन पावेगा तो मारे मद के मेरा स्मरण भजन नहीं करेगा, विषय से मत्त होजावेगा इसलिये उस करुणासागर ने मुझे धन नहीं दिया। किसी ने कहा है कि—

कनक कनिक तै सौगुनो मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है वह पाये बौराय ॥

अर्थात् कनक जो (स्वर्ण) उसमें कनिक जो (विष) से सौ गुन मादकता अधिक है क्योंकि मनुष्य कनिक (विष) के तो खाने से बावला होता है औ कनक (स्वर्ण) के पातेही बावला बनजाता है।

ऐसे विचार करते जब आप अपने नगर के समीप पहुंचे क्या देखते हैं कि सुदामापुरी तो स्वर्ग लोक की शोभा से सुशोभित होरही है। आप को यह भान हुआ कि किसी देश के बड़े नरेश ने यहां आन कर अपना नगर बसा लिया है । अबतो आप मारे शोक के व्याकुल हुए औ सोचने लगे कि हा दैव ! मैं तो धन मांगने गया सो परमात्मा ने मुझे लोभी जान यह मेरा दण्ड किया कि मेरी एक टूटी फूटी सड़ी गली झोंपड़ी थी वह भी गई, एक पतिव्रता भार्या थी वह भी न जाने मृत्यु को प्राप्त हुई अथवा किसी राजाधिकारी ने उसे यहां से निकाल बाहर किया । यहां तो देखता हूं कि राजमार्ग के दोनों ओर पौरिये दण्ड लिये पहरा देरहे हैं । किस से पूछूं ? क्या करूं ? ऐसे डरते २ एक पौरिया से पूछा भई यह कौन नगर है ? इस का राजा कौन है ? कब बसाया गया ? मेरी यहां एक झोंपड़ी थी वह क्या हुई ? एक मेरी भार्या थी वह कहां चली गई ? इतना सुन पौरिया ने कहा, तू कौन है ? कहां रहता है ? कैसा मूर्ख है तू नहीं जानता कि यह सुदामापुरी श्री सुदामाजी महाराज की है, कब बसी यह मैं क्या जानूं, यहां तेरी झोंपड़ी कैसी औ भार्य्या कैसी, यहां तो सब के घर अटारी, भवन बन्दनवारों से सुशोभित हो रहे हैं, यहां कोई दरिद्र है ही नहीं जिसकी झोंपड़ी हो औ भार्या वार्या तो मैं नहीं जानता। जा आगे जापूछ। कोई दूसरा कुछ जानता

होगा वो तुम्हें बतादेगा। इतना वचन सुन सुदामा हौले २ आगे चले, इधर उधर देखते जाते हैं, जैसे २ आगे बढ़ते हैं अधिक से अधिक राजशोभा देख देख विस्मित होते हैं, मारे भय के किसी से कुछ पूछना नहीं बनता, चलते २ राजभवन के समीप पहुंचे, तब बहुतों ने इनको देख शुभी से जा कहा कि हे कल्याणि! आप अपने स्वामीका जैसा रूप गुण वर्णन करती हैं तैसेही रूप गुण सम्पन्न कदाचित आपके पति श्रीसुदामाजी महाराज राजभवन के समीप चले आरहेहैं।

पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसम्भ्रमा।
निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात्॥
पतिव्रता पतिंदृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना।
मीलिताक्ष्य नमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे॥
पत्नीं वीक्ष्य प्रस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्येभान्तीं सविस्मितः॥
प्रीतःस्वयं तथायुक्तः प्रविष्टो निज मन्दिरम्।
मणिस्तम्भ शतोपेतं महेन्द्र भवनं यथा॥

श्रीमद्भागवत दश० स्कं० अ०८१ श्लो० २५, २६, २७, २८

एवम् प्रकार पति का आगमन सुनकर सुदामा की पत्नी मारे आनन्द के व्याकुल हो पति का दर्शन करने के लिये इतनी शीघ्रता के साथ मन्दिर से बाहर निकली जैसे साक्षात् श्री लक्ष्मी जी कमल बन से बाहर निकसें॥

सो पतिव्रता शुभी पति का दर्शन पा प्रेम के आंसु से भरे नेत्रों

को मींचकर बड़ी चतुराई के साथ पति को नमस्कार किया औ मन ही मन पतिभाव से मिली।

जैसे देवताओं की स्त्रियां विमानों में बैठीहुई शोभायमान होतीहैं ऐसे अपनी भार्य्या को सुशोभित देख औ ऐसे दासियों से जिनके गले में जड़ाऊ के पदक (कंठे) पड़ेहैं घिरीहुई देख सुदामाजी परम आश्चर्य्य को प्राप्त हुए।

ऐसी शोभा देख सुदामाजी ने अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी भार्य्या के साथ अपने मन्दिर में प्रवेश किया, वह आप का भवन कैसा है कि इन्द्र के भवन के समान जिसमें मणि के सैकड़ों खम्भे जड़ेहैं।

प्रिय सभासदो! अब तो सुदामाजी मन ही मन विचारने लगे कि इतनी शीघ्रता के साथ इतनी सम्पत्ति, बाग़, बग़ीचे, हर्म्य, अटारियां कैसे तयार होगई, हो न हो यह सब उसी श्यामसुंदर नटनागर की नटबाज़ी हैं जो त्रिलोकी को अपनी माया के डोर में बांधकर कठपुतलियों के समान नचारहाहै। इतना विचार स्त्री से बोले। हे कल्याणि! तू ने द्वारकाधीश से धन की चाहना की इसलिये उस "वांछातिरिक्तप्रद" अर्थात् वांछा से भी अधिक देनेवाले भगवान ने अपनी उदारता को स्मरण कर तुझको वांछा से अधिक सम्पत्ति प्रदान की, अब तू आनन्दपूर्वक अपना समय वितीत कर! इतना कह नेत्रों में अश्रु भरलाये औ श्यामसुन्दर के ध्यान में मुहूर्त्त मात्र मग्नहो यों प्रार्थना करनेलगे—हे भक्तवत्सल! तू अपने अविवेकी भक्तों को इसी कारण धन नहींदेताहै कि ये धन के मद से मदान्ध हो तेरी भक्ति को भूलजावेंगे औ तेरा ध्यान छोड़ विषय में मग्न होजावेंगे सो यथार्थ ही है। हे प्रभो! मेरा तो तुझसे इतनाही मांगना है कि जन्म२ तेरे चरणारविन्द का समीपी होऊं और तुझसे यह मेरा सखाभाव बनारहे।

प्रिय सज्जनो ! अब आप भलीभांति विचार देखें कि जो विभव देवतान को भी दुर्लभहै सो एक महा दरिद्र ब्राह्मण सुदामा को प्राप्तहुआ इसका क्या कारण, तो आप अवश्य कहेंगे कि केवल सुदामा ने सन्तोष का यह फल पाया सुदामा के समान सन्तोषी कोई दूसरा आजतक सुना नगया । जैसे दान में राजा कर्ण, धृति में महाराज मयूरध्वज, ज्ञान में महाराज जनक वीरता में भीष्म ऐसे सन्तोष में सुदामाजी की सर्वत्र उपमा दीजाती है ।

देखिये " सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः " जो पतञ्जली का सूत्र मैंने आपको पहले सुनाया था वह सुदामा की कथा से पूर्ण प्रकार सिद्ध होगया । अर्थात् सन्तोष से वह सुख लाभ होता है जिससे उत्तम कोई अन्य सुख कहीं भी नहीं है ।

बहुतों के चित्त में इतनी शंका तो अवश्य उत्पन्न हुई होगी कि जो सुख सुदामा को लाभ हुआ सो विषय सुख है यह तो सदा निन्दनीय है औ सूत्र का अर्थ यह है कि जिस से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहो सो सन्तोष से लाभ हो अर्थात् परमानन्द लाभ हो । सो तो सुदामा को नहीं हुआ ।

उत्तर यह है कि मैं प्रथमही आपको कह आया हूँ कि विषयसुख अर्थात् लौकिक आनन्द उस परमानन्द का विम्ब है । जीवों का स्वभाव है कि विम्ब से मुख्य पदार्थ का पता पाते हैं जैसे किसी चित्र को देख उसका पता लगालेते हैं जिसका वह चित्र है । बक नाम पक्षी जल के ऊपर उड़ते२ जलपर मछलियों की केवल छाया देख बड़ी शीघ्रता से डूबकर झट उनको पकड़ लेताहै । अथवा प्रातःकाल

अंश को देखते२ सूर्य का दर्शन पाते हैं । यदि इन उदाहरणों से आपको सन्तोष न हो तो यों कहिये कि अरुन्धतीदर्शनन्याय * से देखनेवाला पहिले स्थूल तारागण को अरुन्धती समझता है फिर उन में से एक२ को पहिचानकर त्याग करताहुआ अन्त में यथार्थ अरुन्धती को देखता है । इसीप्रकार पूर्व में जो मैं आनन्द की मीमांसा कर आया हूँ अर्थात् चक्रवर्त्ती के आनन्द से लेकर हिरण्यगर्भ के आनन्द तक को देखता आया हूँ तिनमें एक२ को देखताहुआ यह परमानन्द नहीं है ऐसा समझकर त्याग करताहुआ पश्चात् प्राणी परमानन्द को प्राप्त करता है । ऐसेही सुदामा ने विषयानन्द को भोगते औ त्याग करते अन्त में परमानन्द लाभ किया यह निश्चय है। दूसरी बात यह है कि सुदामा जिसे स्वयं तनक भी इस विषयानन्द की इच्छा न थी केवल अपनी पतिव्रता स्त्री के सन्तोष निमित्त द्वारकाधीश के शरण गये थे, वह यहभी नहीं जानते थे कि इतना विभव प्राप्त होगा, परन्तु जब स्त्री की प्रेरणा से श्यामसुन्दर ने दयाकर ऐसा दुर्लभ ऐश्वर्य देदिया तब अपनी स्त्री के साथ उस विषय में आशक्त न होकर त्यागने की इच्छा से भोग करते रहे । जैसे अज्ञानी जीव विषय में लिप्त होकर भोगता है ऐसे नहीं भोगा । वह तो ज्ञानी थे जानतेथे कि यह विषयानन्द है, नश्वर है, तुच्छ है, निन्दनीय है, इसलिये " पद्मपत्र मिवांभसि " जैसे कमल का पत्र जल में रहकर भी जल से लिप्त नहीं होता ऐसे सुदामा केवल भार्य्या की प्रसन्नता निमित्त विषय सुख में निवास करतेहुए भी लिप्त न हुए सदा परमानन्द में ही मग्न रहे ॥ देखिये श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध अध्याय ८१ के श्लोक ३८ में भी ऐसाही लिखा है ॥

---

* अरुन्धती दिदर्शयिषुस्तत्समीपस्थां स्थूलां तारामनुख्यां प्रथममरुन्धतीति ग्राहयित्वा तां प्रत्याख्याय पश्चादरुन्धतीमेव ग्राहयति ॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ।
विषयाञ्जायया त्यक्षन् बुभुजे नातिलम्पटः

यहां त्यक्षन् शब्द का अर्थ है, " शनैः शनैः त्यजन " धीरे २ त्याग करतेहुए । अथवा "तां विषयांश्च कियत्कालानन्तरं त्यक्ष्या मीति " इन विषयों को कालानन्तर में त्यागदूंगा ऐसा विचारते हुए ॥ अथवा " शनैःशनैर्विषयत्यागमभ्यसन् " धीरे २ विषय त्याग का अभ्यास करते हुए । फिर उक्त श्लोक में दूसरा शब्द है " नातिलम्पटः " (तेष्वनासक्त एव बुभुजे) अर्थात् उसे विषय में नहीं आसक्त होकर भोगते भये ।

प्यारे सभासदो ! अब आज का व्याख्यान समाप्त हुआ अब मैं अन्त में आप लोगों से यही कहूंगा कि सुदामा के सदृश सन्तोष धारण किये हुए अपने नित्यकर्म सन्ध्यादि में विचारपूर्वक परिश्रम करते हुए श्यामसुन्दर से यही प्रार्थना करते रहें कि हे प्रभो ! हे दीनबन्धो ! हे कृपानिधे ! जैसे तूने सुदामा की ओर कृपादृष्टि की ऐसे कभी हम दीनन की ओर भी चितवेगा ।

कब हरि मेरी ओर चितैहो ॥

मेरो पास पौ अटकायो यह बाजी कब नाथ जितैहो ।
की कबहू निज छबि देखलै हो की मेरी ऐसीही बितैहो ॥
पतित जानि मोहि दूर हटैहो की कबहू अपने चितलैहो ।
हंस के इन दुखियन नयन तैं कब रतनारे नयन मिलैहो ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

व्याख्यान ५
Lecture 5

विषय

 सन्ध्या 

से

अरोगता

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व माम्। भवोद्भवाय नमः । १ । अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः। २।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी—
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि ॥
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके—
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥

आज बड़े आनन्द की वार्त्ता है कि हमारे सनातन धर्म की उन्नति के निमित्त यह सुन्दर सभ्यमण्डली इस सभाभूमि में सुशोभित हुई है।

आज सनातन धर्म रूप चक्रवर्ती महाराज को दया, क्षमा, अहिंसा इत्यादि पटरानियों के साथ, विवेक औ विराग रूप मंत्रियों को संग लिये, तप, संतोष, शौच, आस्तिक्य इत्यादि वीरों को सेनापति बनाये हुए अर्थ, धर्म, काम औ मोक्ष की चौकड़ी पर सवार, कर्मकाण्ड के छर्रे, ज्ञान के गोले औ विज्ञान के बारूद को उपासना रूप सांढनी पर लदवाए हुये बड़ी शीघ्रता के साथ आते हुए सुन, कलि रूप महा अन्यायी राजा जो अज्ञानता, मलिनता, कठोरता, इत्यादि पाटरानियों को संग लिये, दैहिक, दैविक, भौतिक, ताप रूप मंत्रियों के साथ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, औ अहंकार इत्यादि दुराचारियों को सेनापति बनाए हुए पाप के महा अन्धाधुन्ध नगर में कोलाहल मचाता हुआ कलि निवासी जीवों को दुःख देरहा था, घबड़ाता हुआ मारे भय के भाग चला है, आशा है कि थोड़ी देर में यह अन्यायी उपदेश रूप तोपों की चोट से खण्ड २ होता हुआ नरक की खाई में जागिरे और हमलोग अपने विजय का नगारा किस प्रकार बजावें कि—हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे ॥

मेरे बुद्धिमान सभासद तीन दिवस से लगातार सन्ध्या ही का विषय श्रवण कर रहे हैं, आज मैं फिर इसी विषय को हाथ में लूंगा औ यह दिखलाऊंगा कि सन्ध्या से अरोगता कैसे लाभ होती है औ सन्ध्या करने वाला किसी भयङ्कर रोग से क्यों नहीं पीड़ित होता, यों तो दस पांच साल पर कभी २ किंचित शीत अथवा उष्णता के लगजाने से थोड़ी सरदी या गरमी शरीर में होजाना तो शरीर का धर्म है, इसकी गणना रोगों में नहीं हो सकती ॥

प्यारे सभासदो ! योंतो चारों युगों से प्राणियों के शरीर में रोगों का प्रवेश करना औ औषधियों द्वारा नीरोग होना चला ही आता है पर जीवों की जो दुर्दशा इन भयङ्कर रोगों ने इस कलियुग में करदी है औ होती रहती है ऐसी दशा किसी समय किसी इतिहास पुराण द्वारा सुनने में नहीं आई ।

अनेक ग्रन्थों के अवलोकन करने से ऐसा बोध होता है कि और युगों में हजारों में कोई एक मनुष्य संयोगवशात् रोगग्रस्त होजाताथा तो ग्राम में सर्वत्र धूम मच जाती थी कि अमुक प्राणी रुग्ण हो गया है, यहां तक कि हजार में एक का भी रोगी होना सर्वसाधारणके समीप आश्चर्य जनक था, अब हजार में एक का नीरोग रहना आश्चर्य समझा जाता है, बात भी सच है, वर्तमान काल में रोग ने छोटे, बड़े, मूर्ख, विद्वान्, राजा, रङ्क, सबों पर अपना शासन ऐसा जमा लिया है कि एक २ घरमें दो दो चार चार मनुष्यों को अपने वशीभूत रखता है, जब जिस समय जो चाहता है खिलाता है और जिस करवट चाहता है सुलाता है। पूर्व में एक नगर में एक बूढ़ासा वैद्य किसी कोने में निवास करता था जो नगर भर के रोगियों को नीरोग कराकिया करता था, अब एक नगर में, वैद्य, हकीम, डाक्टर,

ठौर २ साइनबोर्ड (Signboard) संकेतपाटिका द्वार पर लगाये बैठे हैं । सरकार इंग्लिशिया की ओर से ठौर २ औषधालय बनेहुए हैं, रेलवे स्टेशनों पर एक २ डाक्टर अलगही प्लेग इत्यादि का प्रवन्ध कर रहा है। यदि एक सहस्र मनुष्यों की नाड़ी परीक्षा कीजावे तो ९९९ का वीर्य भ्रष्ट औ दग्ध पाया जावेगा।

किसी अस्पताल (Hospital) को जाकर देखिये कैसा भयङ्कर दृश्य हृदय का डोलादेनेवाला देख पड़ता है, सैकड़ों रोगी आह २ करते कराहते मैले कुचैले दुर्गंध बिछावनों पर पड़े हैं, किसी की आँख में पट्टी बँधी है, किसी के कान में पिचकारियां चल रही हैं, किसी की टांग आधी कटी देख पड़ती है, किसी का हाथ, किसी की अँगुलियां, किसीकी जिह्वा, किसी की नाक, सड़ी गली देखपड़ती हैं, मारे दुर्गन्ध के एक क्षण ठहरना कठिन जान पड़ता है औ ऐसा बोध होता है कि यथार्थ नरक यही है, देखते ही अपने पाप कर्म स्मरण होआते हैं तो सारा शरीर कंपायमान होजाता है औ त्राहि नारायण ! त्राहि नारायण ! कहतेहुए परमात्मा से यही प्रार्थना करनी पड़ती है, कि हे दयामय ! बचाना ! बचाना ! पापों से उद्धार करना !

प्रिय सज्जनो ! यह शरीर सर्व प्रकार के साधनों का द्वार है जप, तप, ज्ञान, ध्यान, योग, यज्ञ, शम, दम, इत्यादि सब इसी शरीर द्वारा सिद्ध किये जाते हैं, जबतक यह नीरोग रहता है सर्व प्रकार के पुरुषार्थ करने को समर्थ रहता है, खाना, पीना, सोना, बैठना, चलना, फिरना, नाच, रंग, तमाशे, राग, तान, बाजे गाजे, सब सुहावने लगते हैं औ सबों में आनन्द का भान होता है, पर जिसी समय यह रोगी होजाता है कोई बात अच्छी नहीं लगती, इन्द्र का भी राज्य अच्छा नहीं लगता, फिर तो यह शरीर ठीक २ नरक जानपड़ता है,

लौकिक पारलौकिक किसी प्रकार का साधन इस से नहीं बनपड़ता— :

धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, औ मोक्ष, चारों पदार्थ के साधन का मूल यह शरीर है इसलिये इसको अवश्य नीरोग रखने का यत्न करना चाहिये ।

तपःस्वाध्यायधर्माणां ब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ।
हर्तारः प्रसृता रोगा यत्र तत्र च सर्वतः ॥
रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा
दृष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥
धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात् ।
प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमः कुतः प्राणिनाम् ॥

तप औ स्वाध्याय इत्यादि धर्मों के, ब्रह्मचर्य्य व्रत के, औ आयु के हरनेवाले रोग सर्वत्र जहां तहां फैलेहुए हैं, ये रोग शरीरके दुर्बल करने वाले, बल के क्षय करने वाले, देह की चेष्टा हरने वाले, इन्द्रियों की शक्ति के क्षय करने वाले, सब अंगों में पीड़ा करने वाले, धर्म, अर्थ काम औ मोक्ष में बलात्कार उपद्रव के करनेवाले औ शीघ्र प्राण के हरनेवाले जबतक शरीर में प्रवेश किये देखेजाते हैं तबतक प्राणियों का कल्याण कहां है अर्थात् नहीं है ।

अब हमारे बुद्धिमान सभासद विचारें कि इन रोगों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण क्या है, थोड़ाही विचारने के पश्चात् सब बातें ठीक२ प्रगट होजावेंगी, अर्थात् यह शरीर कफ, पित्त, औ वायु के संयोग से स्थित है जबतक ये तीनों ठीक२ अपने२ स्थान पर अपने२

प्रमाण के अनुसार अपने२ कार्य्य को कर रहे हैं औ ठीक समय पर परिपक्व हो शरीर की मुख्य२ नाड़ियों में प्रवेश कर रुधिर को रोम२ में उचित रीति से पहुँचादेते हैं तबतक किसीप्रकार का उपद्रव शरीर में नहीं होता किन्तु जब ये तीनों ठीक२ परिपक्व न होकर कच्चे रह जाने के कारण दूषित होजाते हैं तब नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न— ये तीनों क्यों कच्चे रहजाते हैं?
उत्तर— जठराग्नि की शक्ति कम होजाने से।
प्रश्न— जठराग्नि की शक्ति क्यों कम होती है?
उत्तर— धातु अर्थात् वीर्य्य की निर्बलता से।
प्रश्न— वीर्य्य निर्बल क्यों होता है?
उत्तर— धातु स्थान में उष्णता की अधिकता से।
प्रश्न— धातु स्थान में उष्णता अर्थात् गरमी क्यों अधिक होतीहै?
उत्तर— शरीर की नाड़ियों में अन्न के परमाणुओं के जमजाने से।
प्रश्न— अन्न के परमाणु नाड़ियों में क्यों जमजाते हैं?
उत्तर— हमलोग जितने प्रकार के अन्न नित्य भोजन करते हैं वे जब पक्व होने लगते हैं तब उनके छोटे२ परमाणु शरीर में फैल-कर नाड़ियों में जा लिपटते हैं वे परमाणु प्रतिदिन यत्न पूर्वक नाड़ियों से यदि न निकाले जावें तो जमते२ जमजाते हैं।

सब छोटे बड़े इस बात को भलीभांति जानते हैं कि अपने२ घर में भोजन के पश्चात् जिस नाली में हाथ मुंह धोते हैं वहां नित्य अन्न के छोटे२ टुकड़ों के एकत्र होने से जमते२ अन्न के रस के स्तर अर्थात् तह के तह बनजाते हैं। यदि उस घर के रहनेवालों ने उसे दस पांच दिन पर बाहर निकाल जलद्वारा नाली को शुद्ध करवा दिया तो अति उत्तम नहीं तो वे स्तर जमते२ थोड़े दिनों के पश्चात् विषैले

होजाते हैं अर्थात् उनके परमाणु अति उष्ण होकर विष से भरजाते हैं औ उनमें कीड़े उत्पन्न हो वायु में प्रवेश कर नानाप्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। मैंने प्रायः ऐसा देखा है कि जो मनुष्य अत्यन्त पंकिल औ मलीमस अर्थात् स्वभाव के मलिन हैं उनके घर की नालियों में सड़े हुए स्तर इसप्रकार जमजाते हैं कि उनमें बड़े२ पिल्लू चलतेहुए देख पड़ते हैं और उस घर में नाक नहीं दीजाती, मारे दुर्गन्ध के मस्तिष्क चक्कर में आजाता है औ इसीकारण उनके घरवाले बालबच्चे प्लेग (विसूचिका) इत्यादि रोगों से पीड़ित हो काल के गाल में प्रवेश करजाते हैं। भिन्न२ नगरों में भी प्लेग इत्यादि रोगों के अधिक फैलने का यही कारण है कि शहरों के बीच होकर घरों के आगे खुली हुई नालियां नगर भर के मलमूत्र मिले पानी को लिये चलरही हैं जिन से ऐसे असह्य दुर्गन्ध निकल रहे हैं कि भले पुरुषों का शहर की सड़कों पर चलना मानों नरक की गलियों में चलना है। धन्य है बेचारे उन बनियों को जो पेट की चिन्ता में मग्न, अपनी२ वस्तुओं को लिये, उन नालियों पर बैठे क्रय, विक्रय, कर रहे हैं, इनकी नाक तो ऐसी भरगई है कि इन नालियों का दुर्गन्ध का बोध होताही नहीं, पर इस से क्या? उनको दुर्गन्ध का बोध हो चाहे न हो फल तो भोगना ही पड़ता है अर्थात् प्लेग इत्यादि रोगों में शहर का शहर नष्ट तो होही जाता है।

प्यारे सभासदो! इस समय मुझे इन नाली इत्यादि के दुर्गन्ध के विषय कुछ कहना नहीं है यह तो म्यूनीसिपैलिटी के प्रधान पुरुषों का कार्य है कि बड़े२ नगरोंकी नालियों के दुर्गन्ध से बचने का प्रबन्ध करें, मुझे तो केवल इतनाही दिखलाना है कि विषैले परमाणुओं के शरीर की नाड़ियों में जमजाने से जो उष्णता उत्पन्न होकर धातु स्थान को निर्बल करती हुई जठराग्नि को मन्द कर कफ, पित्त, वायुमें-

विकार डाल रोगों को उत्पन्न करती है उस उष्णता के दूर करने का उपाय करें अर्थात् अन्न के परमाणुओंको शरीरकी नाडियों में जमने न देवें। न परमाणु जमेंगे न उष्णता उत्पन्न हो धातु स्थान को निर्बल करेगी, न जठराग्नि मन्द हो परिपाक शक्ति को नष्ट करेगी। न कफ, पित्त, वायु, दूषित होंगे न किसीप्रकार का रोग उत्पन्न होगा।

मुख्य तात्पर्य्य यह है कि नित्य जो हमलोग अन्न भोजन कर सोजाते हैं उस अन्न के पचने के समय परमाणु वाष्प द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलते हैं। आप बुद्धिमानों ने देखा होगा कि जब कोई पाचक किसी हांडी में दाल पकाता है उस हांडी के मुख पर एक ढक्कन रख देता है, जब दाल धीरे२ पकने लगजाती है तब वाष्प द्वारा उस हांडी में परमाणु बन कर उस ढक्कन के पेंदे में जम जाते हैं, सब ही इस बात को भली भांति जानते हैं। इसी प्रकार रात्रि अथवा दिन में हम लोगों के पेट रूप हांडी में जो अन्न पकने लग जाता है तो उसके परमाणु प्रथम मस्तक रूप ढक्कन में जा जमते हैं जब खोपड़ी परमाणुओं से भर जाती है तब वे परमाणु अधिक हो जाने के कारण खोपड़ी के दायें बायें अन्न के रस सहित बहकर नासिका की ओर, कानों की ओर, मुख की ओर, पतन होते हैं और मल होकर नासिका के पुरों में, कान के परदों पर, दांत के गारों में, जिह्वा के ऊपर, जम जाते हैं औ शरीर की बहत्तर हजार नाडियों की भी यही दशा होती है।

प्यारे श्रोताओ! जिह्वा, दांतों की जड़, नाक, कान, इत्यादि स्थानों में जो मल बैठ जाता है उसे मृतिका, जल, औ दंतधावन इत्यादि से शुद्ध कर सकते हैं क्योंकि मनु का वचन है कि (अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति) अर्थात् जल से शरीर के भिन्न भिन्न अंग

शुद्ध होते हैं। किन्तु शरीर के उन भीतर वाले भागों में जहां दन्त-धावन औ जल नहीं पहुंच सकते नित्य के मल शेष रहजाते हैं क्योंकि भीतर के अंगों का औ नाड़ियों का मल निकालना सर्वसाधारण पुरुषों से नहीं हो सकता बहुतेरे तो ऐसे मलिन स्वभाव हैं कि दातवन औ स्नान भी कभी नहीं करते औ यही कारण है कि उनके समीप बैठने से मारे दुर्गन्ध के व्याकुलता हो जाती है ऐसे पुरुषोंका शरीर, विशेष मुंह ऐसा दुर्गन्ध करता है जैसे कानपुर रेलवे स्टेशनका बम्पुलिस, ऐसों से बाह्य अंगों की शुद्धि तो हो ही नहीं सकती, भीतर वाले अंगों को कौन पूछे।

मुख्य तात्पर्य यह है कि प्रथम शरीर के बाहर वाले अंगों को दातवन, मृत्तिका, जल, गोमय औ भस्म इत्यादि वस्तुओं से शुद्ध करे फिर भीतर वाले अंग औ नाड़ियों की शुद्धि का यत्न करे।

यों सुनने से तो सर्व साधारण को आश्चर्य ही होगा कि जिन भीतर वाले अंगों तक दातवन, जल, औ भस्म, इत्यादि नहीं पहुंच सकते वहां का मल कैसे शुद्ध हो सकता है किन्तु जब वे श्रद्धा पूर्वक इस शौच क्रिया की ओर चित्त देवेंगे तो गुरु द्वारा सारी बातें ज्ञात होजावेंगी। जब तक मैं एक सुलभ उपाय आजके व्याख्यान में बताता हूं हमारे सभासद चित्त दे श्रवण करें।

बुद्धिमानों पर विदित है कि अशुद्ध परमाणुओं* का घन मलरूप होकर भिन्न स्थानों में जम जाता है, इस से अनुमान होता है कि

---

* जालांतरस्थे सूर्य्यांशौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। भागस्तस्य च षष्ठो यः परमाणुः स उच्यते॥ अर्थात् किसी घर की खिड़की होकर सूर्य्य की निकलती हुई किरणों में जो सूक्ष्म धूली उड़तीहुई देखीजातीहै उसके छठवें भाग को परमाणु कहते हैं॥

जितने अशुद्ध परमाणु प्रति दिन आहार इत्यादि से उत्पन्न होते हैं वे यदि प्रति दिन निकाल दिये जावें तो मल उत्पन्न न हो। जिस स्थान में दन्तधावन इत्यादि नहीं पहुंचते वहां केवल वायु द्वारा परमाणु निकाल दिये जा सकते हैं, क्योंकि केवल वायु ही में यह शक्ति है कि परमाणुओं को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान में पहुंचा देवे। यद्यपि वायु के इस सूक्ष्म कार्य को हमलोग सदा सब ठौर में नहीं देख सकते तथापि इस सूक्ष्म कार्य का बोध अन्य रीतियों से हो जाता है। देखिये जब हमलोग सायंकाल किसी वाटिका इत्यादि की ओर हवा खाने जाते हैं तो उस वाटिका के समीप पहुंचते २ नानाप्रकार की सुगन्धियां दूर ही से चित्त को प्रसन्न करदेती हैं, अब पूछना चाहिये कि ये सुगन्धियां क्या हैं औ क्यों इतनी दूर से नासिका द्वारा जान पड़ती हैं ? तो यही उत्तर देना पड़ेगा कि वाटिका में जो नाना प्रकार के पुष्प हैं उन पुष्पों में धूली होती है जिसे पराग कहते हैं उनके सूक्ष्म परमाणुओं को वायु लेकर उड़ता है औ हम लोगों की नासिका द्वारा हमारे मस्तक के भीतर पहुंचा देता है इसी कारण सुगन्ध का बोध होता है। केवल सुगन्ध ही नहीं वरु सुगन्ध औ दुर्गन्ध दोनों के बोध होने का यही कारण है कि अशुद्ध वस्तुओं से अशुद्ध औ शुद्ध वस्तुओं से शुद्ध परमाणुओं को वायु अपने साथ ले नासिका होकर मस्तक में पहुंचा देता है। यद्यपि उन परमाणुओं को अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण हमलोग आंखों से देख नहीं सकते तथापि सुगन्ध औ दुर्गन्ध का बोध तो होता ही है।

प्यारे श्रोताओ! ऐसा कोई स्थान नहीं जहां परमाणु का निवास न हो, हम लोगों की चारों ओर परमाणुओं के ढेर लगे पड़े हैं, जहां देखिये वहां अनगिनत परमाणु वायु में इधर उधर उड़ रहे हैं। जिस घर के भीतर हम लोग बैठे रहते हैं उसमें इतने परमाणु ठ-

साठस भरे होते हैं कि एक सूई के नोक के इतना भी स्थान परमाणु से रहित नहीं होता । इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग इन परमाणुओं को घर में उड़ते नहीं देखते । यदि आप इनको देखना चाहें तो घर की छत में एक छिद्र करदीजिये फिर आप देखेंगे कि उस छिद्र होकर जो सूर्य्य की किरणें एक लम्बे बांस के समान नीचे पृथ्वी पर पड़ती हैं उन किरणों के भीतर जो रज उड़ती हुई देख पड़ती हैं वे परमाणु हैं वरु उस एक एक रज में छै छै परमाणुओं का मेल होता है, जैसा कि मैं आप को पहले सुना चुका हूं । इसी प्रकार यदि आप उस घर की छत में सौ दो सौ छिद्र ठौर ठौर में कर देवेंगे तो प्रत्येक छिद्र की किरणों में आप परमाणुओं को उड़ते हुए देखेंगे, जबतक कि वे छिद्र बन्द न कर दिये जावें अथवा सूर्य उन के सामने से हट न जावे तब तक वे परमाणु आप को उड़ते देख पड़ेंगे । इससे सिद्ध होता है कि परमाणुओं से कोई स्थान भिन्न नहीं है । सर्वत्र ठौर ठौर में परमाणु भरे पड़े हैं, वायु का यह कार्य है कि सदा परमाणुओं को एक ठौर से उड़ा दूसरे ठौर में रखदेता है । बहुतेरे पदार्थ ऐसे हैं जिनके परमाणुओं को वायु धीरे २ उड़ा लेता है किन्तु वे कैसे उड़े औ किस प्रकार सर्वत्र फैल गये नेत्रों से नहीं देखे जाते । जैसे (कर्पूर) (Camphor) की एक छटांक की डली लेकर खुले वायु में रख दीजिये औ कुछ काल के पश्चात् आप देखेंगे कि वह डली एक छटांक से घटते २ एक तोले की फिर एक माशे की होगई । इस से अनुमान होता है कि वस्तुओं के परमाणुओं को वायु उड़ा ले जाता है । इसी प्रकार पुष्पों के पराग को भी वायु उड़ा कर आप की नासिका द्वारा मस्तक तक पहुंचा देता है जिस से सुगन्ध का बोध होता है, चाहे आप आंख से देखें या न देखें ।

प्यारे सज्जनो ! बुद्धिमानों को तो अवश्य निश्चय होगया होगा

कि सर्वत्र नीचे, ऊपर, दायें, बायें, परमाणु ही परमाणु भरे हैं, इतना ही नहीं वरु जितनी वस्तु आप इस सृष्टि में देखते हैं सब परमाणुओं के मेल से बनी हैं।

परमाणुभिराद्युपादानैर्द्व्यणुकत्रसरेण्वादि-क्रमेण स्थूलक्षितिजलतेजोमरुतः सृजति परमेश्वरः

अर्थात् परमाणु ही आदि में सब का उपादान कारण है इसी परमाणु से द्व्यणुक औ द्व्यणुक से त्रसरेणु औ त्रसरेणु से स्थूल पृथ्वी, जल, अग्नि औ वायु को परमेश्वर रचता है।

प्यारे सभासदो! परमाणु से ही सृष्टि की रचना होती है औ फिर

"प्रलयेऽतिस्थूलस्थूलनाशानन्तरं परमाणुक्रियाविभागपूर्वसंयोगनाशादिक्रमेण द्व्यणुकनाशात्तिष्ठन्ति परमाणवएवेति—

"इति प्राचीन कारिका"

अर्थात् प्रलयकाल में अतिस्थूल पदार्थों के नाश के पश्चात् स्थूलपदार्थों का नाश होता है, तिसके अनन्तर परमाणु क्रिया के विभागानुसार पूर्व संयोगों के क्रम से नाश होतेहुए त्रसरेणु के नाश के पश्चात् द्व्यणुक का नाश होकर सृष्टि के सकल पदार्थ परमाणु रूप होकर रहजाते हैं।

"दोधूयमानास्तिष्ठन्ति प्रलये परमाणवः" अर्थात् प्रलय काल में सकल पदार्थ नष्ट होकर केवल परमाणु ही परमाणु रहजाते हैं।

प्रिय श्रोताओ! जो विद्वान पदार्थविद्या के जानने वाले हैं वे इन परमाणुओं के कार्य्य को भलीभांति समझते हैं। इस विषय को आज के व्याख्यान में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, जब मैं सृष्टि की रचना पर व्याख्यान दूंगा तो इसे विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा

आज इस विषय को हाथ में लेने से मुख्य व्याख्यान रहजावेगा, इस लिये चलिये अपने विषय की ओर चलें। वहुत विलम्ब हुआ इसलिये सब मिल एकवार कह लीजिये—हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥

प्रिय सभासदो! मैं पहले भी कह आया हूं और फिर भी कहता हूं कि जो अशुद्ध परमाणु अन्नके रससे उत्पन्न हो शरीरके भीतर के अवयवों में औ नाडियों में जम जाते हैं वे केवल वायु द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिये जासकते हैं। इसी कारण हमारे पूर्व के ऋषि महर्षियों ने जिज्ञासुओं को प्राणायामविधि उपदेश किया है। क्योंकि इस प्राणायाम क्रिया से वायु शरीर के भीतर नख से शिख तक संचार करता है और वार वार पूरक रेचक करने से शरीर की नाडियों के अशुद्ध परमाणु बाहर निकल जाते हैं औ बाहर के शुद्ध परमाणु भीतर प्रवेश करते हैं। सन्ध्या के समय तीन प्राणायाम करने की आज्ञा है यदि तीन मात्रा का उत्तम प्राणायाम तीन २ वार सन्ध्या के अनुक्रम के अनुसार किये जावें तो १८वार वायु शरीर से बाहर निकालना पड़ेगा। क्योंकि एक वार तीन प्राणायाम करने से नौ वार वायु शरीर से बाहर निकालना पड़ता है अर्थात् रेचक करना पड़ता है औ सन्ध्या में कम से कम दो समय प्राणायाम करना पड़ता है, एक तो मार्जन के पश्चात् औ दूसरा पुनराचमन के पश्चात् (देखो, त्रिकुटीविलास प्रथमभाग अर्थात् वृहत्सन्ध्याविधि पृष्ठ ४७) इससे निश्चय होता है कि सन्ध्या करनेवालों के शरीरकी भीतर वाली वहत्तर हज़ार नाडियों के मलिन परमाणुओंको वायु १८ वार बाहर निकाल देता है। ऐसे प्रतिदिन १८ वार निकाल देने से नाडियों में अन्न का रस तनक भी शेष नहीं रहता। जैसे किसी सोहनी (झाड़ू, बुहारी,) से किसी घर को झाड़ने के समय आपने देखा होगा कि प्रथम वार झाड़ू फेरने से उस स्थान के मोटे २ रज निकल जाते हैं फिर दूसरी वार झाड़ने से

उससे छोटे २ रज निकल जाते हैं फिर तीसरी बार झाडू फेरने से और भी छोटे २ परमाणु निकलजाते हैं, तात्पर्य यह है कि जितनी वार बुहारी उस एक स्थान पर चलाई जावेगी उतना ही अधिक छोटे से छोटे परमाणु निकल जाने से पृथिवी एक दम चिकनी बन जाती है औ स्वच्छ हो जाती है, किसी प्रकार का दुर्गन्ध वहां नहीं रहता, छोटे २ मत्कुण अथवा मच्छर वा किसी प्रकार के जीव उत्पन्न नहीं होते ।

इसी प्रकार यह प्राणायाम मानो शरीर रूप घर की बुहारी है जितनी वार पूरक और रेचक किये जावेंगे उतनी बार शरीर के मलिन परमाणु शरीर से बाहर होजावेंगे । सन्ध्या में १८ बार पूरक औ रेचक होने से अत्यन्त छोटे से छोटे परमाणु भी बाहर निकल जाते हैं, नाडियां शुद्ध होकर निर्मल औ स्वच्छ होजाती हैं । मैंने पहिले ही आप लोगों को उदाहरण देकर दिखलाया है कि जब वायु एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है तो अपने साथ उस स्थान के परमाणुओं को लिये जाता है; जैसे पुष्प के परागों को औ कपूर की डली के परमाणुओं को । इसी प्रकार जब वायु शरीर के भीतर से बाहर निकलेगा तब परमाणुओं को भी अपने साथ बाहर लिये आवेगा । यही कारण है कि प्राणायाम से नाडियां मल रहित होजाती हैं, इस कारण बुद्धिमानों को उचित है कि नीरोग रहनेकी इच्छा से नित्य प्राणायाम क्रियाका अभ्यास करें क्योंकि वारंवार प्राणायाम करने से नाडियां स्वच्छ होजावेंगी, जब नाडियां स्वच्छ होजावेंगी अर्थात् उनमें जो अन्नके रसके मलिन परमाणु भर गये थे वे निकल जावेंगे तब नाडियों में उष्णता उत्पन्न नहीं होगी, जब उष्णता उत्पन्न न होगी तब धातु अर्थात् वीर्य निर्बल पतला नहीं होगा, क्योंकि धातु स्थान में उष्णता पहुंचने से धातु पतला हो जाता है, जैसे चावल का भात बनाने के समय जो भातसे पीच अर्थात् मांड निकलता है उस में जब तक उष्णता रहती है तब तक पतला रहता है जब ठंडा हो जाता

है तब एकदम जमकर गाढा होजाता है। इसी प्रकार धातु भी उष्णता से पतला औ शीतलता पाने से गाढा होजाता है, एवम् प्रकार जब धातु गाढ़ा होजाता है तब बल की अधिकता होने से जठराग्नि प्रबल होता है, जठराग्नि के प्रबल हुए अन्न पूर्ण प्रकार परिपक्व होजाने से, कफ, पित्त, वायु, तीनों ठीक २ अपने अपने स्थान में पहुंच जाते हैं, इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता अर्थात् ये तीनों जब ठीक२ शरीर में अपना कार्य करने लग गये तब सर्व प्रकार के रोगों की शान्ति होगई केवल इनही तीनों के कच्चे रहने से सर्व प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

प्यारे सभासदो अब आपलोग भली भांति समझ गये होंगे कि प्राणायाम से परमाणु का निकलना, परमाणुओं के निकल जाने से उष्णता की शान्ति, तिस से धातु का गाढा होना, तिस से जठराग्नि की प्रबलता, तिस से अन्न परिपक्व होजाने से कफ, पित्त, वायुका निर्विकार होना, तिस से सर्व प्रकार के रोगों की शान्ति। अर्थात् प्राणायाम से नानाप्रकार के रोगों की शान्ति होती है किसी प्रकार का रोग शरीर में उत्पन्न नहीं होने पाता, शरीर के अवयव दृढ़ और बली होजाते हैं।

कात्यायन का वचन है कि "वाङ्मआस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजोरिष्टानि मेङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह"

(कात्यायन परिशिष्ट सूत्रे)

अर्थात् प्राणायाम क्रिया के द्वारा मेरे मुख में वाचाशक्ति अ-

र्थात् पूर्ण प्रकार शास्त्रार्थ करने अथवा व्याख्यान देने की शक्ति, मेरी नासिका में प्राण धारण करने की शक्ति अर्थात् बहुत काल जीवित रहने की शक्ति, नेत्रों में दृष्टि शक्ति अर्थात् वस्तु वस्तु के देखने की और ज्योतिदर्शनकी शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति अर्थात् बचनों के सुनने की और अनाहत ध्वनि श्रवण करने की शक्ति, भुजाओं में बल अर्थात् शत्रुओं से युद्ध करने औ महा मुद्रा इत्यादि बन्धों में अवयवों को दृढ़ ग्रहण करने की शक्ति, जांघों में उत्तम पराक्रम और सिद्धासन इत्यादि में दृढ़ औ अचल रहने की शक्ति, एवम् प्रकार मेरे सब अंगों में भिन्न २ लौकिक औ पारलौकिक, दैहिक और मानसिक (physical & mental) शक्तियां मेरे सहित अर्थात् आत्मिक (Spiritual) शक्ति सहित उन्नति करें। यही प्राणायाम का फल है।

यद्यपि यह प्राणायाम कुंभक के भेद से आठ प्रकार का है अत्यन्त परिश्रम औ दृढ़ता से प्राप्ति होने योग्य है, तथापि गुरु कृपासे इन आठों में एक भी शुद्ध रीति से प्राप्ति होजाने पर आठों की सिद्धि होजाती है। फिर तो क्या कहना है, रोगों का तो कहीं लेश मात्र भी नहीं रहता।

त्रिकुटीविलास भाग २ अर्थात् प्राणायामविधि नामक पुस्तक में मैंने आठों प्रकार के प्राणायाम को विधि पूर्वक कथन कर दिया है औ किस से कौन रोग की शान्ति होती है यह भी संक्षिप्त कर दिखलाया है तथापि सर्व साधारण के बोध निमित्त मैं आज इस व्याख्यान में भी थोड़ा कह सुनाता हूं चित्त दे श्रवण कीजिये।

पूर्ववत्कुम्भयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः।
श्लेष्मदोषहरं कण्ठे देहानलविवर्धनम्॥

नाडीजलोदराधातुगतदोषविनाशनम् ।
गच्छता तिष्ठता कार्यमुज्जाय्याख्यं तु कुम्भकम् ॥

अर्थात् गुरु से सीख कर जैसे पहले वायु को धीरे २ पूरक कर कुंभक करनेको बता आये हैं उसीप्रकार कुंभक करने के पश्चात् (देखो प्राणायामविधि पृष्ठ ५४) इडा नाडी अर्थात् बायीं नासापुट से वायुको छोड़ देवे, ऐसा करने से कंठ में जितने प्रकारके कफ के दोष हैं सब को यह उज्जायी प्राणायाम नाश करदेता है, जठराग्निकी वृद्धि करता है, औ नाडियों में जो जलके दोष से नाना प्रकारकी व्यथा औ धातु में जो दोष विकार तिन सब को यह उज्जायी प्रणायाम नाश कर देता है। यह उज्जायी नाम का कुम्भक सब अवस्था में किया जासक्ता है चाहे चलते रहिये, चाहे एक स्थान में स्थित रहिये, तात्पर्य यह है कि इस में किसी प्रकार के बन्ध लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। बहुतेरे सभासद यह मन ही मन कहरहे होंगे कि यदि स्वामीजी यहां करके बता देते तो अच्छा होता पर मैं पूर्व में ही कहआया हूं कि यह व्याख्यान में बताने योग्य नहीं, हां एकांत म आप मेरे पास आवें, मैं ठीक २ बतादूंगा ।

उज्जायी कुंभक का गुण सुना चुका हूं अब शीतली का गुण श्रवण कीजिये ।

गुल्मप्लीहादिकान् रोगान् ज्वरं पित्तं क्षुधां तृषाम्
विषाणि शीतलीनाम कुम्भिकेयं निहन्ति हि ॥

गुल्म रोग, प्लीहि, ज्वर, पित्त का दोष, भूख, प्यास, औ सर्प इत्यादि के विष को औ अन्य प्रकार के संखिया इत्यादि विषों को

यह शीतली कुंभिका नाश करदेती है । यह कैसे कीजाती है (देखो प्राणायाम विधि पृष्ठ ५६)

तात्पर्य्य यह है कि प्राणायाम क्रिया को वार २ अभ्यास करने से सर्व प्रकार के रोग नाश होजाते हैं । यह प्राणायाम सन्ध्या का मुख्य अंग है इसलिये नित्य संन्ध्या करने से प्राणायाम में उन्नति अवश्य होगी अर्थात् एक मात्रा से बढ़ते २ दो औ फिर कुछ काल के पश्चात् तीन । एवम् प्रकार अभ्यास करते २ तीन से छै, औ छै से बारह, फिर बारह से चौबीस, फिर छत्तीस मात्रा तक बढ़ा लेजा सकते हैं ।

प्यारे सभासदो! केवल नाममात्र सन्ध्या करनेवालों के विषय तो मैं कुछ कह नहीं सकता, उन का करना औ न करना तो समान ही है, पर जो सज्जन श्रद्धापूर्वक श्री गुरुचरण सेवा द्वारा इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर चुके हैं औ विश्वासपूर्वक एकाग्र चित्त हो दिन रात अपनी वृत्ति को इस शुभ क्रिया में बांधे हुए हैं वे अवश्य सर्व प्रकार के रोगों से मुक्त हो सुख पूर्वक शरीर पाने के स्वाद को भोगेंगे।

अब इस क्रिया के साथ एक और गुप्त तत्व मैं आप लोगों को श्रवण कराता हूं सो सुनिये । आजकल बहुतेरे सन्ध्या करनेवाले प्राणायाम इत्यादि क्रिया करने के समय बेढब, ऊकडू, और टेढे सीधे बैठ जाते हैं, कभीतो ऐसा बैठ जाते हैं मानों दाल, भात, रोटी, औ पूरी, मलाई, खाने को बैठ गये हों उनको संन्ध्या में बैठने की रीति एक दम ज्ञात नहीं है, सर्व साधारण इस बात को जानते हैं कि संसार में भी किसी साधारण राजा महाराजा के दर्बार औ सभा में बैठने की रीति बनी हुई है तो क्या इतने बड़े महाराज की सभा में जो सब महाराजों का महाराज है बैठने की रीति न होगी? अवश्य कुछ

न कुछ तो होहीगी। सन्ध्या करना मानों उस सच्चे महाराज के सन्मुख बैठना है। इसीलिये सब कर्मों के भेद औं मुख्य तात्पर्य के ज्ञाता श्रीशिव भगवान् नें चौरासी लक्ष आसन कथन किये जिनमें मुख्य चौरासी आसन हैं। इन में बहुतेरे आसन ऐसे हैं जिनके करने से सर्व प्रकार के रोगों की शान्ति होती है। कारण यह है कि आसन लगाने से शरीर के भिन्न २ अवयवों, नसों, औ नाडियों, पर बल पड़ता है जिस से रुधिर का प्रवाह उत्तम रीति से होता है; औ सर्व प्रकार के विकार लोमकूप अर्थात् रोंगटों के छिद्र होकर बाहर निकल जाते हैं औ शुद्ध निर्मल रुधिर संपूर्ण शरीर में नख से शिख तक जितने प्रमाण से जहां पहुंचजाना चाहिये तहां पहुंच जाता है, किसी प्रकार की न्यूनाधिकता (कमी बेशी) रुधिरके प्रवाह में नहीं होती, क्योंकि जिस स्थान में अधिक रुधिर पहुंचना चाहिये वहां कम औ जहां कम पहुंचना चाहिये वहां अधिक पहुंच जावे तो कुष्ठ, शोथ, (वरम) इत्यादि नाना प्रकार के विकार उत्पन्न हो शरीर को रोगी बना देते हैं इसलिये चतुर साधक को उचित है कि बिना आसन लगाये सन्ध्या न करे॥

आसनों के लगाने की पूर्ण रीति तो एकान्त स्थान में बताने योग्य है पर इस व्याख्यान में मैं थोड़ा बहुत आसनों का वर्णन उनके फल सहित कह सुनाता हूं जिससे सुननेवालों को आसन लगाने की श्रद्धा उत्पन्न हो, औ उनके रोगों का नाश हो।

वामोरुमूलार्पितदक्षपादं
जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम्।
प्रगृह्यतिष्ठेत्परिवर्तिताङ्गः

श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात् ॥
मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तं
प्रचंडरुग्मण्डलखंडनास्त्रम् ।
अभ्यासतःकुंडिलिनीप्रबोधं
चंद्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम् ॥

अर्थात् बायें जांघ के मूल में दाहिने पांव को लगा कर फिर पीठ की ओर से दाहिने हाथ को लेजा कर दाहिने पांव की एडी के ऊपरवाले भाग को पकड़ लेवे फिर दाहिने पांव के जानुको बायें पांव के जानु से बाहर की ओर से लपेट कर बायें हाथ को बाहरकी ओर से लाकर अंगूठा पकड़ लेवे। इसी प्रकार एक बार दाहिनी ओर से और दूसरी वार बायीं ओर से बारम्बार अभ्यास करे इसीको मत्स्येन्द्रासन कहते हैं। इस व्याख्यान में मैंने केवल श्लोक पढ़कर जो भाषा टीका करदी है इस से यह आसन समझ में आना कठिन है। जब इस आसन को गुरु बनाकर दिखला देगा तब ठीक २ समझ में आजावेगा अब इस आसन का फल सुनिये ॥

इस मत्स्येन्द्रासन के लगाने से औ नित्य अभ्यास करने से जठराग्नि की प्रबलता होती है औ बड़े २ प्रचण्ड रोगों के समूह को खण्ड २ करदेने में अर्थात् नाश करदेने में यह मत्स्येन्द्रासन अस्त्र के समान है।

अब मयूरासन को उसके फल सहित श्रवण कराता हूं सुनिये।

धरामवष्टभ्यकरद्वयेन
तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः ॥

उच्चासनोदंडवदुत्थितःस्या
न्मयूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥
हरतिसकलरोगानाशु गुल्मोदरादी
नभिभवति च दोषानासनंश्रीमयूरम् ॥
बहुकदशनभुक्तं भस्म कुर्यादशेषं
जनयति जठराग्निं जारयेत्कालकूटम् ॥

अर्थात् दोनों भुजाओं को पृथ्वीतल पर धर कर जैसे मयूर के चंगुल फैले रहते हैं तैसे दोनों हाथों की हथेलियों को पृथ्वी पर रख कर चंगुल के समान अंगुलियों को फैला कर दोनों भुजाओं की (कूर्पर) कहुनियों तक नाभी का पार्श्व भाग उठा कर दण्ड के समान ऊंचा आसन करके स्थित होवे इसे मयूरासन कहते हैं तात्पर्य यह है कि जैसे मुरैला बैठता है इसी प्रकार बैठे । गुरु द्वारा जानलेना ।

अब इस मयूरासन का फल सुनिये । हरतीति अर्थात् जलोदर, प्लीहि इत्यादि जो नाना प्रकार के भयंकर रोग हैं उन सबों को यह मयूरासन शीघ्र ही हर लेता है औ वात, पित्त, कफ इत्यादि के दोषों को हटा देता है, फिर अत्यन्त कुत्सित अर्थात् सड़े गले अन्न को भी भस्म करदेता है, जठराग्नि अर्थात् परिपाक शक्ति (Digesting power) को प्रगट करता है औ कालकूट को भी पचा देता है ।

प्यारे सभासदो ! इसी प्रकार सैकड़ों आसन ऐसे हैं जिनके लगाने से नाना प्रकार के रोगों की शान्ति होती है । बहुतेरे श्रोता मन ही मन यह विचार रहे होंगे कि क्या आसन औ प्राणायाम केवल रोग ही की शान्ति निमित्त हैं अथवा इन से कुछ आत्मिक

उन्नति वा पारलौकिक लाभ भी है । किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह विचार केवल उनही श्रोताओं के चित्त में उठा होगा जो केवल आजहीके व्याख्यान में उपस्थित हुए हैं. जो श्रोतागण लगातार चार दिनों से इस सभाभूमि को सुशोभित कर रहे हैं औ एकाग्र चित्त हो व्याख्यान के आशय को भली भांति समझ रहे हैं वे तो विधिपूर्वक समझ ही गये होंगे कि चार दिवस से लगातार सन्ध्या के विषय व्याख्यान चलरहा है औ सन्ध्या के भिन्न २ महत्व का वर्णन हो-रहा है अर्थात् सन्ध्या से ईश्वरकीप्राप्ति कैसे होती है यह प्रथम दि-वस के व्याख्यान में सुन चुके, फिर सन्ध्या से आयु की वृद्धि यह दूसरे दिवस के व्याख्यान में औ सन्ध्या से आनन्द अर्थात् सुखकी प्राप्ति यह तीसरे दिवस के व्याख्यान में सुन चुके, अब सन्ध्या से रोगों की हानि कैसे होती है यह आज श्रवण करारहा हूं ।

ये आसन औ प्राणायाम सन्ध्या के मुख्य अंग हैं, इनही को विधिपूर्वक साधन करने से प्रथम कही हुई चारों बातें साधन होती हैं । इसलिये आज मैं यह सिद्ध करचुका कि सन्ध्या से रोगों की हानि कैसे होती है ।

आज के व्याख्यान को श्रवण कर हमारे सभासद कदापि ऐसा न समझें कि आसनों से केवल रोग ही नाश होते हैं वरु यह आसन सन्ध्याका ऐसा उत्तम अंग है जिससे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, लौकिक, पारलौकिक, सर्व प्रकार के लाभ होने में किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं है । यह आसन केवल एक दो ही नहीं हैं वरु चौरासी लाख आसन हैं जिनके भेद श्री शिवजी जानते हैं, जिस समय संसार के कल्याण निमित्त शिव भगवान् ने श्री जगज्जननी पा-र्वतीजी से चौरासी लक्ष आसनों का वर्णन किया उसे समय दयामयी पार्वती ने दया कर शंभु से यों प्रार्थना की—भगवन्! संसार के अल्पज्ञ

जीव इतने आसनों को श्रवण करते ही घबरा जावेंगे इतने आसनों का साधन करना असम्भव है, कृपा कर कुछ संक्षिप्त कर दीजिये, तब महेश्वर ने चौरासी लक्ष का सारांश निकाल कर चौरासी आसन कथन किये, पूर्व में अर्थात् आदि युग (सत्ययुग) में तो ये चौरासी आसन चले पर जब कुछ युग का ह्रास होने लगा तब उक्त प्रकार माता गिरिनन्दिनी ने फिर जीवों पर दयाकर यह प्रार्थना की, भगवन्! अब युग का ह्रास हुआ अब यह चौरासी भी साधन करना प्राणियों को अत्यन्त कठिन होगा इतना सुन देवों के देव श्री महादेव ने चौरासी से केवल चार आसन निकाल रक्खे, ये चारों द्वापर तक तो मनुष्यों के साधन में रहे, जब कलियुग का आरम्भ हुआ तब फिर मैया ने दया कर प्रार्थना करते हुए चार आसनों में भी मुख्य **सिद्धासन** नाम का एक ही आसन रखवाया, जो चौरासी लाख में श्रेष्ठ, उत्तम, औ प्रथम कहे हुए सर्व प्रकार के फलों का देने वाला है ।

प्रमाण—चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च ।
तेभ्यश्चतुष्कमादाय सारभूतं ब्रवीम्यहम् ॥
सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम् ।
श्रेष्ठं, तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा ॥

इस का अर्थ मैं प्रथम ही सुना चुका हूं अर्थात् चौरासी लाख आसनों में चौरासी फिर चौरासी में चार **सिद्धासन**, पद्मासन, सिंहासन, औ भद्रासन मुख्य हैं, इन चारों में भी सुखकारी औ श्रेष्ठ **सिद्धासन** है, इसी **सिद्धासन** का सदा अभ्यास करे । जिससे प्रथम कथन किये हुए चारों फलों का भोक्ता होवे ।

अब वह सिद्धासन कैसे लगाया जाता है सो श्रवण कीजिये।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्॥
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनंप्रोच्यते॥१॥
चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत्।
द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मलशोधनम्।॥२॥

अर्थात् गुदा से ऊपर औ शिश्न इन्द्रिय से नीचे जो स्थान उसे योनिस्थान कहते हैं सो बायें पांव की एडी को इसी योनिस्थान में लगा कर दृढ़ करे और दाहिने पांव की एड़ी को मेंढ़ * स्थान में लगाय स्थित करे फिर हृदय के चार अंगुल ऊपर जो गहराई है उस में चिबुक (ठुड्डी) को लगाय स्थिर कर विषयों से इन्द्रिय को रोके हुए दृष्टि को अचल औ दृढ़ कर नासाग्र अवलोकन करता हुआ दोनों भउओं के मध्य † देखे, इसी को मोक्ष के कपाट का तोड़ने वाला सिद्धासन कहते हैं ॥१॥

---

* शिश्न इन्द्रिय के ऊपर भागको जो नाभी से चार अंगुल नीचे ठीक बीचों बीच कटि के है उसे मेंढ़ स्थान कहते हैं॥

† आज कल बहुतेरे प्राणी गीता इत्यादि पुस्तकों में "चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो" इत्यादि वाक्यों को पढ़ दोनो नेत्रों की पुतलियों को खोल नाक से ऊपर ललाट के मध्य भ्रूमध्य समझ कर देखते हैं पर यह भ्रूमध्य अवलोकन नहीं। यह तो नेत्रों को उलटा कर ललाट के भीतर देखना चाहिये (गुरु से सीखो)

चौरासी आसनों में इसी सिद्धासन को सदा अभ्यास करे क्योंकि यह आसन बहत्तर हजार नाडियों का मल शोधन करने वाला है।

बहुतेरे प्राणियों का स्वभाव है कि जहां जिसी आसन का नाम सुना अथवा किसी को करते देखा झट उसी आसनको करने लगगये। कहीं आसन लगाने की बात चली झट दस बीस प्रकार के आसन-लगा नटों के समान लोगों को दिखला दिये, पर यह तुमड़िआ औ लिंगौटिया बाबाजी लोगों का काम है जिन्हों ने पेट भरने के लिये मेलों में जा आसन बिछा नटों के समान कला दिखा पांच सात आसनों को टेढा सीधा बना पैसे कमाने लग गये। किन्तु जिनको यथार्थ ईश्वरप्राप्ति इत्यादि की श्रद्धा है उनको बहुत से आसनों की कोई आवश्यकता नहीं है, वे तो केवल सिद्धासन कर लिया करें क्योंकि श्री आदिनाथ का उपदेश है कि—

किमन्यैर्बहुभिःपीठैः सिद्धे सिद्धासने सति।
प्राणानिले सावधाने बद्धे केवलकुंभके॥ १॥
उत्पद्यते निरायासात्स्वयमेवोन्मनी कला।
तथैकस्मिन्नेव दृढे सिद्धे सिद्धासने सति।
बंधत्रयमनायासात्स्वयमेवोपजायते॥ २॥
नासनं सिद्धसदृशं न कुंभः केवलोपमः।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः॥ ३॥

अर्थात् जो केवल यह सिद्धासन सिद्ध होजावे तो बहुत से आसनों के लगाने से क्या लाभ कुछ नहीं, केवल इसी आसन को

लगाकर बिना पूरक रेचक के केवल कुंभकद्वारा यदि प्राणवायु को बांध लिया जावे तो अनायास आप से आप उन्मनीकला अर्थात् तुरीय अवस्था, जिसका वर्णन गत दिवस के व्याख्यान में कर आयाहूं, प्रगट होजावे, अर्थात् कहे प्रकार से जो सिद्धासन सिद्धहोजावे तो (बंधत्रयमनायासात्) तीनों बंध मूलबंध, जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध, आप से आप प्रगट हों, क्योंकि सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं, औ केवल कुंभक के समान कोई कुंभक नहीं, खेचरी † के समान कोई मुद्रा नहीं औ नाद के समान कोई लय नहीं ।

प्यारे श्रोतृगण ! अब आपलोगों को निश्चय होगयाहोगा कि आसनों से केवल रोग ही की शान्ति नहीं होती वरु पारलौकिक औ आत्मिक उन्नति भी होती है ।

यह प्राणायाम औ आसन इत्यादि ऐसी उत्तम क्रिया है कि अन्य धर्मावलम्बी औ अन्य देश निवासी भी इनसे लाभ उठा चुके हैं औ उठाते हैं । इसी प्राणायाम औ आसन के विषय मुसलमानों ने लिखा है—

بحبس دم پرانایام نام است ۔ دو سامان درویشی تمام است

बहब्सेदम प्राणायाम नामस्त । बरोसामान दरवेशी तमामस्त

سینہ کو استخوان زنخ سے لگائے ۔ اور دو سرین کے بیچ ایڑی کو اڑائے

چشم ونگو کرکے احول دو ابروؤں کے بیچ ۔ اس یار کے جمال سے لو کو لگائے

---

* पूरक, कुंभक, रेचक, तीनों बन्ध, केवलकुंभक, औ नाद इन सबों का वर्णन प्राणायामविधि पुस्तक में पूर्णप्रकार है देखलेना ॥

† खेचरीमुद्रा—जिह्वा को लम्बीकर कंठ में प्रवेश करके भीतर ही भीतर भ्रूमध्य (त्रिकुटी) में लजाकर मस्तक से गिरतेहुए अमृत का पान करना ।

सीने को उस्तख़ाने ज़नख़ से लगाइये।
और दो सुरीं के बीच में एडी गडाइये॥
चश्मों को करके अहवल दो अब्रूओं के बीच।
उस यार के जमाल से लौ को लगाइये॥

फ़ारसी औ उर्दू के पदों के अर्थ ये हैं— हब्सेदम अर्थात् प्राणका निरोध करना जिसका नाम प्राणायाम है, उसी पर दरवेशी अर्थात् फ़क़ीरी (साधु धर्म) का सम्पूर्ण तत्व निर्भर है।

सीना जो हृदय उसे (उस्तख़ान ज़नख़) ठुड्डीकी हड्डी से मिलाइये औ दोनों सुरीन अर्थात् नितंबों (जांघों) के बीच में अर्थात् योनिस्थान औ मेढ़ू में एडी को गडाइये, फिर चश्मों अर्थात् आंखों को अहवल टेढा करके दोनों अब्रुओं नाम भौओंके बीच टिकाकर उस यार (मित्र) के जमाल नाम शोभा से लौ को लगाइये। इसी को सिद्धासन कहते हैं।

प्यारे सभासदो! अन्य २ देशनिवासी मुसलमान इत्यादि भिन्न जातियों में भी बहुतेरे पुरुष आसन इत्यादि क्रिया को भारत देश से प्राप्ति कर सिद्ध होगये हैं। देखिये मनसुर नाम का एक साधु संयोग वशात् मुलतान नगर में आन पहुंचा, उसने यहां के योगियों से यही सिद्धासन प्राप्त कर कुछ दिन साधन किया जब उसका आसन परिपक्व होगया औ पुतलियां उलट कर भ्रूमध्य में प्रवेश कर गईं तब उसे एकबारगी ज्योतिःस्वरूप का दर्शन हुआ, इस ज्योतिःस्वरूप का, जिसमें करोड़ों सूर्य्य के समान प्रकाश है, दर्शन पाते ही मनसूर ऐसा आनन्द में मग्न हुआ कि (اناالحق) अनलहक़ अर्थात् (अहं ब्रह्मास्मि) का वचन उसके मुख से अहर्निश उच्चारण होनेलगा। जब यह वचन उच्चारण करते उसे बहुत दिन बीत गये

तब संपूर्ण तुर्किस्तान, अरब, फ़ारस, इत्यादि देशों में धूम मचगयी कि मनसूर नाम का एक फ़क़ीर अनलहक़ (انالحق) अर्थात् मैं खुदा हूं कहता फिरता है, फिर तो मुसलमानों ने अपने बादशाह से जा कहा कि एक मनसूर नाम का साधु अपने को खुदा (ईश्वर) कहता फिरता है, यह (كلمه كفر) अर्थात् नास्तिकों का वचन है इस लिये इसे नास्तिक (كافر) समझना चाहिये, बादशाह ने अपने देश के विद्वानों को बुलाकर पूंछा कि क्या करना चाहिये, विद्वानों ने सम्मति दी कि मनसूर तो पूर्ण योगी है, सिद्ध है, महात्मा है, पर वह परमरूप में इतना मग्न होरहा है कि शरीर की सुधि उसको नहीं है, जबतक उस्का शरीर वर्तमान रहेगा तबतक अनायास यह (كلمه كفر) नास्तिक का वचन उच्चारण होताही रहेगा, मनसूर का तो इससे कोई हानि लाभ नहीं है पर साधारण बुद्धि के प्राणी इसको सुन घबड़ाते हैं, संभव है कि इस वाक्य के मुख्य तात्पर्य न समझने के कारण वे नास्तिक हो जावें, इसलिये उचित यह होगा कि मनसूर को शूली देकर उसका शरीर नष्ट करदिया जावे न शरीर रहेगा न यह वाक्य उच्चारण होगा, मनसूर को स्वयं तो शूली इत्यादि का कुछ कष्ट है ही नहीं पर शरीर नष्ट करदेने से देश का कल्याण होगा, शरा (मुसलमानी धर्मशास्त्र) की मर्य्यादा रहजावेगी, क्योंकि शरा के अनुसार (انالحق) अनलहक (मैंईश्वरहूं) ऐसा कहना नास्तिकत्व (كفر) है ।

जब विद्वानों ने ऐसी सम्मति दी तब बादशाह ने मनसूर को शूली चढ़ाने की आज्ञा देदी, फिर बड़े परिश्रम और कठिनता से मनसूर बादशाही दरबारमें लायागया, जब उसे शूली की आज्ञा हुई तब आनन्दपूर्वक आप से आप अनलहक़ उच्चारण करताहुआ शूली पर चढ़गया । इतिहास लिखनेवाले लिखतेहैं कि जो रुधिर की बूंदें उसके शरीर से गिरतीथीं उससे पृथ्वी पर अनलहक़ लिखजाताथा, क्यों नहो ! उस के तो रोम २ में औ सप्तधातु में अनलहक़ बेधगयाथा, फिर पृथ्वी पर

लिखजाना आश्चर्य्य की बात नहीं थी।

मौलानारूम जो मुसलमानों में एक बहुत बड़े विद्वान् औ आचार्य गिने जाते हैं वह मनसूर की शूली के विषय लिखते हैं कि—

है ग़लत करदम कि गुफ्तम दारबूद।
नर्दबाने बाम आं दिल्दार बूद॥

अर्थात् मैंने बहुत बड़ी ग़लती (चूक) की कि उसे शूली कहदी, वह शूली न थी वरु उस दिलदार (प्राणाधार) श्यामसुन्दर के कोठे पर चढ़ जाने की सीढ़ी थी।

प्यारे सभासदो! पूर्वोक्त फ़ारसी के पद का तात्पर्य सर्व-साधारण भारतनिवासियों के समझने के निमित्त हिन्दी भाषा के पद में यों कहा गया है—

प्रेम महल है दूर, सात महल के ऊपरो।
पहुंचगया मनसूर, शूली सीढी डारके॥

इन वार्त्ताओं के कहने सुनने से यह निश्चय होता है कि आसन औ प्राणायाम से केवल रोग ही की शान्ति नहीं होती वरु आत्मिक उन्नति भी होती है। इसमें तो तनक भी सन्देह नहीं है कि जो प्राणी प्रतिदिन मुहूर्त्त मात्र भी आसन औ प्राणायामादि क्रिया में परिश्रम करैगा उसे ईश्वर की प्राप्ति, आयु की वृद्धि, आनन्दकी प्राप्ति, औ रोगों की हानि, ये चार बातें अवश्य लाभ होंगी।

अब मैं अपने सभासदों से बारम्बार यही कहूंगा कि यदि आप लोगों को नाना प्रकार के संसृत दुःखों से छूटने की इच्छा है औ परम शान्ति लाभ करते हुये श्यामसुन्दर के चरण कमलों में प्रेम

भक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा है तो हजार, लाख, वरु करोड़ कामों को छोड़ सन्ध्या में परिश्रम करते हुए आसन औ प्राणायाम में अभ्यास बढ़ावें, ऐसे अभ्यास करते २ चित्त वृत्ति का निरोध होगा, औ अन्तःकरण की शुद्धि लाभ होगी, पश्चात् उपासना की रीति समझ में आवेगी फिर कुछ काल उपासना में परिश्रम करते २ ज्ञान तत्व क अंकुर हृदय में उदय होगा, यह ज्ञान अपनी सात भूमिकाओं सहित सिद्ध होजाने के पश्चात् विज्ञान को उत्पन्न करते हुए प्रेम का रंग दिखलावेगा, प्रेम क्या है? औ वह परमात्मा केवल प्रेम का वशीभूत कैसे है? ये सब बातें नेत्रों के सामने आपसे आप झलकने लग जावेंगी।

बिना कर्म किये किसी को किसी प्रकार की सिद्धि आज तक लाभ नहीं हुई, न होगी, इसलिये बुद्धिमान जिज्ञासुओं को अवश्य कर्म करने में परिश्रम करना चाहिये । अब समय इतना नहीं है कि कर्मकांड के ऊपर व्याख्यान दिया जावे फिर कभी अवकाश पाकर कर्म का विषय श्रवण कराऊंगा । आज का विषय " सन्ध्या से अरोगाता" में अपनी बुद्धिअनुसार सिद्ध कर चुका, अब केवल एक ऐसे पुरुष की कथा आप लोगों को सुनाता हूं जिसने गुरु कृपा से सन्ध्यादि क्रिया में विश्वास कर आसन औ प्राणायाम द्वारा सर्व प्रकार का लाभ उठाते हुए औ नाना प्रकार की विपत्तियों को छेदन करते हुए महा कराल काल के मुख से बचकर नाना प्रकारका सुखलाभ करते हुए, श्यामसुन्दर के चरणारविंदों में विश्राम पाया । चित्त लगा श्रवण कीजिये । एक बार सब मिल बोलिये—हरेराम, हरे राम, राम राम, हरे हरे । हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे ।

चन्द्रहास की कथा

सुधार्मिक नाम नरेश मेधावी देश के रहने वाले बड़े धर्मात्मा औ न्यायकारी हुए इनको चन्द्रहास नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जातकर्मादि संस्कार करने के पश्चात् महाराजने ज्योतिषियों से पूछा कि यह बालक कैसा होगा ? इस के ग्रह कैसे पड़े हैं ? ज्योतिषियों ने उत्तर दिया कि यह बालक तो बहुत बड़ा भाग्यवान औ तेजस्वी होगा किन्तु दस बारह वर्ष की अवस्था तक इसके ऐसे भ्रष्ट औ क्रूर ग्रह पड़े हैं कि जिस कारण इसका भिक्षुक होकर द्वार २ भिक्षा मांगना संभव दीख पड़ता है । इतनी बात ज्योतिषियों के मुंह से श्रवण करते ही महाराज क्रोधातुर होकर बोले, ज्योतिषियो ! बड़े आश्चर्य की वार्ता है कि आप लोग विद्वान् होकर आगे पीछे कुछ विचार नहीं करते केवल अंगुलियों पर अंक गिनना जानते हैं, भला यह तो विचारिये कि मुझ ऐसे नरेश का बालक होकर भिक्षा मांगे यह कब संभव हो सकता है । ज्योतिषियों ने उत्तर दिया राजन् ! हमलोग क्या करें, मिथ्या कैसे कहें । लग्न, ग्रह, योग, तिथि, वार, नक्षत्र, इत्यादि के विचार से जो कुछ हम लोगों की समझ में आया कह सुनाया । अपराध क्षमा हो, हम लोग तो सदा ईश्वर से यही मनाते हैं कि राजकुमार की सदा वृद्धि हो, इतना कह ज्योतिषी अपने २ निवासस्थान को चले गये ।

प्यारेसभासदो ! ज्योतिष कैसी सच्ची विद्या है यह बुद्धिमानों पर भली भांति प्रगट है । देखिये जो मनुष्य इतना अल्पज्ञ है कि अपने घर की भींत (दीवार) के पीछे दो हाथ की दूरी पर क्या हो-रहा है अथवा घंटे दो घंटे के पश्चात् क्या होगा नहीं कह सकता

सो इस विद्या के द्वारा पृथ्वी के करोड़ों कोस दूर सूर्य्य, चन्द्र, औ तारा गण की चाल को ऐसे पूर्ण रीति से जान लेता है कि ठीक २ किस समय कितने घंटे औ मिनट के पश्चात् सूर्य्यग्रहण वा चन्द्र-ग्रहण होने वाला है कहदेता है, यदि ज्योतिष सच्ची विद्या न होती तो इतने दूर की बात कैसे बता देती, फिर जिस विद्या के दो पैसे के पत्र (पंचांग) में यह शक्ति है कि लाखों करोड़ों कोस के वृत्तान्त को ठीक २ बतला देता है उस विद्या के बड़े २ ग्रन्थ न जाने कैसी २ गूढ़ औ गुप्त बातें बता देते होंगे, हां! इतना तो अवश्य है कि वर्त्तमान काल में इस विद्या के जानने वाले बहुत कम हैं, जो थोड़ा बहुत जानते भी हैं तो उनमें गणित, रेखागणित, बीजगणित, इत्यादि विद्या के अभाव से इतनी शक्ति नहीं होती कि ठीक २ फल बतासकें ।

प्यारे सभासदो ! महाराज सुधार्मिक के ज्योतिर्विद बड़े विद्वान औ सच्चे थे, उनकी बातें भला कब झूठी हो सकती थीं, चार पांच साल बीतते २ महाराज के नगर को शत्रु ने आक्रमण किया, भयंकर युद्ध होने के पश्चात् महाराज मारे गये, देश लुटगया, कहीं कुछ ठिकाना चन्द्रहास के रहने का न रहा, केवल एक दासी जो उसे दूध पिलाया करतीथी, गोद में खेलाया करतीथी, उसे लेभागी, यह दासी चन्द्रहास को लिये भागतीहुई केरल देश के महाराज के मंत्री धृष्टबुद्धि के शरण में पहुंची, वहां दासी का कर्म करके आप भी निर्वाह करती औ चन्द्रहास को भी पालती, जब चन्द्रहास आठ साल का हुआ वह दासी भी स्वर्गधाम सिधार गई । अबतो चन्द्रहास का कोई भी पालन करनेवाला न रहा, इधर उधर भिक्षा मांग अपना समय बिताने लगा। ऐसी दुर्दशा में कुछ दिन प्राप्त रहा, ज्योतिषियों की बात सच्ची हुई ।

एवम् प्रकार जब चन्द्रहास साल दो साल भिक्षा मांग अपना समय बिताते हुए अधिक कष्ट पाने लगा तब संयोगवशात् महर्षि नारद वीणा बजाते हरिगुण गाते केरल देश में आन पहुंचे आप की दृष्टि चन्द्रहास पर जापड़ी, आपने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया कि यह सुधार्मिक नरेश का पुत्र चन्द्रहास है, इतना बोध होते ही आप को दया उत्पन्न हुई, पूछा बेटा! तू क्यों यहां इस दुर्दशा में प्राप्त है? तू कौन है जानता है? चन्द्रहास ने उत्तर दिया, भगवन्! मैं तो कुछ नहीं जानता कौन हूं, किसका पुत्र हूं? क्या मेरी जाति है! मैं तो केवल इतना ही जानता हूं कि मैं दासीपुत्र हूं मेरी माता धृष्टबुद्धि नाम मंत्री के यहां दासी थी वह जबसे स्वर्गवास होगई तबसे मैं इसी प्रकार भिक्षा मांग समय बिताताहूं। नारद ने कहा, नहीं बेटा तू दासीपुत्र नहीं है, तू तो राजकुमार है, मेधावी नगर के महाराज सुधार्मिक का तू पुत्रहै, तेरा पिता युद्ध में मारागया, तेरी राजधानी लुटगई, शत्रुओं ने आक्रमण कर अपना शासन फैलादिया, जो दासी तुझे यहां लाकर पालतीथी वह तेरी दूधपिलानेवाली दासी थी। इतना बचन सुन चन्द्रहास अत्यन्त शोकातुर हुआ, कुछ काल चुपरहने के पश्चात् बोला, भगवन्! मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों? महर्षि ने उत्तर दिया, तेरे ग्रह कुछ भ्रष्ट हैं उन ग्रहों के कारण तू इतना कष्ट झेलरहाहै। चन्द्रहास ने कहा, भगवन्! ऐसी कृपा करो जिसमें मेरे दिन अच्छे हों, आप ऐसे दयासागर महापुरुष के दर्शन होने पर भी क्या दुष्ट ग्रह मुझे सताते ही रहेंगे? महर्षि नारद ने कहा, बेटा! अब तू चिन्ता मत कर तेरे दिन अब अच्छे आवेंगे। यदि तू चित्त लगाकर मेरे कहे अनुसार कुछ किया करे तो और भी अधिक आनन्द लाभ करेगा। चन्द्रहास बोला, नाथ! जो कहो मैं करनेको उपस्थित हूं आग में पानी में जहां कहो वहांही आपकी आज्ञानुसार दौडजाने को तयार हूं। इतना सुन नारद ने कृपाकर चन्द्रहास को विधिपूर्वक

यज्ञोपवीत दे, गायत्री प्रदानकर, सन्ध्या की क्रिया आसन प्राणायाम सहित बतलादी औ द्वादशाक्षर मंत्र उपदेश कर आनन्दकन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र की उपासना करने की आज्ञा देदी, औ यों कहा कि बेटा! चाहे हज़ार लाख कडोड़ काम क्यों न आनपड़ें, इन्द्रलोक की भी प्राप्ति की आशा क्यों न हो, पर विना सन्ध्या किये किसी की ओर भी न देखना।

प्यारे सभासदो! इतनी कृपा कर महर्षि नारद ब्रह्मलोक को सिधार गए, इधर चन्द्रहास उनकी आज्ञानुसार नित्य अपनी सन्ध्यादि क्रिया में परिश्रम करने लगा। एक दिन केरलनरेश के मंत्री धृष्टबुद्धि ने देश २ के विद्वानों को एकत्र कर यह प्रश्न किया कि मेरी कन्या का विवाह कब औ किस से होगा? कई विद्वानों ने अपनी बुद्धि अनुसार अनेक राजकुमारों के नाम लिये पर ज्योतिषियों ने यों कहा कि श्रीमान् की कन्या का विवाह तो उसी दरिद्र बालक से होगा जिसका नाम चन्द्रहास है, जो आप के नगर में भिक्षा मांग उदर पोषण किया करता है। इतनी बात सुनतेही धृष्टबुद्धि को क्रोध उत्पन्न हुआ औ बोला ज्योतिषियो! तुमको कुछ भी बुद्धि नहीं, भला विचारो तो सही मेरी कन्या का विवाह एक दरिद्र बालक से होवे यह कब हो सकता है, मेरे जीतेजी तो कदापि ऐसा हो नहीं सकता। इतना सुनते ही धृष्टबुद्धि अपने भवन में चला गया। रात्रि में उसे निद्रा नहीं आई, मन ही मन विचारने लगा कि ज्योतिष की बात झूठ नहीं हो सकती, क्या जाने किसी कारण से ऐसा ही हो जैसा ज्योतिषियों ने कहा है, इसलिये उत्तम यह होगा कि इस दरिद्र बालक का वध करवा डालूं, न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी, न चन्द्रहास जीता रहेगा न मेरी कन्या इस से व्याही जावेगी। प्रातःकाल होतेहीं चांडालों को बुलाकर यों आज्ञा दी कि तुमलोग चन्द्रहास नाम बालक को, जो मेरे नगर में भिक्षा मांगता फिरता है,

घोर वन में लेजाओ और उसे मार कर उस के शरीर का चिन्ह काट कर लेआओ जिससे मुझे यह विश्वास होगा कि वह मारागया।

प्यारे श्रोताओ ! फिर तो धृष्टबुद्धि ही ठहरा, मनुष्यों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि संयोग वशात् जैसा उनका नाम पड़जाता है तदाकार कुछ न कुछ उन में गुण भी होता ही है। फिर धृष्ट अर्थात् कठोर है बुद्धि जिस की ऐसे धृष्टबुद्धि की आज्ञानुसार चांडालों ने चन्द्रहास को पकड़ लिया औ नगर से बहुत दूर अत्यन्त सघन बन में लेगये, जब खड्ग खींच उसके गले पर चलाना चाहा तब चन्द्रहास ने घबराकर पूछा, भाइयो! मेरा क्या अपराध है? जिसके बदले मेरा यों वध किया जाता है? चांडालों ने उत्तर दिया, अपराध सपराध यहां कुछ नहीं देखा जाता, यहां तो "अंधेर नगरी चौपट्ट राजा। टके सेर भाजी टकेसेर खाजा" की दशा है, यहां तो सब धान बाईस पसेरी है, यहां इस राजधानी में हमारे धृष्टबुद्धि मंत्री की आज्ञा है कि जिस का मोटा गला देखो उसे फांसी देदो। तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है पर हमलोगों को तो मंत्री साहब की यही आज्ञा है कि इसे वन में लेजा दो टुकड़े करडालो। हम उनका नमक खाते हैं, यदि उनकी आज्ञा प्रतिपाल न करें तो नमकहरामी का धब्बा लगे। किसी ने कहा है, "यथाराजा तथा प्रजा" जैसी राजा की बुद्धि होती है तदाकार प्रजा की। हम क्या करें हम तो तुम्हें मारही डालेंगे।

---

* धृष्ट शब्द के इतने अर्थ हैं—निर्लज्ज, दुर्विनीत, उद्धत, असभ्य, दुःशील, अशिक्षित, विद्याहीन, स्थूल, कठोर, निर्दयी, इत्यादि २।

चन्द्रहास ने कहा भाइयो! मैं तुम लोगों के हाथ में हूं जब चाहो मारडालो, पर कुछ काल के लिये मेरी भी एक प्रार्थना स्वीकार करलो, मुझको केवल मुहूर्त्तमात्र का अवकाश दो कि मैं अपने गुरुमहाराज की आज्ञा प्रतिपाल करलूं अर्थात् सन्ध्या करलूं फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो करलेना, इतनी बात सुन उन चांडालों में जो दोएक नवयुवक थे, नई नौकरी पाई थी वे बोल उठे, अरे मूर्ख चन्द्रहास! इस समय तो तेरी मृत्यु मस्तक पर नाच रही है औ तू सन्ध्या पूजा की बातें करता है चल! हठ! मैं तो तुझे मारही डालूंगा। इतना बचन सुन चन्द्रहास बहुत घबराया पर उन चांडालों में जो एक वृद्ध था उसे दया उत्पन्न हुई, वह अपने संगियों की ओर देखकर बोला, भाइयो! यह बालक तो परम पवित्रात्मा देख पड़ता है, यह हमलोगों के हाथ से निकलेगा नहीं, हमलोग जो चाहेंगे कर लेवेंगे, इसे केवल एक मुहूर्त्तमात्र का अवकाश देदो, अपनी सन्ध्या पूजन इत्यादि कर लेवे। एवम्प्रकार चांडालों ने परस्पर सम्मति कर मुहूर्त्त मात्र का अवकाश देदिया, चन्द्रहास बड़ी शीघ्रता के साथ प्रातःकालिक क्रिया कर आसन लगा सन्ध्या करने लगा औ मुहूर्त्त मात्र में प्राणायाम इत्यादि को समाप्त कर द्वादशाक्षर मंत्र जपते हुए श्यामसुन्दर का ध्यान कर उनकी स्तुति प्रार्थना में मग्न होरहा, नेत्रों से अश्रुपात होनेलगा, रोमावली हो आई, आकाश की ओर मस्तक उठा बोला, हे नाथ! हे दीनबन्धो! हे दयासागर! हे करुणानिधे! हे भक्तवत्सल! क्या मेरी ऐसी ही दुर्दशा होगी कि आज मैं बिना अपराध माराजाऊंगा। नाथ! मेरी तो अभिलाषा यों थी कि श्रीगुरुमहाराज नारद के बतायेहुए मार्ग पर चलता हुआ तेरे चरणों का समीपी होऊंगा सो मन की बात मनही में रही औ गला तलवार के नीचे आगया, मृत्यु सामने खड़ी होगई। हे दयामय! मुझसा पापी न कोई हुआ न होगा, यह मुझे निश्चय है, पर इस से क्या! मैं हजार वा लाख पापियों का एक पापी, तू तो

पतितपावन है ना । फिर हे प्रभो ! वह तेरे विशाल बाहु जिस से तूने अनगिनत पापियों का उद्धार किया है क्या मेरे उद्धार निमित्त आज असमर्थ होगये हैं, मेंडक सर्प को निगल जावे तो असम्भव नहीं, सूर्य्य पश्चिम को उदय हो तो असम्भव नहीं, मशक हस्ती को वध करडाले तो असम्भव नहीं, एक हंसका बच्चा मेरुको चंगुल में ले उड़ जावे तो असम्भव नहीं; पर तेरे विशाल बाहुका पापियों की रक्षा निमित्त असमर्थ होजाना कदापि नहीं हो सकता, हे विशाल बाहो ! आज मेरी भी सुधि ले, देख मैं एक छोटा बच्चा, जिसे न मा न बाप, न कोई आगे न पीछे, हा ! क्या करूं ! किधर जाऊं ! किससे कहूं ! तुझ बिन मेरी कौन सुने !

कवित्त—जाहि हाथ धनुष चढायो है सीतापति, जाहि हाथ रावण संहारि लंक जारी है । जाहि हाथ तारे औ उबारे हाथ हाथी गहि, जाहि हाथ सिन्धु मथि लक्ष्मी निकारी है । जाहि हाथ गिर उठाय गिरवर गिरधारी भये, जाहि हाथ नन्द-काज नाथे नाग कारी है । हौंतो अनाथ हाथ जोरि कहौं दीना-नाथ वाहि हाथ मेरोहाथ गहिवे की बारी है ॥

एवम्प्रकार आकाश की ओर विलाप करते हुए जब चन्द्रहास अत्यन्त व्याकुल हुआ तो क्या देखता है कि, मोरमुकट मस्तक पर धारे, पीत पिछौरी संवारे, श्यामसुन्दर मन्द २ मुसकाते अकाश में नेत्रों के सामने यों बोलतेहैं, कि हे चन्द्रहास ! तू अपने गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलता हुआ अहर्निश मेरे रूप में मग्न रहा कर, तुझ को महा कराल काल से भी कोइ भय नहीं है औरन की तो क्या गिनती । तेरा एक रोम भी बांका करनेवाला कोई इस पृथ्वीमण्डल में न है न होगा । इतना वचन कह श्यामसुन्दर अन्तर्धान होगये, इधर चन्द्रहास मारे आनन्द के फूला न समाया, अत्यन्त हर्षित हो

एकबारगी उठ खड़ा हुआ औ चाण्डालों की ओर देखकर बोला, भाइयो ! लो अब तुम अपना काम करलो । लो यह मेरा असमर्थ गला तुम्हारे खड्ग से दो टुकड़े होने को तय्यार हैं । अब तो चाण्डालों में किसीका साहस नहीं होता जो चन्द्रहास के गला पर खड्ग चलावे क्योंकि सबों ने अभी देखा है कि एक अद्भुत मूर्ति आकाश में प्रगट हो चन्द्रहास से बातें करगई है इसलिये परस्पर एकदूसरे को कहरहा है, भाई ! मैं नहीं इस पर हाथ छोड़ूंगा, न जाने यह देवता है, गन्धर्व है, यक्ष है, कौन है, जिस से बातें करनेको देवगण आकाश से उतरते हैं जो कहीं इस पर हाथ छोड़ा और आकाश से कोई उपद्रव मुझपर आनपड़ा तो मैं जड़मूल से जाऊंगा, सो भाई ! मैं तो इसे कदापि नहीं मारूं तुम्हारी इच्छा हो तो मारो, एवम्प्रकार एक दूसरे से कहते २ सबोंने अपना २ खड्ग पृथ्वी पर रख दिया । इन में एक वृद्ध चतुर था वह बोला, भाई ! ऐसा बालक बध करने योग्य तो नहीं है, पर यदि तुम सबोंकी सम्मति हो तो इसके पांव में छै अंगुलियां देखपड़ती हैं उनमें से एक काट कर लेचलो, धृष्टबुद्धि ने इस के शरीर का एक चिन्ह मांगा है सो यह अंगुली देकर कहदेंगे कि हमलोगोंने चन्द्रहास को मारडाला ।

प्यारे सभासदो ! चन्द्रहास खडांगुल था, लोग कहते हैं कि छै अंगुल होना अशुभ है । सो परमात्मा की दया ऐसी हुई कि चाण्डालों ने जो अधिक अंगुली थी उसे काटली औ चन्द्रहास को उसी गंभीर बन में जीवित छोड़ दिया । अबतो जो कुछ अशुभ लक्षण था वह भी हमारे चन्द्रहास के शरीर से दूर होगया । चन्द्रहास अपने प्राण की रक्षा देख मुहूर्तमात्र श्यामसुन्दर के ध्यान में मग्न रहा पश्चात् उस बनमें एक वृक्ष की छाया में सोगया, निद्रा टूटने के पश्चात् झरना के समीप जा स्नानादि कर सायंसन्ध्या की पूर्त्ति करता

भया, थोड़ी देर में क्या देखता है कि एक गैया समीप आ स्तन से दूध टपका रही है, मानो चन्द्रहास को दूध पिलाने आई है, अब तो चन्द्रहास ने पत्तों का एक द्रोणा बना गैया के स्तन से दूध ले पेट भर पीलिया, गैया वन में चली गई । एवम्प्रकार चन्द्रहास वन में निर्भय विचरने लगा, नित्य प्रातः औ सायं सन्ध्यादि क्रिया समाप्त कर जैसे आंख खोलता है गैया को अपने पार्श्व में दूध टपकाते देख द्रोणा भर पान करलिया करता है, फिर आनन्द पूर्वक वृक्ष की छाया में सोजाता है ।

प्यारे सज्जनो ! किसी ने सच कहाहै—

सुन्दर विरवा वाग को सींचत में कुम्हलाय ।
जाहि कृपा रघुनाथ की पर्वत पै हरियाय ॥

वह रक्षक जिसको जहां चाहे वहांही रक्षा करसकता है । जब एवम्प्रकार वन में निवास करते उसे कुछदिन बीतगये तब ईश्वर की प्रेरणा से एक राजा जो केरल नरेश के अधीन था आखेट करता हुआ उस वन में आनपहुंचा, क्या देखताहै कि एक सुन्दर बालक जिसके मुखपर राजलक्षण झलक रहेहैं एक वृक्ष की छाया में शयन कर रहाहै, समीप जा उसके जागने की प्रतीक्षा करतारहा, जब उसकी निद्रा टूटी राजा ने पूछा तुम कौन हो ? यहां कैसे आये ? बालक ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया. सुनतेही राजा को दया आई औ बोला, हे वत्स ! यदि मैं तुझको अपना पुत्र बना अपनी राजगद्दी देदूं तो तुझे स्वीकार है वा नहीं? बालक नेउत्तर दिया, राजन ! ऐसा कौन मूर्ख होगा जो धन आते घर में टट्टी लगावेगा, जैसी आपकी इच्छा होकरो । इतना वचन सुन वह राजा चन्द्रहास को पुत्र बना अपने घर लेजा अपनी राजगद्दी दे आप ईश्वरभजन में मग्न रहनेलगा, यह राजा अत्यन्त वृद्ध होगयाथा औ उसे कोई पुत्र न था इसलिये उसका यह म-

बन्ध सब राजाधिकारियों को औ प्रजागण को उचित जानपड़ा; सबों ने चन्द्रहास का राजा होना बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करलिया ।

प्यारे सभासदो ! उक्तप्रकार राज करते चन्द्रहास के जब चार पांचसाल बीतगये तब संयोगवशात् धृष्टबुद्धि अपने अधीन की राजधानियों में फिरता नाना प्रकार का नवीन प्रबन्ध करता हुआ सबोंसे कर इत्यादि लेताहुआ इस राजधानी में पहुंचा, क्या देखताहै कि वही बालक जिसे इसने मारडालने के लिये चाण्डालों के हाथ बन में भेजा था राजगद्दी पर बैठाहै । मनहीमन क्रोध से जलभुन गया, औ विचारनेलगा कि जो हो पर इसे अवश्य मारडालना चाहिये, ऐसा विचार उस वृद्ध राजा से पूछा, कि यह बालक तुम्हारा कौनहै ? औ तुमने इसे कहां पाया ? राजा ने सच्ची बात कहसुनाई, सुनतेही बोला राजन ! बिना आज्ञा महाराज केरलनरेश के तुमने इसे क्यों राजगद्दी देदी; जब तुम हमारे नरेश के अधीन हो तो उचित था कि आज्ञा लेकर इस बालक को अपनी गद्दी देते, अच्छा अब भी कोई चिन्ता नहीं, अब मेरा विचार यों है कि मैं केरलनरेश के नाम से एक पत्र लिखकर इस बालक को देताहूं यह पत्र लेकर केरलराजधानी में जावे, प्रथम यह पत्र मेरे पुत्र मदन को देगा, मदन इसे केरलनरेश के समीप लेजा सारा वृत्तान्त कह सुनावेगा औ राजतिलक दिलादेवेगा तब यह निःशंक हो यहां का राजशासन करता रहेगा । इतना कह एक पत्र अपने पुत्र मदन के नाम से लिखा । ये सब दाक्षिणदेश महाराष्ट्र के निवासी हैं इसलिये यह पत्र भी महाराष्ट्रभाषा में लिखा, जिसका मूललेख आपलोगों को उसी देश की भाषा में सुनाताहूं सुनिये—

पत्र का लेख

चिरंजीव मांझा मदना

मांझी तुझला हीच आज्ञा

चन्द्रहास पाठवीले सदना
विषयासी देइजे॥

अर्थात् (मांझा मदना) हे मेरे मदन तुम चिरंजीव रहो (तुझला) तुमको (मांझी) मेरी (हींचआज्ञा) यही आज्ञा है कि चन्द्रहास को (पाठवीले सदना) घर भेजताहूं (ययासी) इसको विष (देइजे) दे देना। तात्पर्य यह कि हे बेटा मदन! चन्द्रहास को तेरे पास भेजताहूं तू इसे विष देदेना।

इसप्रकार पत्रलिख चन्द्रहास को दे उसे शीघ्र केरलराजधानी की ओर भेजदिया, चन्द्रहास जब केरल नगर में पहुंचा उसे पिपासा लगी, इधर उधर देखता एक सुन्दर वाटिका में पहुंचा, कूपसे शीतल-जल ले पानकर एक वृक्ष के मूल में बैठगया, अश्व को एक दूसरे वृक्ष से बांध दिया, दिनभर का थका हुआथा बैठे २ निद्रा लगगई सो गया।

प्यारे श्रोताओ! यह वाटिका धृष्टबुद्धि मंत्री की है, सायंकाल होने का थोडाही विलम्ब है, सूर्यदेव आकाश मार्ग में चलते २ थककर मानो स्तावल को शयन करने चलेजारहेहैं, चिडयां इधर उधर से उड़ती हुई सायंकाल का आगमन देख चूं चूं करती मानो ईश्वर की विचित्र लीला का परस्पर वर्णन करतीहुई अपने २ जोड़े के संग घोसलों की ओर चली जारहीहैं। इधर हमारे धृष्टबुद्धि साहब की कन्या अपनी वाटिका में अपनी सहेलियों के साथ हवाखाने आईहै। कुछकाल इधर उधर फिरकर जब कूप की ओर चली, क्या देखती है कि एक राजकुमार एक वृक्ष से लगा शयन कररहाहै, उसकी सुन्दरताई देख मोहित हो अपनी सहेलियों से बोली, हे सखियो! इधर आओ तो सही? देखो यह राजकुमार कहां से आयाहै? कौन है? यदि

तुम में कोई पहचानती हो तो बताओ। सखियां बोलीं हम में से कोई भी इसे नहीं पहचानती, यह किसी अन्यदेश का राजकुमार देखपडता है। मंत्री की कन्या बोली, सखियो ! मेरा पिता मेरे भ्राता से कहगया है कि वह मेरे विवाह के लिये एक सुन्दर राजकुमार भेजेगा, सो ऐसा बोध होताहै कि इसी को मेरे लिये भेजाहै। इतनी बात कहते २ उसकी दृष्टि उस पत्र पर जापडी जो चन्द्रहास के खीसा (जेब) में था, सोजाने के कारण उसका एक कोन खीसा से बाहर निकलपडा था, कन्या ने धीरे से वह पत्र निकाल लिया जब पढा तो उसे कुछ शोक सा हुआ पर थोडे काल के पश्चात् उसके मनमें यह विचार उठा कि पंत्र का लेख ठीकहै, मेरे पिता ने जो शीघ्रता में यह पत्र लिखाहै इस कारण इसमें केवल एक मात्रा छूटगई है, अर्थात् जहां यह लिखाहै कि विषययासी देइजे ॥ (विष इसको देना) तहां ऐसा होनाचाहिये कि– विषयायासी देइजे ॥ (विषया इसीको देना)

प्यारे सभासदो ! मैं प्रथमही आपको इस पत्र का लेख सुना चुकाहूं कि यह पत्र महाराष्ट्रभाषा में लिखागयाथा, महाराष्ट्र भाषा में (ययासी) औ (यासी)का समान अर्थ है केवल इतनाही भेद है कि (ययासी) का अर्थ है इसीको औ (यासी) का अर्थ है इसको। मूलमें धृष्टबुद्धि का लेखहै (विषययासी) अर्थात् (विष) इसको देना, कन्या ने विचारा कि दोनों यकार के मध्यमें केवल अकार का एकमात्रा (ा) पिता से शीघ्रता के कारण छूटगईहै इससे इसका अर्थ अनर्थ सा हो रहाहै, क्योंकि बुद्धि इसबातकोस्वीकार नहीं करती कि मेरा पिता बिना अपराध ऐसे राजकुमार को विष देने के लिये लिखेगा, यथार्थ में पत्र का तात्पर्य्य यह है कि (विषयायासी) अर्थात् विषया (यासी) इसको देना, विषया मेरा ही नामहै इस लिये मेरे भ्राता को लिखाहै कि मुझे राजकुमार को देदेना अर्थात् मेरा विवाह इससे करदेना, पर

ऐसा नहो कि मेरा भ्राता धोखे से इसी लेख के अनुसार इस राजकुमार को विष देदेवे। सखियों से पूछा, ऐसी दशा में क्या करनीचाहिये? सब सखियों ने एकमत हो यह सम्मति दी कि किसी प्रकार एकमात्रा (ा) दोनों यकार के मध्य में बना देनीचाहिये। विषया को यह सम्मति बहुतही अच्छी लगी, चट एक पुष्प की डाली की लेखनी बना अपने नेत्र से काजल निकाल दोनों यकार के मध्य (ा) यह मात्रा बनादी। अबतो अर्थ इसका यों होगया कि विषया इसको देना।

प्यारे सभासदो! एवम्प्रकार विषया यह मात्रा (ा) बना फिर उस पत्र को धीरेसे चन्द्रहास के खीसा (जेब) में डाल अपनी सहेलियों के संग अपने मन्दिर को लौटगई। इधर चन्द्रहास की निद्रा टूटी, वह सायंकाल होता हुआ जान नगरकी ओर चला औ धृष्टबुद्धि के गृह पर पहुंच उसके पुत्र (मदन) को पत्र दिया। पत्र पातेही मदन अत्यन्त प्रसन्न हुआ, ज्योतिषियों को बुला शुभ तिथि, मुहूर्त, लग्न, इत्यादि निश्चय कर पिता की आज्ञानुसार विषयाका विवाह चन्द्रहास के साथ करदिया, नगर में चारों ओर आनन्द बरसने लगा, विवाहकी धूमधाम से मंत्रीका घर सुशोभित होने लगा, इतने में धृष्टबुद्धि लौट कर अपने घर आया, क्या देखता है कि गृह में आनन्द का कोलाहल मचरहा है, स्त्रियां बहुविधि मंगल गान कररही हैं, विस्मित हो पूछा यह कैसा कोलाहल है? मदन ने विवाह का वृत्तांत कह सुनाया, सुनतेही मारे क्रोध के धृष्टबुद्धि की आंखें लाल होगईं, मदन से पूछा तूने किसकी आज्ञा से यह सम्बन्ध करदिया? मदन ने पत्र लाकर पिता के आगे धरा औ बोला, इस पत्र में जैसा लिखा है वैसा ही मैंने किया, पुत्र को बिना विचारे माता पिताकी आज्ञा प्रतिपाल करनी चाहिये इसलिये मैंने तातकी आज्ञानुसार यह उत्सव किया है। धृष्टबुद्धि पत्र हाथ में लेकर पढता है तो मस्तक पीट २ पछताता है क्योंकि "विषयायासी देइजे" विषया इसको देना इस लेख

को वह अपना लेख समझ रहा है, परमात्मा की विचित्र प्ररणा की सुधि तो इसे है नहीं, क्या करे. अब तो चन्द्रहास दामाद हो चुका है, पर धृष्टबुद्धि ही तो है, कुछ काल के पश्चात् यों विचारा कि जो हो सो हो कन्या विधवा हो तो हो पर इस चन्द्रहास को अवश्य मारडालना चाहिये, यह दुष्ट मेरे हाथ से दो बार बचगया है, अब की बार ऐसा यत्न करता हूं कि इसका कहीं पता भी न लगे, ऐसा विचार चन्द्रहास से बोला, हेपुत्र! मेरे कुल की मर्य्यादा है किजो दामाद होता है उसे श्रीदुर्गाजी कीपूजा करनीपडतीहै सो कल प्रात कालहीश्रीदुर्गा जीकी पूजा करआना, चन्द्रहास ने बड़े प्रेम से स्वीकार किया। धृष्टबुद्धि ने इधर श्रीदुर्गाजी के पुजारी को एक गुप्तपत्र भेजदिया कि जो कोई कल प्रातः काल पूजन करने जावे उसे बलिदान देकर उसका मस्तक मेरे पास भेजो।

जाको राखै सांइयां मार न सक्कै कोय।
बाल न बांको करिसक्कै जो जग वैरी होय॥

अर्थात् जिसकी रक्षा स्वयं श्यामसुन्दर करनेवाला है उसे कौन मार सकता है, संपूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसा कोईभी नहीं जो उस प्राणी के एक बाल को भी टेढा करसके। श्री दुर्गाजी तो साक्षात् श्याम-सुन्दर की शक्ति ही हैं, सदा आप के वामअंग में निवास करने वाली हैं, इनको कब ऐसी बात स्वीकार हो सकती थी कि चन्द्रहास स-दृश परम भक्त का मस्तक उसके शरीर से विलग किया जावे। इस कारण आद्या ने इधर कुछ और की और ही कर दिखलाई अर्थात् अर्द्धरात्रि के समय अपना अद्भुत स्वरूप धारण किये महाराज कु-न्तलपुर के स्वप्न में प्रगट हो बोली, राजन्! देख तू अब वृद्ध हो गया है अबतक तुझे कोई सन्तान नहीं हुई इसलिये मेरी आज्ञा यह है कि तू प्रातःकाल होते ही अपनीराजगद्दी धृष्टबुद्धि के यामाता चन्द्रहास को देदे और जो तू ऐसा नहीं करेगा तो देख! मैं तेरे न-

गर को तेरे सपेत धूल में मिला दूंगी ! इसप्रकार श्री दुर्गाजीको स्वप्न में कहते हुए देख राजाकी निद्रा टूट गई । विचारने लगा कि आज महारानी ने तुम्झपर बड़ी कृपा की है कि स्वप्न में दर्शन दिया है औ एक विचित्र आज्ञा दी है, वह तो साक्षात् मेरी माता है, इष्ट है, मैं तो उसके बिना और किसी देवी देवता को जानताही नहीं; वह तो सदा मेरी कल्याण करनेवाली है, उसकी आज्ञा प्रतिपाल करना मेरा धर्म है, जिससे सदा हित होगा औ अहित नाश होगा, ऐसे विचार प्रातःकाल होते ही दरबार में आ यों आज्ञा दी कि धृष्टबुद्धि के पुत्र मदन को जो आज कल मत्री के अधिकार पर है पत्र भेजो कि वह शीघ्र अपने आवुत्त (बहनोई) चन्द्रहासको मेरेपास भेजदेवे कि मैं उसे राजगद्दी का तिलक देदूं। मदन इस पत्र के पातेही चन्द्रहास के पास सहर्ष दौड़ा गया औ बोला, भाई आज हम लोगोंके धन्यभाग हैं कि महाराज कुन्तलपुर ने तुमको अपनी राजगद्दी देनेकी प्रतिज्ञा कर पत्र भेजा है औ तुमको शीघ्र बुलाया है, लो यह पत्र लो औ महाराज की राजगद्दी को प्राप्त करो ! चन्द्रहास ने उत्तर दिया भाई मदन ! मेरे गुरु नारदजी की आज्ञा है कि यदि त्रिलोकी का भी राज मिलता क्यों न हो पर बिना सन्ध्या किये नहीं जाना, सो मुझे सन्ध्या कर लेने दो फिर मैं जाऊंगा । मदन ने कहा अजी कहां की सन्ध्या बन्ध्या लिये फिरते हो, राज्यके सामने सन्ध्या, जाओ पहले तिलक लेआओ फिर सन्ध्या करना । चन्द्रहास ने हठकर कहा मैं तो बिना सन्ध्या कदापि नहीं जाऊंगा, फिर मदन ने कहा अच्छा थोड़ा शीघ्र करो जबतक मैं ठहराहुआ हूं ।

प्रिय सज्जनो ! सन्ध्या समाप्त होने के पश्चात् मदन ने जाने केलिये फिर कहा तब चन्द्रहास बोला, भाई मदन ! तुम्हारे पिता की आज्ञा गत रात्रि में मुझे श्री दुर्गाजी की पूजा करने की हुई है

उनकी भी आज्ञा प्रतिपाल करनी मेरा धर्म है सो थोड़ा और ठहर जाओ मैं दुर्गाजी की पूजा करआऊं फिर जाऊंगा, मदन ने कहा भाई तूतो लक्ष्मी आते घर में टट्टी लगाना चाहता है, अरे तुझे यह नहीं सूझता कि राजा महाराज की बात है न जाने कुछ अधिक काल बीतने से राजा के चित्त को लोग फेरदेवें, सम्मति कुछ और की और होजावे तो हाथ मलकर पछताना पड़ेगा । चंद्रहास ने कहा फिर दुर्गाजी की पूजा भी तो इससमय करनी ही चाहिये क्योंकि मातृका-कही करने की आज्ञा है । मदन ने कहा तू महाराज के पास जा, पूजनकी सामग्री मुझे देदे मैं तेरे बदले दुर्गाजीकी पूजा करआता हूं ।

प्यारे श्रोतृगण ! उस गोविंद की गति वही जाने, वह न्याय-कारी पल २ एक २ बातोंका न्याय किस चतुराईके साथ गुप्त रीति से कररहा है कि किसी देवता, देवी, ऋषि, महर्षि, पर प्रगट नहीं, वह तो सदा दूध का दूध औ पानी का पानी कररहा है पर ऐसे अद्भुत ढब से करता है कि कोई भी लख नहीं सकता । देखिये चन्द्रहास तो महाराज के पास जाकर राजगद्दी पाता है औ मदन श्री दुर्गाजी के समीप जा बलि पड़ता है, इधर से मदनका कटाहुआ मस्तक मंत्री के सामने आता है औ उधर से महाराज का आज्ञापत्र आता है कि चंद्रहास को राजगद्दी मिली सब छोटे बड़े आज से उसकी आज्ञा में चलो ! मंत्री अत्यन्त व्याकुल हो पृथ्वी पर मूर्च्छा खा गिरता है इधर पुत्रका मरण, उधर चंद्रहासकी अधीनताका विचार कर मारे लज्जा के मस्तक ऊपर उठा किसी को अपना मुंह नहीं दिखलाने चाहता, यहांतक कि रोते पीटते श्रीदुर्गाजी के मंदिर में जा अपने पुत्र के वियोग में प्राण निकाल देने पर तत्पर होगया । सारे नगर में धूम मचगई ।

प्यारे सभासदो ! चंद्रहास को जब यह समाचार मिला दौड़ताहुआ श्रीदुर्गाजी के मन्दिर में पहुंचा, क्या देखताहै कि श्याला

मदन मरा पड़ाहै, शरीर से मस्तक विलग है, धृष्टबुद्धि मस्तक हाथमें लिये रोते २ प्राण देने चाहता है। चन्द्रहास ने यह दशा देख सारा गुप्त वृतान्त जानलिया, झट दोनों हाथ बांध श्रीदुर्गाजी के सन्मुख खड़ा हो स्तुति औ प्रार्थना करनी आरंभ करदी, औ बोला; हे अम्ब ! हे जगज्जननि ! त्राहि ! त्राहि ! पाहि ! पाहि ! ।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्माहरश्च नहि वक्तुमलं बलंच ॥
सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ॥
देवीत्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ताच सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ॥
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ॥
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेनच
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥
सौम्यानियानिरूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्तिते
यानिचात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम्

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वत: ॥

एवम्प्रकार स्तुति करने के पश्चात् ...मात्र ध्यानमग्न रह भवानी प्रसन्न हो बोली, मांग क्या मांगता है ! चंद्रहासने प्रार्थना की हे मात: ! मदन तो निर्दोष है, हां मंत्री का दण्ड तो आपने उचित किया, क्योंकि जो पराये के पुत्रका वध किया चाहता है उसके अपने पुत्रका वध होजाता है. यह न्याय तो अत्यंत उत्तम हुआ, पर हे जगज्जनि ! मदन निर्दोष है औ मेरे कारण वध हुआ है इसलिये इसका रुधिर मेरे गले पर होगा, अतएव मैं यही वर मांगता हूं "कि यदि तू मुझपर प्रसन्न है तो मदन को पुनर्जीवन दानदे अर्थात् जिला दे". श्री दुर्गाजी ने आज्ञा दी कि तू शीघ्र मदनका मस्तक ले उसके शरीर से जोड़दे ! चंद्रहास ने ऐसाही किया औ मदन हरे राम २ कहता हुआ उठखड़ा हुआ । ऐसे सबके सब आनन्दपूर्वक अपने घरको लौट गये औ न्यायपूर्वक राज्य करतेहुए अंत में परमधामको सिधारे ।

जिस प्रकार चंद्रहास अपने गुरु महर्षि नारदकी आज्ञानुसार सन्ध्यादि क्रिया में विश्वासपूर्वक श्रद्धा सहित परिश्रम करता हुआ लोकों में सुखी होगया ऐसेही जो प्राणी अहर्निश विश्वास औ श्रद्धा सहित सन्ध्या करेंगे वे अवश्य पूर्व कथन कियेहुये चारों पदार्थों को लाभ करेंगे ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



पुस्तक मिलने का पता

श्री पं० सीताराम शर्म्मा पुस्तकाध्यक्ष
भारत त्रिकुटीमहल चन्दवारा
मुज़फ्फ़रपुर
(बिहार)